प्राक्कथन

रूसी विचारों की दुनिया में, इसमें संदेह नहीं कि ज़ार पिटर दी ग्रेट एवं कैथराइन द्वितीय के शासनकाल ने एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी, जिसका प्रभाव वहाँ की विचारधाराओं पर काफी पड़ा, उच्चवर्ग के सामाजिक जीवन पर तो पड़ा ही, और अन्त में ज़ारशाही के विनाश का कारण भी हुआ। पिटर के राज्यकाल के पहले तक इस देश का पश्चिमीय संसार से बहुत कम, न के बराबर ही, सम्बन्ध रहा, यह कूप का मण्डूक बना रहा। पर सर्वप्रथम पिटर ने ही रूस को इस कूप-मंडूकता से बहिर्गत किया, जर्मनी एवं फ्रांस के विचारों तथा सामाजिक जीवन की ओर आकृष्ट किया। बहुतदिनों का अन्धा जिस प्रकार अकस्मात् आँखों की ज्योति पाकर आश्चर्य-चकित हो उठता है, वही रूस की दशा हुई। जर्मन विचारों तथा पेरिस के जगमगाते हुए सामाजिक जीवन को देखकर उसकी आँखें चकाचौंध सी हो गयीं और वह देश जो कि अबतक एशियाई बना हुआ था, पश्चिमीय प्रभावों की बाढ़ में ऊब-डूब सा करने लगा।

पर जैसा कि मैंने पहले कहा है, यह प्रभाव आरम्भ में उच्च वर्ग तक ही सीमित रहा। देश की गरीब जनता इस प्रभाव से वंचित रही, पर ज़ाहिर है कि इस तरह के प्रभाव अधिक दिनों तक एक खास दायरा के अन्दर सीमित नहीं रह सकते, और रूस के निम्नश्रेणी के लोगों के भी विचार कालान्तर में इन पश्चिमीय प्रभावों से प्रभावित हुए बिना न रह सके।

आरम्भ में पश्चिमीय संपर्क के कारण जो विचारधाराएं प्रवाहित होने लगीं वे ज़ारशाही के प्रतिकूल न गयीं। फ्रांस की क्रान्ति ने युरोप भर में एक भूकम्प-सा उत्पन्न कर दिया। प्रत्येक देश के राजनैतिक तथा सामाजिक जीवन की नींव कम्पायमान सी हो उठी, पर रूस पर, आश्चर्य है कि, इसका कोई प्रभाव न पड़ा, बल्कि उल्टा ही असर हुआ। नेपोलियन का रूस पर चढ़ाई कर देना इसका मुख्यतम कारण था। देश पर यह एक भयंकर खतरा आ पड़ा जिसने प्रत्येक श्रेणी तथा विचार के लोगों में एक अभूतपूर्व एकता ला दी तथा वे ज़ार के साथ खड़े हो गये। पुश्किन ने सन् १८१२ के युद्ध का जिक्र करते हुए लिखा था—'वह ऐसा वक्त था जो कि भूला नहीं जा सकता! किस एकता के साथ हम सभी लोगों ने अपनी राष्ट्रीय मर्यादा का अनुभव किया और साथ-साथ सम्राट् के प्रति अपने प्रेम-भाव का।'

नेपोलियन की हार ने रूसवासियों के हृदय में एक गौरव का भाव उत्पन्न किया—यह सोच कर कि उन्होंने केवल नेपोलियन को पराजित ही नहीं किया बल्कि युरोप के सभी कमजोर देशों का इस संकट से उद्धार भी किया। पुश्किन ने लिखा—"मास्को की धूमाग्नियुत खँडहरों पर भी हम, उसकी, जिसने सबों को कम्पित कर रक्खा था; हठपूर्ण इच्छा के सम्मुख नत न हुए तथा युरोप भर की गई हुई स्वतंत्रता, मर्य्यादा एवं शान्ति को हमने पुनर्जीवन प्रदान किया।"

कैथराइन ने जिन उदार विचारों के साथ शासन किया वे उसके बाद के शासकों में क्रमशः लुप्त होते गये तथा वे पश्चिम के आध्यात्मिक विचारों की अपेक्षा भौतिक गतिविधि की ओर विशेष ध्यान देने लगे। इसके फलस्वरूप सम्राट् के प्रति जिस प्रेम और भक्ति का नेपोलियन के युद्ध और पराजय के कारण उद्भव हुआ था वह क्रमशः क्षीण सा हो चला। पश्चिमीय राजनैतिक विचारों से प्रभावित जनों के बीच एक असन्तोष का भाव जागृत हो उठा। सन् १८२५ का दिसम्बरी आन्दोलन, जिसका कि इस पुस्तक के पृष्ठों में विस्तृत वर्णन मिलेगा, इसका प्रथम चिह्न था।

अब रूस में दो विचारधाराओं का एक प्रकार से संघर्ष सा चलने लगा—एक तो वह जो कि रूस को सम्पूर्णतः पश्चिमी रंग-ढंग में ढालना चाहती थी। दूसरी वह जो स्लैव संस्कृति की प्रबल पक्षपाती थी। पर इसका मतलब यह नहीं कि पश्चिमीय विचारधारा के जो समर्थक थे वे अवश्यमेव राजनैतिक विचारोंमें भी उग्र अथवा उदार हों तथा स्लैव संस्कृति के पक्षपाती अनुदार, बल्कि कई प्रमुख व्यक्तियों के संबन्ध में तो यह ठीक विपरीत ही पाया गया। उदाहरण के लिए हम चाडयभ (Chaadayev) तथा बाकुनिन को ले सकते हैं। पिटर चाडयभ उन लोगों में थे—और इनके बीच इनका स्थान कोई साधारण नहीं, अत्यन्त ऊँचा था—जो कि रूस को पूर्णतः पश्चिमीय ढाँचे में ढालना चाहते थे पर राजनैतिक विचारों में बिलकुल ही अनुदार थे। दूसरी ओर बाकुनिन स्लैव संस्कृति के प्रबल समर्थक, पश्चिमीय प्रभावों के विरोधी और राजनैतिक विचारों में अत्यन्त ही उग्र थे। फिर, जो पश्चिम के प्रबल समर्थक भी थे, उनमें भी आगे चलकर निराशावाद की बू आने लगी और वे पश्चिम से निराश हो, अपनी गलती महसूस कर, रूसी संस्कृति की ओर पुनः आ लौटे। किरेवस्की तथा हर्जेन इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

जिन्होंने रूस को पूर्णतः पश्चिमी ढाँचे में ढालना चाहा था, उनमें चाडयभ मुख्य थे। वह स्वयं रूसी भाषा की अपेक्षा फ्रेंच कहीं अधिक दक्षता के साथ लिख और बोल सकते थे और इस विचार के पक्षपाती थे कि रूसी समाज अपनी गिरी हुई अवस्था से ऊपर उठना चाहता है तो उसे पश्चिमीय सभ्यता को सोलह आने अपना लेना चाहिए, एशिया की ओर न देख कर उसकी आँखें सदा युरोप की ओर होनी



जार पीटर दी ग्रेट

आहिए। विजेता रूसी सेना के साथ वह पेरिस में घुसा था और फ्रांसीसी संस्कृति से पूरी तरह प्रभावित होकर लौटा था। पुश्किन से उसकी घनिष्ठ मैत्री थी। उसकी प्रशंसा में पुश्किन ने लिखा था, कि यदि वह रोम में होता तो ब्रुटस होता, एथेंस में पेरिक्लिस, पर यहाँ, अर्थात् रूस में, वह रूसी सेना का एक साधारण अफसर ही बना रहा। चाडयभ को सम्बोधित करके ही पुश्किन ने ये सुन्दर पंक्तियाँ लिखी थीं—

नव प्रभात हे मित्र ! यहां अब होगा सत्वर,
आयेगी आनन्द-उषा, ले फिर स्वर्गाभा,
जाग उठेगा रूस त्याग निज नींद पुरातन,
और लिखेगा नाम हमारे, जागृत-अंतर,
जन-पीड़न-ध्वंशावशेष पर।

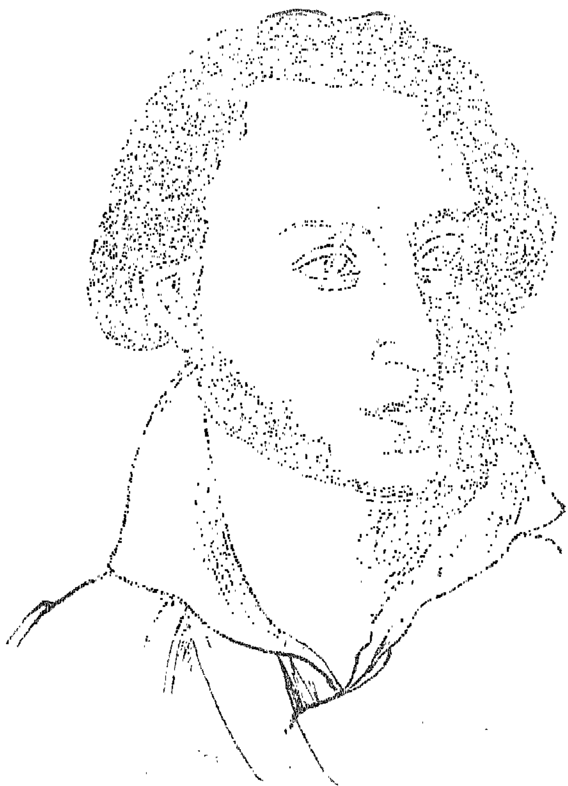
चाडयभ के सारे प्रयत्नों का, पर, तत्कालीन शासकों पर कोई असर न हुआ और वे उसे पागल ही समझते रहे। हाँ, उसकी कड़ी-से-कड़ी आलोचनाओं पर भी उन्होंने उसके विरुद्ध कोई कारवाई नहीं की जो कि वर्तमान रूस में एक असंभव-सी बात है।

पश्चिमीयता के प्रबल समर्थकों में से जो द्वितीय नाम उल्लेखनीय है वह है पेकरिन (१८०७--१८८५), का जिसने ग्रीस तथा रोमन भाषाओं का युरोप जाकर अध्ययन किया और रूस लौट कर २८ साल की अवस्था में ही मास्को विश्वविद्यालय में ग्रीस भाषा का अध्यापक नियुक्त हुआ। कई पाण्डित्यपूर्ण पुस्तकें भी प्राचीन ग्रीस साहित्य-संबंधी लिखीं। पर अन्त में अपने प्रयत्न में असफल ही रहा--तत्कालीन शासकों को वह अपने विचारों से प्रभावित न कर सका। मास्को के सामाजिक जीवन से वह इतना क्षुब्ध हुआ कि अन्ततोगत्वा देश त्याग कर युरोप चला गया और फिर न लौटा। उसके मित्र उसके इस कार्य से महान् दुःखित हुए। उसे वापिस बुलाने की भरपूर चेष्टा की पर सफल न हो सके। हर्जेन ने अपने संस्मरणों में उसके इस कार्य की बड़ी कड़ी आलोचना की है।

पेकरिन के हृदय में स्वदेश-प्रेम की कमी न थी पर वहाँ की तत्कालीन परिस्थितियों से उसे गहन निराशा ही नहीं, अतीव आक्रोश भी था। इसकी गंभीरता का अनुभव उसकी निम्न पंक्तियों से सहज में किया जा सकता है---

स्वदेश के प्रति घृणा के भावों में भी कितना माधुर्य्य है !
और उत्सुकतापूर्वक उसके सम्पूर्ण विनाश की प्रतीक्षा में !
उसके पतन में संसार के लिए एक नये जीवन के उषाकाल के चिह्नों के अवलोकन में।

निकलिस ओगारीभ भी उपर्युक्त विचारवाहकों में एक प्रमुख स्थान रखता



पुश्किन
प्रसिद्ध क्रान्तिकारी कवि

है। हर्जेन के वह घनिष्ठ मित्रों में से था और अन्त में उसे भी उनके साथ ही देश निर्वासित जीवन बिताना पड़ा।

ज़ारशाही के अंकुश ने अनेकों उदार एवं प्रगतिशील व्यक्तियों को देश त्यागने को मजबूर किया, पर साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि वर्तमान रूस की अपेक्षा तत्कालीन रूस में स्वतन्त्र विचारों के जन्म और विकास के रास्तों में रुकावटें कम थीं। ज़ार का शासन निरंकुशता से ओतप्रोत था, इसके संबंध में दो विचार नहीं हो सकते, पर उसके कुछ निश्चित ख़यालात थे—राजनीतिक एवं धार्मिक—और जब तक इन स्वतन्त्र विचारों का उनसे गहरा मतभेद नहीं होता, उनके साथ संघर्ष में नहीं आते, तब तक वे स्वच्छन्दतापूर्वक विचर पाते थे। यही कारण है कि तत्कालीन उग्र विचारधाराओं के वाहक एक नहीं, अनेकों लेख और पुस्तकें प्रकाशित हो पायीं - चाडयव के 'प्रथम दार्शनिक पत्र' जैसी रचनाएँ तक—और तब तक प्रसार पाती रहीं जब तक कि रूसी सेंसर (दोष-निरीक्षक) ने उन्हें प्रतिबंधित नहीं किया। आधुनिक रूसी शासन तथा तत्कालीन शासन में यह एक बहुत बड़ा अन्तर था जिसे हमें स्मरण रखना चाहिए। वर्तमान रूस में यह कठिन ही नहीं, असंभव है कि साम्यवाद से मतभेद रखने वाली एक भी कोई रचना प्रकाश पाये और यदि यही अवस्था उन दिनों होती तो संसार अनेकों बहुमूल्य रूसी चिन्तकों की कृतियों से वंचित रहता।

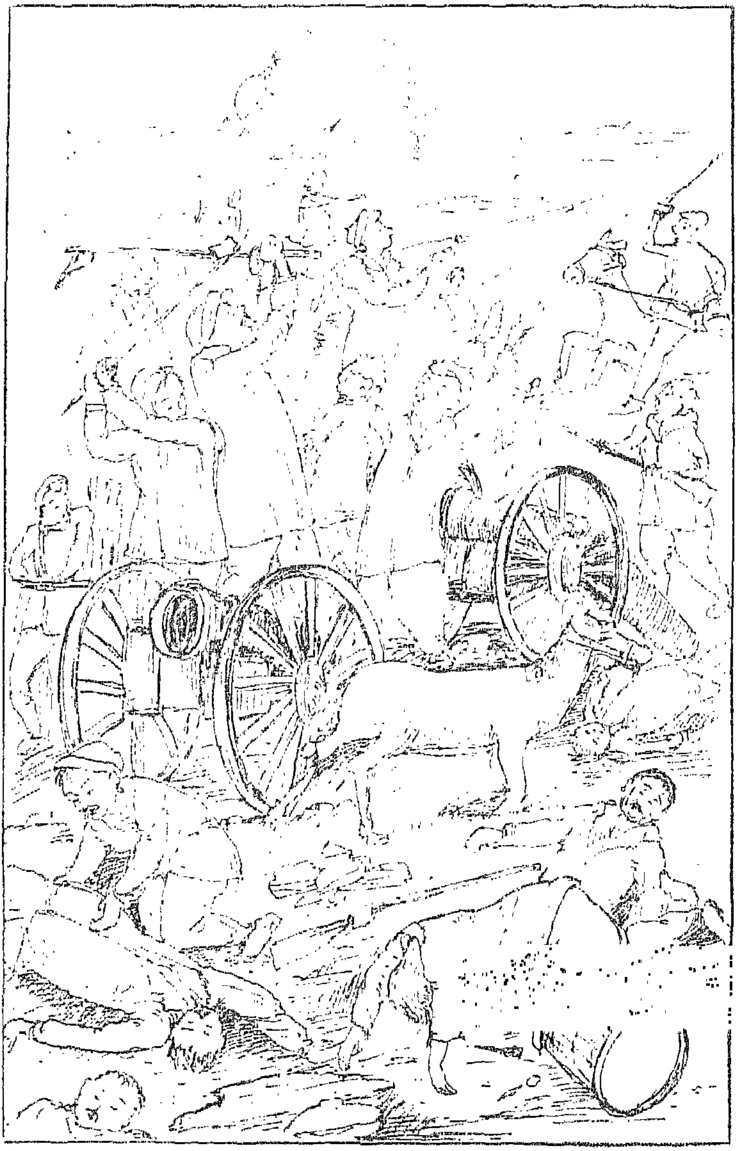
इन दोनों शासनों के बीच दूसरा अन्तर यह है कि जहाँ कि आज दिन रूस अपने सिद्धान्तों के ही नहीं बल्कि स्टालिनसदृश नेताओं के व्यक्तिगत गुणगान में संलग्न है, तत्कालीन शासन ने ज़ार की व्यक्तिगत प्रशंसा की राह नहीं अख्तियार की, उसकी सबसे बड़ी चेष्टा नवीन विचारों की प्रगति रोकने की रही और इस उद्देश्य-पूर्ति के लिए उसने कुछ उठा न रखा। उत्पीड़न की सीमाओं का सदा उल्लंघन करता रहा। ('क्रान्ति के अग्रदूत' के पृष्ठ इसके उदाहरणों से भरे पड़े हैं) और संदेह नहीं कि यदि वे अपने उद्देश्य में सफल होते तो अभी सैकड़ों वर्षों तक वह देश अज्ञानता की निद्रा में पड़ा होता, पर प्रशंसनीय हैं वे महान् आत्माएँ जिन्होंने इन सारे उत्पीड़नों के बावजूद भी अपने संकल्पों को न त्यागा—प्रगतिशील, नव विचारों के पथ पर दृढ़ रहे। बेलिन्सकी, डोबरोलिबफ, चरनिश्स्की—ये तीन नवीन विचारधाराओं के प्रधान प्रवाहक थे, हालाँकि इनके संबंधमें ही प्रशंसा रूप में सही, वर्तमान रूसी शासनने कुछ भ्रमात्मक बातें भी फैला रखी हैं, यथा बेलिन्सकी के संबंध में यह कि वह राजनैतिक क्रांतिवादी था। यह ठीक है कि बेलिन्सकी के विचारों ने राजनैतिक क्रांतिवाद को अत्यधिक प्रोत्साहन दिया पर स्वयं राजनीति से वह कोसों दूर रहा। रूस के आध्यात्मिक जीवन के प्रवाह में जो एक प्रकार की जड़ता आ गई थी उसके प्रति ही उसका सबसे अधिक विरोध था और इस मनोवृत्ति को वह देश का सबसे बड़ा शत्रु मानता

रहा। अपने लेखों में ज़ार पिटर की उसने भूरि-भूरि प्रशंसा की है और उसे संसार का सर्वश्रेष्ठ शासक बताया है, चूंकि उसने देश का प्राचीन संस्कृति अथवा आदर्शों पर नहीं, वल्कि नवीनतम विचारों पर एक नये देश, एक नये समाज का निर्माण करना चाहा था। स्वतन्त्र विचारों के प्रबल समर्थक, बेलिन्सकी ने अपना जीवन पत्रकारिता में बिताया और ऊंचे शब्दों में कहता रहा : विज्ञान और कला में अपने को डुबो डालो, उन्हें अपने जीवन का प्रतीक मानकर प्यार करो, स्वार्थपूर्ति का साधन न बनाओ और तभी तुम्हारा यह जीवन सुखमय होगा तथा पूर्णता लाभ करेगा।

जैसा कि मैंने आरम्भ में कहा है, रूस में उन दिनों दो विचारधाराएँ जोरों में चल पड़ी थीं—एक तो वह जिसका प्रारम्भ ज़ार पिटर ने किया था और जो रूस को पश्चिमीय विचारों एवं रहन सहन में ओतप्रोत करना चाहती थी, और दूसरी वह जो कि रूस की पुरानी संस्कृति तथा आचार-विचारों के पुनर्जीवन अथवा जागृति के आधार पर देश और समाज का पुनर्संगठन करना चाहती थी। इन स्लैव-संस्कृति के पृष्ठपोषकों के विचार वे ही थे जो कि आज दिन रूसी साम्यवादी शासकों के हैं, अर्थात् रूस को पश्चिमीय प्रभावों से न रँगकर पश्चिम, बल्कि संसार को ही वे अपनी संस्कृति तथा अपने विचारों के रंग में रँगना चाहते थे। वे स्लैव जाति को संसार की सर्वश्रेष्ठ जाति समझते थे, तथा उसके द्वारा संसार की शेष सभी जातियों को उच्चादर्शों के सन्देश सुनाना चाहते थे। गोगल को हम इस विचार का आदिनेता मानेंगे। फ्रान्स तथा जर्मनी का वह प्रबल विरोधी था तथा इनके सम्बन्ध में अनेकों भ्रमात्मक बातें फैलाकर उसने रूसियों को उनके विरुद्ध करने की चेष्टा की थी।

उपर्युक्त विचार के पृष्ठपोषकों के सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है, कि ये सभी पश्चिम के विरोधी हों, ऐसी बात नहीं है। कुछ तो इसके प्रबल विरोधी थे, जैसे कि आज भारतवर्ष में भी अनेकों जन हैं, पर कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने युरोप जाकर शिक्षोपार्जन किया था तथा वहाँ की समुन्नति से प्रभावित होकर, विचारों से उत्साह प्राप्त कर, अपने देश, अपनी जाति को—अपनी प्राचीन संस्कृति, सभ्यता को—उत्कर्ष के शिखर पर आरूढ़ देखना चाहते थे। स्वभावतः दोनों का प्रतीक एक होने पर भी दोनों के मार्ग भिन्न-भिन्न थे। इन मार्गों पर चलते हुए उनमें से कइयों की तत्कालीन शासकों से भिड़न्त हो जाना कोई आश्चर्य की बात न थी। 'क्रान्ति के अग्रदूत' में जिन महान स्त्री-पुरुषों के जीवनवृत्त दिये गये हैं, वे ऐसे ही जनों में थे।

गोगल के सिवाय कारामजिन, आकसेकम, ओडोवस्की, इभान किरेवस्की, पिटर किरेवस्की आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं पर इन सबसे अधिक जिसके व्यक्तित्व की छाप इस आन्दोलन पर पड़ी वह था खोमयाकोभ जिसका जन्म रूस



नेपोलियन की हार ने रूसवासियों के हृदय में एक गौरव का भाव उत्पन्न किया।

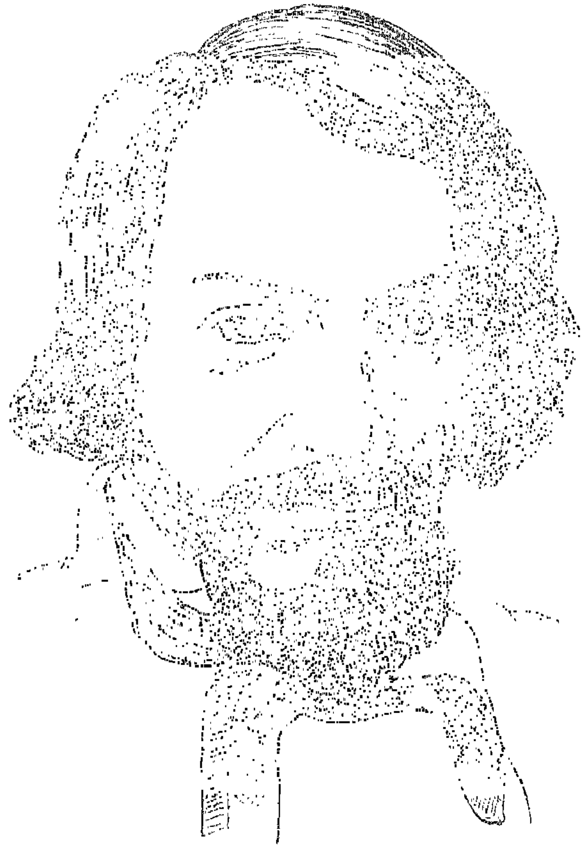
के एक सामन्त परिवार में हुआ था तथा जिसने फ्रांस, इटली, स्विट्ज़रलैण्ड आदि देशों में भ्रमण कर पश्चिमीय सभ्यता का पूरा अध्ययन किया था। फौज में भर्ती हुआ, टर्की के खिलाफ की लड़ाइयों में लड़ा भी, पर उसकी आन्तरिक भावुकता उसे काव्य की ओर ही ले गयी, जीवन के और पहलुओं से वह विरक्त सा ही रहा। उसका यह दृढ़ विश्वास था कि रूसी राष्ट्र का निर्माण विधाता ने संसार के सामने एक उच्चादर्श रखने के लिए ही किया है—जैसा कि श्वेत-जाति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध अंग्रेज कवि रुडयार्ड किपलिंग के विचार थे—जो कि उसकी पद्य-रचनाओं से साफ-साफ परिलक्षित हैं।

यूरोप के प्रति उसकी बड़ी सद्भावनाएँ थीं, बड़ी उम्मीदें थीं, पर अन्त में वे निराशा में परिणत हुईं। सन् १८३४ ई० में लिखी हुई उसकी "स्वप्न" नामक कविता की इन पंक्तियों में उसके हृदय के उद्‌गार अंकित हैं—

"पश्चिम के दूर-दूर के कोने तक अंधकार की छाया फैल गई—पवित्र एवं आश्चर्यमयी इस भूमि के पटल पर। पुराने वे तारे अब क्रियमाण होकर पीले पड़ रहे हैं। आह! यह गौरवपूर्ण पश्चिम कितना सौन्दर्यपूर्ण भी था। युगों तक सारी पृथ्वी अपनी समस्त चमक दमक के साथ, स्तब्ध एवं भयभीत सी, अपने घुटनों के बल, उसके सामने नतमस्तक रही।

ज्ञान का प्रथम सूर्य, हमारी आँखों के सामने, वहीं उदित हुआ और शांत-भाव से चन्द्रज्योत्स्ना की भाँति, निष्कलङ्क प्रेम की ज्योति उमड़ पड़ी। भावों का चमकीला इन्द्र धनुष प्रकट हुआ, धार्मिक विश्वास की अग्नि ने प्रकाश की रेखाएँ विकीर्ण कीं। हाय, वह युग आज मरण को प्राप्त हुआ! पश्चिमीय संसार पर आज मृतक के शव पर का वह दुखदायी पर्दा गिर रहा है। वहाँ अब घनान्धकार का ही राज्य होगा। विधाता की पुकार सुनो, तथा नये उषाकाल में अपने नेत्र खोलकर देखो। अरे ओ सोने वाले पश्चिम! जगो, जगो!"

उसकी "रूस के प्रति"—शीर्षक कविता ने एक तहलका मचा दिया और रूसी सरकार को उसके सारे काव्य के प्रकाशन पर प्रतिबन्ध लगा देना पड़ा। उसकी ये पंक्तियां अत्यधिक भयानक मानी गयी थीं—"पर यह न भूलो कि किसी भी संसारी जीव के लिये भगवान के कार्यों का निमित्त होना बड़ा ही कठिन है। वह बड़ी ही कड़ाई के साथ अपने अनुगतों के कार्यों का निरीक्षण करते हैं। और तुम—हाय, तुम्हारे सिर पर कितने भयंकर कर्मों का बोझ लदा है! अदालतों के काले अन्यायों से रंजित, दासता से चिह्नित, खुशामद, असत्य आदि समस्त प्रकार की बुराइयों से भरे हुए तुम इस पवित्र कार्य के योग्य नहीं—फिर भी, भगवान ने एतदर्थ तुम्हारा ही वरण किया है।"



खोमयाकोभ

"चरित्रगठन एवं धार्मिक भावनाओं का वह प्रबल समर्थक था। इन्हें संसार के सारे ऐश्वर्य तथा गुणों से श्रेष्ठ मानता था। इन पंक्तियों में यह विचार प्रदर्शित है :—

"उन सारे बल और रौनकों पर गर्व न करो, क्योंकि गर्वभरा मस्तिष्क हमेशा ही मरु-भूमि सा बना रहता है। स्वर्ण सदा धोखा ही देता है तथा इस्पात टूट जाता है। पवित्रता का ज्योतिमान संसार ही सबसे मजबूत, न टूटने वाली जमीन, है तथा प्रार्थना में उठा हुआ हाथ ही सभी हाथों से बलवान है।"

राष्ट्रीयता के इन पुजारियों में कुछ ऐसे भी थे जो उग्र थे और उनकी दृष्टि में भावुकता को स्थान कम था, वास्तविकता को ज्यादा, और वे इस बात को महसूस करते थे कि जब तक देश की राजनैतिक स्थिति में सुधार नहीं होता, तब तक उनका देश संसार में अपना समुचित स्थान ग्रहण न कर पायेगा। अर्थात् ये चिन्तक ही नहीं थे वरन् सक्रिय राजनैतिक सुधारवादी भी थे। ऐसे लोगों में सबसे पहला नाम जो ध्यान पर आता है वह द्स्तुचेभ का है। आरम्भ के २२ साल युरोप में बिताकर भी वह टुर्गनिभ की तरह उसका भक्त अथवा प्रशंसक नहीं बल्कि उसका घोर आलोचक ही होकर लौटा। फ्रान्स के लिए उसके हृदय में कोई अच्छे भाव न जग सके। जर्मनी को वह स्लैव जाति के उन्नति के मार्ग का प्रबल कंटक ही समझता रहा। अपनी रचनाओं में स्वदेश के दरिद्र ग्रामीणों के लिए उसने आँसू बहाये हैं तथा रूस के आनेवाले दिनों का एक ऐसा चित्र खींचा है जो अत्युक्ति से ओतप्रोत ही नहीं, उपहासास्पद भी है। रूस का भौगोलिक चित्र उसके शब्दों में सुनिये :—

सात समुद्र एवं सात महान् नदियाँ, नाइल से लेकर नेभा तक, एलबी से चीन तक, भोलगा से युफ्रेटिश एवं गंगा से डन्यूब तक—रूसी साम्राज्य का यही भौगोलिक चित्र है।"

इसमें शक नहीं, कि द्स्तुचेभ पढ़ा-लिखा, योग्य, लेखक था, उसकी रचनाओं की संख्या बहुत अधिक है और कुछ महत्त्वपूर्ण भी हैं—पर स्वदेश-प्रेम उसे हमेशा औचित्य की सीमा से दूर ले जाता रहा। इसकी अपेक्षा प्रसिद्ध लेखक सरजी एकसेकोभ के दो योग्य पुत्र कौनस्टैनटीन और इभान कहीं अधिक प्रभावशाली थे। हालांकि उग्रता में उससे किसी कदर कम न थे। तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति एवं शासन-संबंधी बुराइयों के संबंध में कौनस्टैनटीन के विचार अत्यन्त ही उग्र थे, और उसने निर्भय होकर अपने उन विचारों को प्रकट किया था। रूसो की तरह स्टेट (राज्य) एवं समाज के सम्बन्ध में उसके विचार स्वतंत्र एवं दृढ़ थे। "किसी भी सरकार का सृजन, शक्ति और परतंत्रता का आरम्भ ही मानना चाहिए, उसने लिखा है, 'तथा कानून के जन्म का अर्थ पाप की सृष्टि ही है।"



बेलिन्सकी

कोन्स्टैनटीन की भाँति ही उसका भाई इभान भी स्लैव-संस्कृति का परम पृष्ठपोषक एवं पश्चिमीय सभ्यता तथा जातियों का प्रबल विरोधी था। साथ-साथ तत्कालीन रूसी शासन का, खास कर घूसखोरी आदि बुराइयों का, जोकि सरकारके पदाधिकारियों के बीच प्लेग की तरह फैल रही थी, उसने खुले शब्दों में विरोध किया और इनके विरुद्ध एक जबर्दस्त वातावरण की सृष्टि की। वह सफल पत्रकार था तथा पत्रकारिता की मर्य्यादा को उसने अपनी निरपेक्षता, ईमानदारी, स्पष्टवादिता आदि गुणों से बहुत आगे बढ़ाया तथा हर्जेन आदि भावी पत्रकारों के लिए एक ऊँचे आदर्श का निर्माण किया। प्रोफेट (भविष्यवक्ता) जेरमाया (बाईबिल, ओल्ड टैस्टामेन्ट) की तरह वह निर्भीकतापूर्वक सब बुरी चीजों के खिलाफ जोरदार शब्दों में अपनी आवाज उठाता तथा जनसमाज में उसके विरुद्ध एक बलवान वायुमंडल तैयार कर देता था। काश हमारे देश के पत्रकार भी ऐसा ही होते !

इभान के बाद इस श्रेणी में कोशलेभ तथा समारिन के नाम आते हैं। कोशलेभ इंगलैण्ड के जोरदार समर्थकों, प्रशंसकों, में था और अपने लेखों में इसके गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा भी की है। पर उनका अनुकरण करने का वह विरोधी था चूंकि वह स्लैव संस्कृति को संसार की सारी संस्कृतियों से उच्च मानता था।

कोशलेभ की अपेक्षा समारिन ने तत्कालीन रूसी जन-विचार पर कहीं ज्यादा प्रभाव डाला था। फ्रेंच, जर्मन, ग्रीक, रोमन आदि भाषाओं का पंडित था, विचारों में गंभीरता थी, तथा तत्कालीन क्रान्तिकारियों के व्यर्थ के षड्यंत्रों का विरोधी था। साथ ही रूसी सरकार की निर्बुद्धि-पूर्ण नीति का भी प्रबल विरोधी था। कम्युनिस्ट विचारों को वह देश के लिए घातक समझता तथा पश्चिमीय विचारों के कारण जो देश में एक मानसिक शैथिल्य—स्वतंत्र विचारों की कमी—आ गयी थी उसका विरोधी तो था ही, इस प्रकृति अथवा बढ़ते हुए रोग के रोकने की चेष्टा में, जीवन भर, सलंग्न भी रहा। हर्जेन के वह घनिष्ठ मित्रों में से था पर इसी विषय को लेकर उन दोनों की मैत्री का एक प्रकार से विच्छेद सा हो गया। सन् १८६४ ई० में वे दोनों पुनः लंदन में मिले और सारी रात अपने विचारों को लेकर वाक्युद्ध में बितायी। सुबह हुई तो फिर गले से गले मिलकर उन्होंने अपनी खोयी हुई मैत्री को पुनर्जीवित किया, पर दस दिनों के बाद ही समारिन ने पुनः एक कड़ी चिट्ठी हर्जेन को लिखी जिसमें उसने उसके ऊपर रूसी जनता के मानसिक विकास के अवरोध का आरोप लगाया।

पश्चिमीय विचार-विरोधियों में समारिन के बाद कोई और ऐसा व्यक्ति उत्पन्न न हुआ जो इस बढ़ती हुई विचारधारा को सफलतापूर्वक रोक सकता और फिर, इन विरोधियों के लाख प्रयत्न करने पर भी यह बाढ़ रुक न सकी, रूसी युवकों

का मानसिक दृष्टिकोण पश्चिम की ओर ही आकृष्ट होता रहा—पश्चिमीय सभ्यता तथा विचारों की तड़क-भड़क ने उन पर जादू का सा असर डाला और वे क्रमशः उसकी ओर अग्रसर होते गये।

जिन महान् चिन्तकों के व्यक्तित्व एवं विचारों का तत्कालीन समाज और भावी पीढ़ियों पर अत्यधिक असर पड़ा उनमें निकलिस चरनिवस्की का नाम सबसे अग्रगण्य है।

वह अगाध विद्वान तो था ही, परम चरित्रवान भी था और निरा सिद्धान्तवादी ही नहीं, अपने सिद्धान्तों पर स्वयं अमल करने वाला था और ये ही कारण थे जिन्होंने जनता के बीच उसे इतना लोकप्रिय बनाया। उसके विचारों की मौलिकता के संबंध में स्वयं कार्ल मार्क्स ने एक नहीं, अनेकों बार, अपने प्रशंसात्मक विचार प्रकट किये थे तथा लेनिन उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा किया करता था। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है, कि जहाँ एक ओर उसे कार्ल मार्क्स एवं लेनिन जैसे क्रान्तिवादियों के द्वारा प्रशंसा प्राप्त थी, दूसरी ओर रोजानभ जैसा जारशाही का कट्टर समर्थक भी उसके ऊपर फिदा था। एक जगह चरनिवस्की के संबंध में उसने लिखा है कि—'महान् पिटर के बाद हमें फिर कोई ऐसा उच्चश्रेणी का व्यक्ति नहीं मिला था जिसका प्रति मुहूर्त ही जीवन से परिपूर्ण है तथा जिसका प्रत्येक कार्य्य देश की भलाई के भाव से भरा हुआ है।' लेनिन ने उसे पथ-प्रदर्शक नक्षत्र की उपाधि प्रदान की थी।

सन् १८२८ ई० में सराटोभ नामक स्थान में चरनिवस्की का जन्म हुआ था। स्थानीय पादड़ियों की पाठशाला में उसने प्रारम्भिक शिक्षा पायी जहाँ कि उसने अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया जिसके फलस्वरूप सेंट पिटर्सबर्ग के विश्व-विद्यालय में, जहाँ प्रवेश पाना एक बहुत ही कठिन बात मानी जाती थी, वह सुगमता से भर्ती हुआ। वहाँ उसने परिश्रमपूर्वक युरोपीय दर्शन, इतिहास तथा साहित्य का अध्ययन किया, पर शीघ्र ही वहाँ की प्राचीन शिक्षा-पद्धति से उसका जी ऊब सा गया। यह शिक्षा-पद्धति, एक जगह उसने लिखा है, मानसिक विकास के स्थान पर मानसिक अवरोध का साधन-मात्र थी, और यदि मैंने जितने पैसे सेंटपिटर्सबर्ग सरीखे खर्चालू जगह में रहकर व्यय किये, उतने दाम के ग्रन्थ खरीदकर घर पर ही अध्ययन किया होता तो कहीं ज्यादा लाभ उठाता।

धीरे-धीरे उसकी प्रवृत्ति राजनीति के अध्ययन की ओर बढ़ती गयी और वह साम्यवाद के भावों से पूरी तरह प्रभावित हो उठा।

फेयरबाश, प्राउधन, तथा लेडरू-रोलैण्ड के ग्रन्थों में उसकी बड़ी अभिरुचि थी, लुई ब्लान्क का तो वह एक प्रकार से पुजारी ही बन गया। हेजल के दार्शनिक विचारों का भी उसके ऊपर काफी प्रभाव पड़ा। उसकी दृष्टि पत्रकारिता की ओर



मरणशय्या पर बेलिन्स्की

मुद्दों और अन्त में वह "समकालीन" नामक प्रसिद्ध रूसी पत्र का संपादक बन गया। अपने साम्यवादी—क्रान्तिकारी—विचारों का वह इसके द्वारा पूरे जोशोखरोश के साथ प्रचार करने लगा। शासन-सुधार, भूमि-वितरण, सामाजिक क्रान्ति, वर्गहीन समाज की संस्थापना आदि प्रगतिशील विचारों ने इस पत्र के द्वारा पूर्णरूपेण प्रकर्ष पाया। परिणाम यह हुआ कि वहाँ के जमीन-मालिक उसके भूमि-वितरण वाले प्रचार कार्य्य से आशंकित होकर, उसके विरुद्ध हो गये और उन्होंने सरकार के पास चिट्ठियाँ भेजीं जिनमें चरनिवस्की के ऊपर यह आरोप लगाया कि वह विभिन्न वर्गों के बीच कलह बढ़ाने के कार्य में लगा हुआ है। प्रमाण में उन्होंने 'समकालीन' में छपे हुए कतिपय लेखों के अवतरण पेश किये। सरकार ने जाँच पड़ताल की और अन्त में उनकी शिकायतों की सत्यता के संबंध में सन्तुष्ट होकर चरनिवस्की को बीस वर्षों के लिए निर्वासित कर साइबेरिया भेज दिया। पर वहाँ उसे लिखने-पढ़ने की सुविधाएँ दे दीं जिसके परिणामस्वरूप वह अपना प्रसिद्ध उपन्यास 'क्या करें' को लिख पाया। गोकि इसके विचारों में फोरियर, राबर्ट ओएन, जान स्टूअर्ट मिल आदि की काफी छाप है, इसका सारा कथानक रूसी है तथा इसकी सारी रूपरेखा रूस की तत्कालीन सामाजिक अवस्था से भरी हुई है। संसार के महान ग्रन्थों में इसकी गणना है।

बीस वर्षों के देशनिर्वासन के बाद जब वह रूस लौटा तो अपने स्वास्थ्य को पूरी तरह खो चुका था। भावी कार्य्यों की कई योजनाएँ उसने बनायीं पर गिरे हुए स्वास्थ्य के कारण उन्हें कार्यरूप में परिणत न कर सका, और अन्त में—

खुश रहो अहले वतन, हम तो विदा होते हैं!—कहता हुआ इस संसार से विदा हो गया।

चरनिवस्की उन चन्द भाग्यवान लोगों में है जिसको आज सोविएट रूस भी पूजा करता है। वह उसे कम्युनिज्म का अग्रदूत समझता तथा उसके द्वारा अपने व्यक्तिगत अहङ्कार को यह कह कर सन्तोष प्रदान करता है कि साम्यवाद का सिद्धांत रूस ने किसी गैर-रूसी चिंतक यानी मार्क्स से ही ग्रहण किया हो—ऐसी बात नहीं, रूस ने स्वयं भी चरनिवस्की के द्वारा इस महान् तत्व का सृजन किया था। यही कारण है कि अभी पिछले दिनों उसने चरनिवस्की की स्मृति में अनेक जलसे किये तथा रूसी जनता के सम्मुख उसके जीवन-वृत्तान्त तथा विचारों के चित्र पेश किये थे।

इसमें शक नहीं कि वह एक उच्च दर्जे का ईमानदार व्यक्ति था और यही कारण है कि उसे अपने विचारों को बार-बार बदलना पड़ा था, चूँकि जब वह यह महसूस कर लेता कि उसके विचार गलत हैं तो फिर केवल अपनी बात रखने के ख्याल से, हठ से, उनका समर्थन नहीं करता, बल्कि फौरन अपनी भूल स्वीकार कर



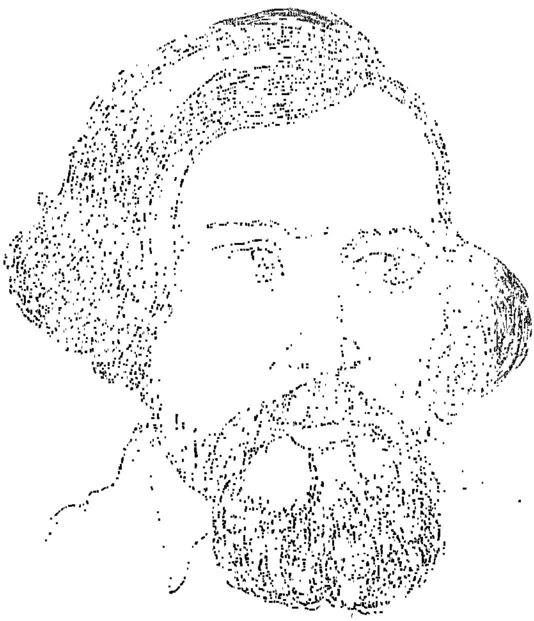
शूली की जंजीरों में बँधा हुआ चरनिवस्की। देश-निर्वासन के पूर्व शूली की जंजीरों में बाँधकर पुन: मुक्त कर देने की एक प्रथा थी — जिसे सिविल फाँसी के नाम से पुकारते थे — उसका वह भागी हुआ था।

उनमें यथोचित परिवर्तन कर डालता था। यही कारण था कि प्रसिद्ध लेखक एवं उपन्यासकार दुर्गनिभ से उसकी मुठभेड़ हो गयी और दुर्गनिभ ने उसे खरी-खोटी सुना दी थी।

अपने साम्यवादी सिद्धांत पर दृढ़ रह कर भी बार-बार उसने अपनी उदारता का परिचय दिया था। कई बार उसने ज़ार के कार्यों की प्रशंसा की थी एवं रूस को पश्चिमीय विचारधाराओं से अप्रभावित रखने के प्रतिपक्षियों में से कइयों की समय-समय पर उसने मुक्त-हृदय से प्रशंसा की थी। यह उसकी महान् उदारता का द्योतक था तथा यह प्रमाणित करता था, कि उसकी दृष्टि में सिद्धान्त से भी अधिक मनुष्य की सचाई का मूल्य था।

थोड़े में रूस के उन महान् व्यक्तियों का, जिन्होंने अपने विचारों से समकालीन एवं आनेवाली पीढ़ियों को प्रभावित किया, तथा उन दो मुख्य विचारधाराओं का जो बहुकाल तक उस देश में प्रवाहित होती रहीं, यही इतिहास है। इनसे प्रभावित होकर जिन स्त्री-पुरुषों ने सक्रिय क्रांति में हिस्सा बँटाया—देश को ज़ार के अति-निरंकुश शासन से परित्राण प्रदान करने की चेष्टा की, आगे के परिच्छेदों में उनमें से ही कुछेक के जीवन-वृत्तान्त हैं। अलेकजेण्डर हर्ज़ेन जैसे दो-एक प्रमुख चिन्तक नेताओं के भी जीवन-वृत्तान्त स्वतन्त्ररूप से दिये गये हैं। चूँकि उनमें केवल चिन्तनशक्ति ही नहीं, सक्रियता भी काफी परिमाण में थी और उनका स्थान सक्रिय क्रांतिकारियों के साथ है न कि केवल चिन्तकों के। जिन देशभक्तों का आगे के पृष्ठों में जिक्र है वैसे न जाने कितने और रहे होंगे जिन्होंने स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर अपने प्राण गँवाये, पर स्थान की कमी से उन सबों का इस छोटी सी पुस्तक में उल्लेख करना संभव न हो सका, इसका खेद है।

ऐसे तो संसार के सभी मुल्कों ने देशभक्त, अत्याचार-परपीड़न-विरोधी, गुलामी के खिलाफ आवाज उठाने वाले महान् स्त्री-पुरुषों को पैदा किया है, पर सदियों तक निरंकुशता के विरुद्ध प्राणों की बाजी लगा कर महान् दिक्कतों के बावजूद भी, लड़ाई की मसाल जला रखने वाले इन रूसी क्रांतिकारियों का, संसार के क्रांति-इतिहास में, एक गौरवपूर्ण खास स्थान है जिसकी मिसाल इतिहास के पृष्ठों में पाना कठिन ही नहीं, असंभव है। लेनिन की अद्भुत् सफलता का बहुत बड़ा श्रेय इन्हीं क्रांतिकारियों को है जिन्होंने पहले से अपने प्राण देकर इसके लिए जमीन तैयार कर रखी थी। जैसा कि इस पुस्तक के आगामी पृष्ठों से प्रतीत होगा, इन्हें बड़ी-बड़ी यंत्रणाएँ सहनी पड़ी। साइबेरिया के सुदूर एवं हिममंडित प्रान्त में जीवन के दिन—जहाँ घर की ही नहीं, बल्कि कहीं की भी कोई खबरें न पहुँच पाती थीं—घोर परिश्रम में बिताने पड़े। पर ये अपने पथ से विचलित न हुए, अपने आदर्श से लिपटे ही



चरनिवस्की

रहे, उन पतंगों की भाँति जो जलते हैं पर दीपक का प्रेम नहीं तजते—

फिदा सौ जान से होता हूँ परवानों की हिम्मत पर,
जल जाते हैं लेकिन शमा से लिपटे ही जाते हैं।

सांसारिक सुखों की तिलांजलि देने तथा संसार के विभिन्न प्रलोभनों से दूर रहने वाले विपत्ति-मेघों के सर पर मँडराते रहने पर भी अपने पथ पर दृढ़ रहने वाले इन रूसी क्रांतिकारियों के जीवनचरित से इस आत्मोत्सर्ग की शिक्षा ग्रहणीय है। कबीर ने कहा है—

कबिरा खड़ा बजार में, लिए लुकाठी हाथ,
जो घर जारे आपना, चले हमारे साथ।

सो ये वास्तव में अपना घर जला-जला कर क्रांति के पथ पर चल पड़े थे। इतिहास के पृष्ठों में इनकी ये जीवनकथाएं अमर रहेंगी। ये स्वयं अमर हैं—

कीर्तिर्यस्य स जीवति।

—लेखक

रूसी क्रान्ति के अग्रदूत

१

क्रान्ति की पहिली किरण

सन् १९१७ के मार्च महीने में रूस के एक छोर से दूसरे छोर तक "इनकलाब जिन्दाबाद !"--"क्रान्ति अमर हो !"--की ध्वनि गूँज उठी, पर इससे यह न समझना चाहिए कि क्रान्ति का आरम्भ, रूस में,१९१७ से ही हुआ। क्रान्ति का बीज-वपन उस देश में १९१७ से प्रायः ढाई सौ वर्ष पहले हुआ था और हजारों नहीं बल्कि लाखों क्रान्ति–उपासक उसकी बलि-वेदी पर अपने प्राण गँवा चुके थे। यह उनके ही बलिदान का फल था कि और देशों की अपेक्षा कहीं अधिक जोरदार शब्दों में रूस ने आवाज दी--क्रान्ति अमर हो !

रूस के क्रान्तिकारियों में सब से पहला नाम स्टेंका रेजिन का आता है। यद्यपि जार के जमाने में पढ़ायी जानेवाली पुस्तकों में उसे 'धर्मलुप्त' 'लुटेरा,' 'गुण्डा' आदि संज्ञाओं से स्मरण किया गया था, देहातके किस्सा-कहानियों और ग्रामगीतों में उसकी कीर्तिकहानी, देश के एक कोने से दूसरे कोने तक, गायी जाती थी और उसकी मृत्यु के प्रायः दो सौ वर्ष बाद भी रूसके किसान अपनी टूटीफूटी झोपड़ियों में बैठे हुए उसके नाम पर आँसू गिराया करते थे। स्टेंका रेजिन का जन्म एक कज्जाक परिवार में हुआ था और जीवन के आरम्भिक काल में वह अपना अधिक समय धार्मिक बातोंमें बिताया करता था। पर अधिक दिनों तक वह अपने को राजनीति से अलग न रख सका। उनदिनों रूस में दास प्रथाका कुछ ऐसा जोर था कि, उसके दुष्परिणामों के कारण सारे देश में अशांति की आग सुलग रही थी, और जार का निरंकुश शासन--या कुशासन--उस पर घी की आहुति दे रहा था ! ऐसे ही असङ्गत समय में जार ने वहाँ के प्रचलित इसाई धर्म के नियमों में मनमाना परिवर्तन करके यह घोषणा की, कि जो इन नियमों के अनुसार न चलेगा वह जाति और धर्म से बहिष्कृत समझा जायगा, परिणाम यह हुआ कि रूस में विद्रोह की आग धधक उठी और बहुत से लोग तत्कालीन 'चर्च' से अलग हो गये। असंख्य लोगोंने अपनी अपनी झोपड़ियों में आग लगा दी और स्वयं धधकती हुई आग में कूद कर मर गये, क्योंकि जार के सिपाहियों के हाथ बेरहमी से मारे जाने की अपेक्षा उन्होंने इसे बेहतर समझा।

ऐसे ही भीषण समय में स्टेंका रेजिन ने आगे बढ़ कर बलवाइयों का नेतृत्व ग्रहण किया था।

उसने रूस के किसानों पर जादू का-सा असर डाल दिया, उनके अपार भक्ति और स्नेह का भाजन बन बैठा। उसके शरीर में अनन्त शक्ति थी और साहस था, तथा अपने दुश्मनों के साथ "शठं प्रति शाठ्यम्" का व्यवहार करने में तनिक भी हिचकिचाहट न थी। उसने नेतृत्व ग्रहण करते ही यह घोषणा कर दी कि मेरा उद्देश्य रूस से दासप्रथा तथा जारशाही का विनाश करना और उसके स्थान पर प्रजातन्त्र स्थापित करना है, और इस में सन्देह नहीं कि उसके हृदय में पूरी नेकनीयती थी। बलवाइयों का उसने शीघ्रही मजबूत संगठन कर लिया और कुछ ही दिनों में रूस के दक्षिण-पूर्व हिस्से पर उसका पूरा अधिकार हो गया। रूस के कई प्रसिद्ध नगर उसके कब्जे में आ गये और उनमें प्रजातन्त्र की स्थापना कर दी गयी। जार की फौज के कई स्थानों पर उसने छक्के छुड़ा दिये। उसने एक सबल जल-सेनाका भी निर्माण कर लिया था, यहाँ तक कि कैसपियन सी (समुद्र) में पहुँच कर उसने एक बार फारस के बड़े को भी हराया था।

पर जार की उतनी बड़ी शक्ति के सामने वह ज्यादा दिनों तक नहीं ठहर सका। उसके कुछ अनुयायी जार से जा कर मिल गये और माफी माँग ली। १६७१ के एप्रिल महीने में वह पकड़ कर मास्को भेज दिया गया। वहां उसके अङ्गों के—जीवित अवस्था में ही—टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। प्रायः १ लाख और बलवाइयों के साथ भी ऐसा ही निर्दयतापूर्ण, अमानुषिक व्यवहार हुआ!

स्टेंका रेजिन की वीरता बड़े उच्च दर्जे की थी और उसका हृदय विशाल था। जार का वह कट्टर शत्रु था—क्योंकि प्रजातन्त्र का वह सच्चे दिल से हिमायती था। जार की उसे कितनी कम परवाह थी यह उसके उस उत्तर से प्रतीत होता है जो उसने जार के दूत को दिया था—"अगर जार पत्रोत्तर की कामना करते हैं तो उन्हें स्वयं अपने हाथों, पत्र लिखना उचित है।" पर इसका मतलब यह नहीं कि वह अहंकारी था। रूस की जनता जब उसे जार के नाम से पुकारने लगी थी तो उसने उनके पास लिख भेजा था :—"प्यारे दोस्तो! मेरी इच्छा तुम्हारे साथ भाई बन कर रहने की है, जार बन कर नहीं।" इसमें सन्देह नहीं कि उसके हृदय में अधिकार की तृष्णा न थी, पर उसके हृदय में निष्ठुरता अवश्य थी। कहते हैं, एक बार वह भोलगा नदी के जल में खाँ मेंदी की सुन्दरी तरुणी पुत्री के साथ—जो उसे फारस के बेड़े को लूटने के वक्त मिली थी और जिसे वह जी-जान से प्यार करता था—नौका पर तैर रहा था। उसके पास उस तरुणी को, जो सुन्दर वस्त्रों और अलंकारों से अलंकृत थी, पड़ी हुई देख कर उसके कुछ कज्जाक अनुयायियों ने यह आक्षेप किया, कि वह देश

की स्वतन्त्रता से अधिक उस सुन्दरी को चाहने लगा है। वह उनके इस आक्षेप को सुन कर मौन हो गया, फिर कुछ क्षणके बाद उसने राजकुमारी को अपने सर से ऊपर उठा कर कहा:—"भोलगा! तूने समय-समय पर मुझे अपरिमित सोना, चांदी और अन्य मूल्यवान वस्तुओं का दान दिया है। आज मैं तुझ पर अपनी सबसे प्यारी वस्तु की पूजा चढ़ाता हूँ" इतना कह कर उसने उस मंदभागिनी राजकुमारी को भोलगा नदी के अथाह जलमें डाल दिया!

२

विद्रोह बवंडर

ज़ार अलेक्ज़ेन्डर प्रथम के शासनकाल में एक नये और ओजस्वी आन्दोलन का विकास हुआ। इस बार ज़ारशाही के विरुद्ध रूस के गरीब किसान नहीं बल्कि वहां के धनवान---अधिकतर ऐसे जो वहां की फौज के उच्च बड़े पदाधिकारी थे---उठ खड़े हुए। उनके बीच पश्चिमीय उदार विचारों का प्रवेश ही इसका मुख्य कारण था। नेपोलियन के विरुद्ध जो सेना रूससे बाहर भेजी गयी थी उसने पश्चिमीय यूरोप में जाकर वहां की जो दशा देखी उससे उसकी आँखों के आगे का पर्दा हट गया--उसे एक नयी दुनिया नजर आने लगी।

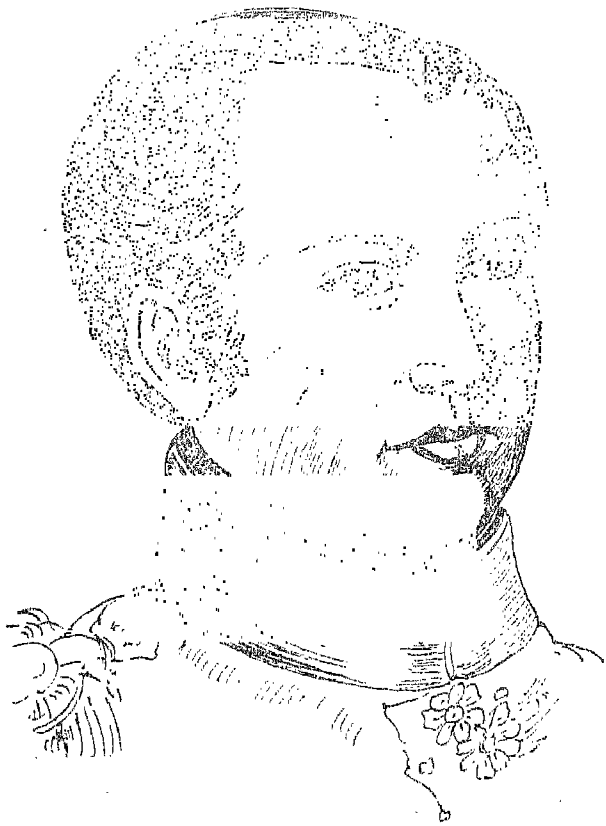
देशके शासन में प्रजा का हाथ रहने से देश कितना सुखसम्पन्न हो सकता है यह साफ साफ परिलक्षित हो गया। खासकर फ्रान्स में क्रान्ति के कारण लोगों का जीवन कितना सुखमय हो गया था--देश ने कितनी तरक्की की थी, जिसकी अब तक उसने कहानी मात्र सुनी थी, उसने अपनी आँखों देखी और देखकर उसके हृदय में आह--सी उठने लगी, कि हमारा देश इतना सुखसम्पन्न न हुआ! "दु:खशोक से परिप्लावित" अपने देश की दुर्दशा पर गौर करके उसे असह्य वेदना मालूम पड़ने लगी और उसने अपने मनमें यह संकल्प कर लिया कि रूससे ज़ारशाही का येनकेनप्रकारेण अन्त करेंगे। क्योंकि उसकायह दृढ़ विश्वास था कि रूसकी दुरवस्थाका एकमात्र कारण ज़ारका मनमानी शासन है। फ्रान्स से लौटती हुई सेना के प्रत्येक मनुष्य के---खासकर नौजवान अफ़सरों के हृदय में देश-प्रेम की आग सुलग रही थी। परिणाम यह हुआ कि रूस में शीघ्रही यत्र-तत्र राजनैतिक परिषदें कायम हो गयीं जिनमें देश की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति पर वादविवाद हुआ करता था और वहां के प्रचलित शासन के बदलने के उपाय सोचे जाते थे। ज़ारशाही का किन उपायों से अंत किया जाय---यह उन परिषदों के सम्मुख मुख्य प्रश्न था।

रूस के तत्कालीन शासन-विधान में परिवर्तन चाहनेवालों के दो दल थे---एक वह जो सिर्फ सुधारका पक्षपाती था और दूसरा वह जो ज़ारशाही का मूलोच्छेदन ही करना चाहता था। प्रारम्भ में ये दोनों दल---नर्म और गर्म---मिलकर काम करते

थे पर कुछ दिनों के बाद वे अलग हो गये । गर्म दलवालोंने दो नयी सोसाइटियां कायम करलीं—"उत्तरीय" और "दक्षिणीय" । दोनों में फौज के बड़े-बड़े पदाधिकारी सम्मिलित थे । इनके अलावा और भी बहुत से बड़े-बड़े लोगों की सहानुभूति इनके साथ थी—यहां तक कि जार के खास स्टाफ के कुछ लोग इनमें शामिल थे । पर इस आन्दोलन के जीवन-प्राण दो महान् व्यक्ति थे—पेस्टल और रिलीफ । पेस्टल फौज के कर्नल थे और रिलीफ कवि थे । इन दोनों में भी रिलीफ की अपेक्षा पेस्टल का प्रभाव ज्यादा था । उनके ही उद्योग और प्रभाव के कारण रूस के जमींदारों के नौजवान लड़के, जो पेस्टलको आदर और विश्वास की दृष्टि से देखते थे, आकर इस आन्दोलन में शामिल हुए । अब तक ज़ारशाही का विरोधी दल अपना लक्ष्य निश्चित न कर था, पेस्टल के आते ही उसका उद्देश साफ हो गया । ज़ारशाही का विनाश और जनसत्ता की संस्थापना, यही उसका ध्येय हुआ और इस ध्येय-पूर्ति के लिये उसने जार के खिलाफ खुली बगावत करने की सोची । पहले तो कुछ लोग इस प्रस्ताव के बिल्कुल विरुद्ध थे पर आगे चलकर सभी की एक राय हो गयी और सर्वसम्मति से यह निश्चय हुआ कि जारशाही के संहार का विपुल प्रयत्न किया जाय । उन्होंने यह भी निश्चय किया कि अगर उन्हें इस प्रयत्न में सफलता प्राप्त हो गयी तो रूसमें जबतक जनसत्ता की नींव दृढ़ न हो जाय तबतक देशका शासन-सूत्र एक डिक्टेटर के हाथ में रहेगा । कुछ लोगोंका यह विश्वास था कि रूसमें जनसत्ताकी संस्थापना जारशाही का अन्त होने पर ही हो सकेगी पर पेस्टलकी, जो दूर तक देखने वाले थे, धारणा इसके विपरीत थी । वह यह पूरी तरह महसूस करते थे कि रूसमें जारशाही के बाद एक उथल-पुथल का जमाना आवेगा जिसके लिये, कुछ दिनों के लिये ही सही, एक डिक्टेटर का होना आवश्यक होगा ।

रिलीफ क्रान्तिकारी कवि थे, और पेस्टल से किसी कदर कम दृढ़ न थे । उनकी जोशीली कविताएँ और कहानियां देश और स्वतन्त्रता के प्रेम से ओत-प्रोत होती थीं, सुनने वालों के नसों में जान ला देने वाली थीं । उनकी क्रान्तिकारी कविताएँ, कहानियां और राजनीतिक लेख पर्चों के रूप में छाप-छापकर स्कूल और कालिजों में बांटे जाते थे । "दक्षिणीय सुसाइटी" के रिलीफ ही सर्वेसर्वा थे, यद्यपि नाम के लिए प्रिंस टुबेस्काइ इसके मनोनीत सभापति थे ।

अवसर बीता जा रहा था, संगठन काफी हो गया था । अब काम करने का समय आया । दक्षिणीय संघ का प्रचार फौज में और उत्तरीय का धनी-मानी लोगों के बीच पूर्णरूप से हो गया था । १८२४ में पेस्टल ने सेन्ट पिटर्सबर्ग जाकर—दक्षिणीय और उत्तरीय—दोनों संघों का एकीकरण करके उन्हें एक ही कार्यकारिणी समिति के अन्दर ला दिया । वह जार वंश का एक ही दिन में



पेस्टल

मूलोच्छेदन कर देना और सिनेट तथा धर्म महासभा (The Holy Synod) को पराजित करके उन्हें प्रजातन्त्र की घोषणा करने को मजबूर करना तथा प्रजातन्त्र की स्थापना होते ही बड़े बड़े सभी अफसरों को बर्खास्त करके उनकी जगह क्रांतिकारी दल के लोगों को नियुक्त करना चाहते थे। पर अभी वह सबको पूरी तरह राजी न कर पाये थे कि उन्हें अचानक सेंट पिटर्सबर्ग से हट जाना पड़ा। दूसरा कोई उपाय न देखकर उन्होंने यह निश्चय किया कि १२८६ के आरम्भ में ही एक सभा कार्यक्रम निश्चित करने के लिये बुलायी जाय।

इधर-उधर की बातों में समय नष्ट न कर यदि उन्होंने तत्काल अपना काम शुरू कर दिया होता तो बहुत संभव था कि वे सफलता प्राप्त करते। कारण, ज़ार उन दिनों बेखौफ हो रहे थे, क्योंकि उन्हें इस षड्यन्त्र की खबर न थी, और इस षड्यन्त्र में फौज के बड़े बड़े पदाधिकारियों के शामिल होने के कारण उनकी पहुँच ज़ार के निवास स्थान तक बिना खौफ और खतरे के हो सकती थी। ज़ार के खास दरबार में क्या बातें होती थीं, ज़ार कब तक कहां रहते थे और क्या बोलते थे,— इत्यादि सभी बातों का पता षड्यन्त्रकारियों को मिला करता था। फिर उनके लिये ज़ार तथा कमान्डर-इन-चीफ प्रिंस बिटगेन्सटीन आदि बड़े बड़े फौज के जनरलों को गिरफ्तार करके एक दो दुर्गों पर कब्जा कर लेना कोई मुश्किल न था। पेस्टल की स्कीम भी ऐसी ही थी, उत्तरीय तथा दक्षिणीय संघ, दोनों ही इस बात के लिये तैयार थे कि ज़ार अलेक्जेन्डर को किसी तरह निकलने न दें पर कुछ तो उनकी दोलाचलचित्तवृत्ति से और कुछ दैव-दुर्विपाक से उद्देश्य पूरा न हो सका, मन की मन ही में रह गयी। १८२५ के अन्त में एक-पर-एक कुछ ऐसी आकस्मिक घटनाएं हो गयीं कि वे अपनी स्कीम को काम में न ला सके और उनके सारे मंसूबे दिल ही में रह गये। सर्वप्रथम यह खबर मिली कि ज़ार अलेकजेन्डर प्रथम की मृत्यु हो गयी और फिर दक्षिणीय संघ का पता लग जाने तथा कान्सटैनटाइन के गद्दी त्याग देने के समाचार मिले और साथ ही यह अफवाह उठी कि उनके छोटे भाई निकोलस गद्दी पर बैठने वाले हैं, क्योंकि ज़ार अलेक्जेन्डर ने मरते समय कान्सटैन्टाइन के बदले निकोलस को ही वारिस करार कर दिया है, मानो रूस उनकी निज की सम्पत्ति हो !

गद्दी पर कौन बैठे, इस प्रश्न को लेकर सारे रूस में तहलका मच गया। क्रान्तिकारी इस हलचल के समय कुछ निश्चय न कर सके, कि क्या करना उचित है। सारी स्कीम के उलट-पुलट हो जाने के कारण कुछ लोग तो किंकर्तव्यविमूढ़-से हो गये पर अन्त में सभी ने यह निश्चय किया कि यथाशीघ्र खुली बगावत कर दी जाय, तत्पश्चात् जो होना होगा, होगा।

१२ दिसम्बर, १८२५ को प्रिन्स ट्रुबेस्काइ अभी अनवस्थिति की ही अवस्था

में थे जब कि रिलीफ ने अपनी जेब से एक पत्र निकालकर दिखलाया और कहा, कि फौज के एक नये अफसर ने हम लोगों का भंडाफोड़ ज़ार निकोलस के समक्ष कर दिया है, अतएव हम लोगों को बिना विलम्ब के बगावत कर देनी चाहिए। मरना निश्चित है, फिर शस्त्र लेकर ही क्यों न मरें।

एक दिन मरना ही होगा, यह जरूरी बात है
फिर न क्यों वह मौत हो जिसमें बड़ाई मान है ?

क्रान्तिकारी यह खूब समझते थे कि इस बगावत से फिलहाल कोई फायदा न पहुँचेगा, पर साथ ही, उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि उनके इस बलिदान से भविष्य में पूरा लाभ होगा, उनके खून का एक-एक बूँद रूस की भावी संतान को ज़ारशाही के विरुद्ध लड़ने को उत्साहित करेगा। इसी सद्विचार से प्रोत्साहित होकर प्रिन्स ओडोस्की ने विद्रोह के एक दिन पहले अपने मित्रों और सम्बन्धियों से विदा लेते समय कहा था:—"हम लोग मृत्यु के पास जा रहे हैं, पर यह कितनी श्रेष्ठ मृत्यु है !"

१४ दिसम्बर के प्रातःकाल पलटनों को निकोलस के प्रति राजभक्ति की कसम खाने की आज्ञा दी गयी। षड्यन्त्रकारियों ने अच्छा मौका देखकर मास्को रेजिमेन्ट के सिपाहियों को जाकर भड़काया और उनमें से कुछ प्रमुख व्यक्तियों ने उनका नेतृत्व ग्रहण करके उनकी ओर से दो माँगें पेश कीं—कान्सटैनटाइन का राज्याभिषेक और जनसत्तात्मक राज्यव्यवस्था। निकोलस की ओर से बहुत चेष्टा की गयी कि वे उसके प्रति राजभक्ति की कसम खा लें पर उन्होंने उसकी एक न सुनी और अपनी माँग पर डटे रहे। अन्त में निकोलस ने स्वयं बाहर निकलकर उन पर गोली चलाने की आज्ञा दी, तोपें दागी गयीं, और शाम होते-होते खून की नदी बह चली। सारी जमीन लाल हो गयी मानो डूबते हुए सूर्य की नकल कर रही हो। पेस्टल इत्यादि इसके पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे। निकोलस ने जो जीवन-भर हृदयहीनता के लिये विख्यात रहा, अपने विरोधियों के साथ बड़ा क्रूरतापूर्ण बदला लिया। वे हाईकोर्ट के सामने पेश किये गये और उन्हें फाँसी की सजा मिली। पेस्टल और रिलीफ ने सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर इस बात की चेष्टा की कि उनके और संगियों के प्राण बच जायं। रिलीफ ने जज को संबोधन करके कहा:—"यदि मैं चाहता तो सारे आन्दोलन को रोक सकता था पर मैंने ऐसा न करके इसे और आगे बढ़ाया और हर आदमी को बग़ावत करने की राय दी। २६ दिसम्बर की सारी घटना के लिए मैं ही जिम्मेवार हूँ और मुझे, सिर्फ मुझे ही—आपको मृत्युदंड देना उचित है।" पर उनकी एक न सुनी गई। दया दिखलाने का काम हाइकोर्ट ने ज़ार के ऊपर छोड़ा। ज़ार ने पेस्टल, रिलीफ आदि मुख्य व्यक्तियों

की सजा—मृत्युदण्ड—तो बहाल रक्खी पर औरों को जीवन भर के लिए देश निर्वासन का दंड दिया और वे साइबेरिया की खानों में काम करने के लिये भेज दिये गये । वहां उन्होंने अपने जीवन के शेष दिन बड़े ही कष्ट के साथ बिताये उनके दुःखमय जीवन की बातें तथा उनकी करुणात्मक कहानियां सुनकर आज भी रूसनिवासियों के रोंगटे खड़े हो जाते हैं और उनकी आँखों में आँसू आ जाते हैं ।

३

अग्रदूत हर्ज़ेन

दिसम्बरी आन्दोलन का दमन और शहीदों की अस्थियों पर सिंहासन रखकर ज़ार निकोलस ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली थी और कुछ ही दिनों में ज़ार-शाही की निरंकुशता का नग्नरूप संसार को दिखलाया था। कुछ दिनों तक ऐसा प्रतीत हुआ कि रूस से स्वाधीनता के विचार सदा के लिये विदा हो गये, स्वातन्त्र्य-सूर्य की किरणें इस देशमें कभी प्रवेश न पा सकेंगी। पर शीघ्र ही यह धारणा गलत निकली और शहदों के भस्मावशेष के अन्दर से स्वाधीन विचारों का पौधा ऊपर निकल आया। देश के नवयुवक-समुदाय ने पुनः आज़ादी का सवाल उठाया और ज़ार के खिलाफ़ मंत्रणाएं होने लगीं। इस बार सेंट पिटर्सबर्ग की अपेक्षा मास्को इस काम के लिए अधिक उपयुक्त स्थान समझा गया क्योंकि नवनिर्मित राजनीतिक पुलिस की तीक्ष्ण आँखों से वह दूर था। अलेक्ज़ेण्डर हर्ज़ेन का नाम इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय है क्योंकि उनके विचारों का भविष्य के क्रांतिकारियों पर—खासकर निहि-लिस्टों पर—बड़ा प्रभाव पड़ा। दिसम्बरी आन्दोलन और "निहिलिज्म" के बीच वे शृङ्खला के समान हैं। अलेकजैंडर हर्ज़ेन का जन्म मास्को के एक धनी जमींदार परि-वार में, २५ मार्च १८१२ को हुआ था। घर पर उनकी शिक्षा-दीक्षा बड़ी अच्छी हुई, रशियन, जर्मन और फ्रेंच पढ़ने के लिये अलग-अलग शिक्षक मुकर्रर किये गये थे और थोड़ी उम्र में ही उन्होंने इन भाषाओं की काफी योग्यता हासिल कर ली। रशियन और फ्रेंच पढ़ाने के लिये जो शिक्षक मुकर्रर थे उनमें से एक तो उन्हें रिलीफ की जब्त कविताएं, प्रक्षिप्तरूप से, पढ़ने को दिया करते थे और दूसरे जो स्वयं प्रजातन्त्रवादी थे और फ्रांस से निकले हुए थे, फ्रांस की क्रांति की कथाएं सुनाया करते थे। परिणाम यह हुआ कि बचपन से ही वह क्रांतिवादी हो गये। कहावत है कि "होनहार बिरवान के होत चीकने पात," सो हर्ज़ेन ने भी १८ वर्ष की ही उम्र में एक लेख लिख कर अपनी अद्भुत प्रतिभा तथा अपने उदार विचारों का पता दिया था और मानव जाति के लिए कष्ट सहने की इच्छा प्रकट की थी। उसी उम्र में वह मास्को के विश्वविद्या-लय में भी दाखिल हुए और छात्र-मण्डल कायम किया जिसमें रूस के प्रसिद्ध समालो-

घक वायलिन्सकी और प्रसिद्ध क्रांतिकारी वाकुनिन प्रमुख मेम्बर थे। १८३३ में हर्जेन ने डिग्री हासिल की और एक पदक भी पाया। उन दिनों पश्चिमीय युरोप में क्रांति की धूम मची हुई थी और इसकी खबर मास्को में भी पहुँचा करती थी। मास्को विश्वविद्यालय का छात्र-मंडल उन समाचारों को सुन कर प्रोत्साहित हो रहा था, यहां तक कि एक दिन जब विश्वविद्यालय के किसी कमरे में कुछ छात्र एकत्र होकर खान-पान कर रहे थे, एक किसी छात्र ने आवेश में आकर जार निकोलस की मूर्ति को जो उस हाल में रखी हुई थी, तोड़ डाला। फल यह हुआ कि इस समाचार को सुन कर पुलिस के कान खड़े हो गये और उसने कई छात्रों को गिरफ्तार कर लिया। उस के बाद ही इसी जुर्म में हर्जेन की भी गिरफ्तारी हो गई, यद्यपि वह उस दिन वहां मौजूद न थे, और उनके घर की खानातलाशी हुई जिसमें "सोशलिज्म" पर कई पर्चे और पुस्तकें मिलीं जिसके कारण वह मास्को से निर्वासित हो गये।

१८४० में उन्हें मास्को लौटने की अनुमति मिली और वह मास्को लौट आये पर यहां अधिक दिनों तक न ठहर सके। रूसी सरकार को मास्को जैसे स्थान में, जो सुशिक्षित व्यक्तियों का केन्द्र था, हर्जेन की उपस्थिति अच्छी न जँची। एक साल के लिये वह फिर मास्को से निर्वासित हो गये। निर्वासन की अवधि पूरी होने पर पुनः मास्को लौट आये। पर अब यहां रह कर अपने विचारों का प्रचार करना उनके लिये कठिन ही नहीं, असंभव था। अतएव रूस छोड़ कर पश्चिमी युरोप के किसी देश में जाकर वहीं से सुधार के लिये आन्दोलन करना उन्होंने श्रेयस्कर समझा, और १८४७ में, अपने पिता की मृत्यु के बाद, वह पेरिस के लिये विदा हो गये।

पेरिस पहुँचते ही उनकी जान पहचान वहां के अधिकांश प्रमुख व्यक्तियों से हो गयी जिनमें प्राऊधन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वह उन दिनों राष्ट्रीय महा-सभा (National Assembly) के सदस्य और एक क्रान्तिकारी पत्र के सम्पादक थे। लुई नेपोलियन के, जो वहां के प्रजातन्त्र के सभापति निर्वाचित हुए थे, खिलाफ लेख लिखने के कारण वह पत्र हर्जेन के पेरिस पहुँचने के कुछ ही दिनों के बाद गवर्नमेण्ट द्वारा बन्द कर दिया गया और उन्हें---प्राऊधन को---तीन वर्ष के लिये कारावास का दण्ड मिला। प्राऊधन ने जेल से ही एक पत्र निकालने की ठानी पर उसके लिये उनसे २४,००० फ्रेंक की जमानत माँगी गयी। हर्जेन ने तत्काल अपने पास से यह रकम अदा कर दी और अखबार, २० दिसम्बर १८४९ को निकल गया। गवर्नमेण्ट ने आरम्भ से ही इस अखबार के साथ सख्तियां करनी शुरू कीं; अन्ततः १८५० में उसे भी बन्द हो जाना पड़ा। उसी वर्ष के जून महीने में हर्जेन को भी फ्रांस से निकल जाने की आज्ञा मिली और वह स्विट्जरलैण्ड के लिये रवाना हो गये।

पेरिस में रहते हुए हर्जेन की प्रसिद्ध रशियन उपन्यासकार इभान तुर्गनिभ के



अलेक्ज़ेन्डर हर्ज़ेन

साथ खासी दोस्ती हो गयी और वह बराबर इनके घर पर आया-जाया करते थे। पेरिस में, वस्तुतः, हर्जेन का घर अन्यान्य देशों के सुधारवादियों का अलग ही रहा था। हर्जेन बड़े आनन्द के साथ उनसे मिलते और उनका आतिथ्य-सत्कार किया करते थे, समय पड़ने पर आर्थिक सहायता भी देते थे। आस्ट्रिया के एक पत्र-सम्पादक ने उनकी मृत्यु के बाद लिखा था--

"हर्जेन के साथ मेरा परिचय १८४८ के दिसम्बर महीने में कविवर हर्वेग के घर पर हुआ था। हर्जेन की उम्र उस समय लगभग ३५ की होगी। वह देखने में सुन्दर थे और दूसरों के साथ उनका व्यवहार अत्यन्त शिष्ट था; उनका वैज्ञानिक ज्ञान भी पहले दर्जे का था। लक्ष्मी की उन पर खास कृपा थी; उन दिनों उनकी वार्षिक आय प्रायः १५,००० की थी। उनका घर अन्य देशों के निर्वासित व्यक्तियों के लिये सदैव खुला रहता था। वहां आप जर्मनी, इटली, रूमानियां, सर्बिया, हंगरी आदि सभी देशों के देश-निर्वासित व्यक्तियों के साथ मिल सकते थे। प्रतिदिन प्रायः २० आदमी उनके साथ भोजन किया करते थे। हर्जेन के घर में प्रवेश पाने के लिये किसी किस्मकी प्रशंसा अथवा परिचय-पत्रकी आवश्यकता न थी। हजारों रुपये वह इन देश-निर्वासितों की सहायता में खर्च किया करते थे। मेरे ही द्वारा उन्होंने अनेक शरणार्थी व्यक्तियों को, जिन्हें वह केवल नाम-मात्र से जानते थे, आर्थिक सहायता पहुँचायी थी। इनमें कुछ तो ऐसे भी थे जिनका सारा खर्च उन्होंने अपने ऊपर उठा रखा था। आस्ट्रिया के दो निर्वासित व्यक्तियों की स्त्रियों का प्रसवकाल उनके ही घर में बीता था, क्योंकि उनका अपना घर इस काम के लिये उपयुक्त न था। जर्मनी के प्रसिद्ध ग्रंथकार, फ्रेडरिक कैथ, देशनिर्वासित होकर पेरिस पहुँचे थे और उनके पास जीवननिर्वाह के लिये एक कानी कौड़ी भी न रहने के कारण वे अत्यन्त कष्ट में पड़े हुए थे जब कि हर्जेन ने यह सोचकर कि आर्थिक सहायता का प्रस्ताव उन्हें पसन्द न पड़े, बुरा मानें, उनसे प्रस्ताव किया कि आप मेरे बच्चों के शिक्षक हो जाइए जो उन्होंने स्वीकार कर लिया। पर वे शिक्षक नाममात्र के ही थे क्योंकि बच्चों के पढ़ाने के लिये शिक्षक तो पहले से ही मुकर्रर थे। मैं इस तरह के और भी अनेक वृत्तांत बता सकता हूँ जिन से हर्जेन के इस प्रकार की अनेक चित्तवृत्तियों का पता चल सकता है।"

पूर्वोक्त अवतरण से पाठकों को यह मालूम होगा कि कवि की यह उक्ति कि "अयं निजः परोवेत्ति गणना लघुचेतसाम्। उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्", अलेक्जैण्डर हर्जेन में सोलहो आने चरितार्थ होती थी।

उन्हीं दिनों हर्जेन को एक पारिवारिक क्लेश का अनुभव करना पड़ा। उनके परमप्रिय मित्र हर्वेग (जर्मन कवि) के साथ उनकी स्त्री अलेक्जेण्ड्रोसनाका--जो

अतिशय सुन्दरी और सुकुमार थी—प्रेम हो गया और वह उसके साथ भाग गयी। दो वर्ष तक वह उसके साथ रही पर अन्त में, जैसा कि बहुधा हुआ करता है, प्रेम-बन्धन ढीला पड़ जाने तथा, दुर्गति और सन्ताप के आरम्भ होने पर, हर्जेन की शरण में लौटी और उनसे क्षमायाचना की। हर्जेन ने तत्काल उसे क्षमा-दान देकर अपने घर में रख लिया! वह स्त्री-जाति की स्वतन्त्रता के प्रबल समर्थक थे, इस घटना से उनके इस विचार में जरा भी परिवर्तन न हुआ!! यह उनके हृदय-औदार्य्य का परिचायक है।

१८५२ में वह लन्दन आये और वहां उन्होंने एक रशियन प्रिन्टिंग प्रेस की स्थापना की। तभी से उस क्रान्तिकारी-साहित्य के प्रकाशन का आरम्भ हुआ जो रूस में प्रक्षिप्त रूप से बाँटा जाता था। कुछ ही दिनों में वह रूस के सुधारवादियों के गुरु हो गये। रूस के सुधारवादी बराबर लन्दन आकर उनसे परामर्श करते थे और रूस में कहां क्या हो रहा है, इसकी खबर दे जाते थे। १८५७ में उन्होंने "Kolokol" (घण्टा) नामक एक अखबार निकाला जिसका रूस में खूब प्रचार हुआ—यहां तक कि स्वयं जार भी उसे लेकर पढ़ा करते थे। रूस के बड़े-बड़े लोग गुप्त रूप से इसमें लेख लिखा करते थे। और जार तथा रूसी सरकार के कारनामों तथा अफसरों के आचरण की आलोचना, जो रूस में नहीं की जा सकती थी, किया करते थे।

पेरिस की तरह लन्दन में भी हर्जेन के घर पर उस समय के प्रमुख सुधारवादी अथवा स्वातन्त्र्यवादी इकट्ठा हुआ करते थे। गैरिबाल्डी, मेजिनी, ओरसिनी, सफी इत्यादि सभी उनकी मेहमानदारी पा चुके थे, और इनके साथ उनकी गाढ़ी मित्रता हो गयी थी। गैरिबाल्डी और मेजिनी के बीच जो मनोमालिन्य हो गया था उसको हर्जेन ने ही मिटाया था।

वार्सा मैसकर (वार्सा की हत्या) के समय गैरिबाल्डी ने टुरिन से १३ अप्रैल, १८६१ को एक खत हर्जेन के नाम लिखा था, वह पत्र यों है—

प्रिय हर्जेन,

अभी, अभी जार ने जो दासों को मुक्त किया था उसकी खबर सारे युरोप ने आनन्द और प्रशंसा के साथ सुनी थी। जिस सम्राट के मस्तिष्क की यह योजना है और जिसने इस महान कार्य को पूरा किया है उसने अपने आप को मानव जाति के श्रेष्ठतम उपकारकर्ताओं की श्रेणी में पहुँचाया है। पर अब मुझे यह कहते हुए अत्यन्त दुःख है कि उस श्रेष्ठ कार्य के ऊपर बेकसूरों के खून के दाग आ पड़े। अब इस अवसर पर जिन लोगों ने दास-मुक्ति पर हर्ष प्रकट किया था उनका यह परम कर्तव्य है कि वे इन नृशंस कार्यकर्ताओं की जोरदार शब्दों में निन्दा करें। आप अपने पत्र द्वारा अभागे, किन्तु वीर, पोलों के प्रति सारे इटली राष्ट्र की सहानुभूति पहुँचाइए

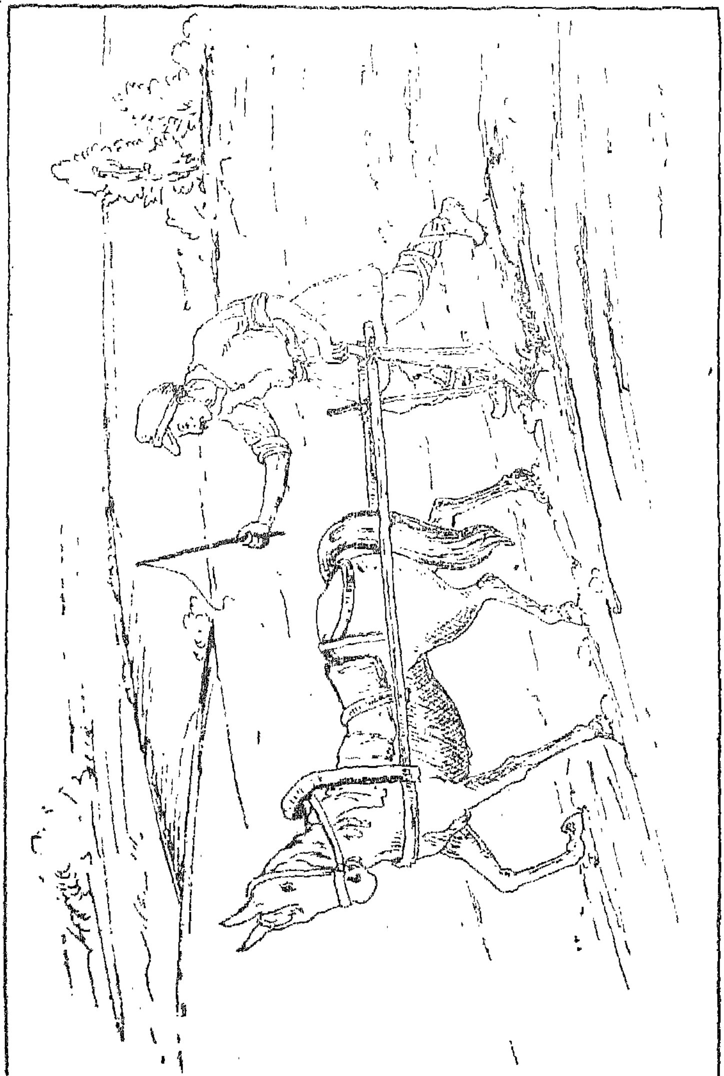
तथा उन वीर रशियन सैनिकों के पास जिन्होंने, पोषक की तरह, अपनी तलवारें, यह सोच कर कि उन्हें फिर मानव जाति के रक्त से लाल न करना पड़े, तोड़ डाली हैं, हमारी कृतज्ञता पहुँचा देवें। साथ ही इस घृणोत्पादक हत्या के कर्ता के प्रति सारे युरोप के राष्ट्रों की निन्दा की घोषणा कर दें।"

मेजिनी के संग भी हर्जेन की घनिष्ठ मैत्री हो गयी थी और यद्यपि उनके राजनीतिक और धार्मिक विचारों में समानता न थी, एक दूसरे को श्रद्धा और प्रेम के भाव से देखते थे। हर्जेन सोशलिस्ट तथा धार्मिक स्वतन्त्रता के खिलाफ और सनातनधर्मी थे पर इससे उनके बीच कभी मनोमालिन्य तक न आया और कुछ दिनों तक तो वे दोनों मिल कर काम करते रहे। हर्जेन ने एक बार अपने पास से २०० पाउण्ड की सहायता मेजिनी को इटली के स्वातन्त्र्य-युद्ध के लिये दी थी। जीवन के अवसानकाल के समीप पहुँचकर मेजिनी ने हर्जेन को लिखा था—"परमप्रिय मित्र, नाइस से भेजा हुआ आपका कृपापत्र मिला......वे चाहे जो कुछ करें, हम लोग क्रम-क्रम से इटालियन प्रजातन्त्र के समीप पहुँच रहे हैं और मैं अपना यह परम कर्तव्य समझता हूँ कि यथाशक्ति इस एञ्जिन को उसकी पटरियों पर चढ़ा दूँ। जब एक बार वह लाइन पर आ जमेगी तो फिर उसे धक्का देकर आगे ले जाने वालों की कमी न रहेगी। मेरे स्वास्थ्य का संहार हो गया। मैं उस वृक्ष के समान हूँ जो जड़ उखड़ जाने पर भी खड़ा है पर जिसे पवन का एक झोंका किसी दम भी गिरा सकता है। × × × × × प्रति वर्ष मेरे मित्र एक-एक कर चले जा रहे हैं और रह-रह कर मुझे ओसाएन के इस पद का स्मरण हो आता है—

और, बीतते हुए वर्ष की
सुनता मैं धीमी आवाज,
यही एक क्यों करता है यों गान?"

गैरिबाल्डी और मेजिनी के सिवा विक्टर ह्यूगो, लुइ ब्लान्क, कोशथ, कार्लाइल आदि के साथ भी हर्जेन की घनिष्ठ मैत्री थी। हर्जेन की लेखन-शक्ति अनन्त थी और वह रशियन, जर्मन, फ्रेंच और इङ्गलिश भाषाओं में समान रूप से लिखा करते थे। उनके लेखों का युरोप तथा रूस की जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा था।

२९ जनवरी, १८७० को पेरिस में उसकी मानवलीला समाप्त हुई। नाइस में, कुछ दिनों के बाद, उनके शरीरावशेष लाकर गाड़े गये। और उनकी कब्र पर, उनके कुछ देशी और विदेशी मित्रों की सहायता से, एक भावोत्पादक स्मारक मूर्ति भी बनायी गयी जो अब भी वहां खड़ी हुई लोगों को उस महान् व्यक्ति की याद दिलाया करती है। अलेकजेन्डर हर्जेन के विचार "सोशलिस्ट" थे यह पहले कहा जा चुका है। वह सामूहिक ढंग पर खेती करने के पक्षपाती थे क्योंकि उनकी सम्मति में रूस को



'रूस को उन्नति के शिखर पर वहाँ के किसान ही पहुँचा सकेंगे, दूसरे नहीं।' —तुर्गनेव

धनियों से बचाने का यही एकमात्र उपाय था।

रूस में पश्चिमीय स्वतन्त्रता के बीज बोने वाले अलेक्ज़ेन्डर हर्जेन ही थे।

संक्षेप में अलेक्ज़ेण्डर हर्जेन का यही जीवन-वृत्तान्त है।

१९ वीं सदी के रशियन चिन्तकों एवं क्रान्तिवादियों के बीच हर्जेन का एक खास स्थान है और यह मानी हुई बात है, कि सिवाय टालसटाय के रूस में गत दो शताब्दियों में हर्जेन के समान व्यक्तित्व रखने वाला तथा लोकप्रिय कोई अन्य उत्पन्न न हुआ। वह, जोकि अपने समय के छोटे-बड़े, हर तबके के लोगों पर समान रूप से प्रभाव, प्रचुर परिमाण में, डाल सके वैसा दूसरों से न हुआ। यह गौरव उन्हीं को प्राप्त है, कि उनके विचारों ने रूस के किसान, उदार दल के नेताओं, जमीन्दारों, क्रान्ति-कारी छात्रों तथा स्वयं ज़ार अलेक्जेंडर द्वितीय जैसे भिन्न मतावलम्बियों को एक रूप से प्रभावित किया। एनजेल्शन नामक विश्वविद्यालय के एक छात्र की कथा से यह जाहिर होता है कि हर्जेन में दूसरों पर अपने प्रभाव डालने की कितनी अधिक शक्ति थी—उनमें कितना बड़ा आकर्षण था। अपने जीवन की असफलताओं से निराश होकर यह छात्र एक दिन एक काफे (Cafe) में बैठा हुआ विषपान कर अपने जीवन को समाप्त कर देने की सोच रहा था, विष की शीशी उसकी पाकिट में पड़ी हुई उस घड़ी का इन्तजार कर रही थी जबकि अकस्मात् उसकी नजर एक संवादपत्र के अंक पर पड़ी जिसमें हर्जेन का एक लेख प्रकाशित था। इस लेख में उन्होंने मनुष्य के निजी कष्टों की चोट से व्यथित होकर निराशावादी बनने की भूरि-भूरि निन्दा की थी। एनजेल्शन पर इस लेख का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने फौरन विष की शीशी फोड़ डाली तथा उस दिन से हर्जेन का पुजारी बन गया। यही नहीं, आगे चल कर हर्जेन के घनिष्ठ पार्षदों में उसकी गणना होने लगी। ऐसे एक नहीं सैकड़ों, दृष्टान्त हैं जिनसे यह ज्ञात होता है, कि तत्कालीन नवयुवक समुदाय की विचार-धारा पर हर्जेन का बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा था और उनके सारे जीवन पर उनकी गहरी छाप थी। सन् १८२४ में चौदह साल की उमर में अपने जीवन के घनिष्ठतम साथी ओगारीभ के संग मास्को की निकटवर्ती एक पहाड़ी पर खड़े होकर उन्होंने शपथ ली थी कि वह आजन्म जिन सिद्धान्तों को लेकर "डिसम्बरी" क्रान्ति के शहीदों ने अपने प्राण गँवाये थे, उनके लिए लड़ते रहेंगे। और इसमें शक नहीं कि वह मरण-पर्य्यन्त अपनी इस प्रतिज्ञा को भूले नहीं तथा उन सिद्धान्तों के साफल्य के निमित्त क्रियाशील रहे। हाँ, यह ठीक है कि वह कभी पुरानी लकीर का फकीर न हुए और यही कारण है कि हेगल जैसे चिन्तक के, जिसके नाम की साम्यवादी आज भी शपथ खाते हैं, सिद्धान्तों तक की उन्होंने कड़ी आलोचना की और उन्हें अस्वीकार किया। उनकी इसी मनोवृत्ति के कारण कई बार अपने घनिष्ठ मित्रों तक से उनकी अनबन हो गयी, पर

उन्होंने इसकी कभी परवाह न की और अपने पथ से हटे नहीं। साथ ही नयी परिस्थितियों तथा नये अनुभव के अनुसार अपनी गलतियों के मान लेने में भी उन्हें कभी हिचकिचाहट न हुई। शुरू में वह फ्रान्स के बहुत बड़े हिमायती थे। फ्रेंच क्रान्ति की कथाओं ने उसकी आँखों के सामने फ्रान्स का एक अलौकिक आदर्श चित्र रक्खा था और वह उसकी पूजा किया करते थे। इन्हीं उच्च भावनाओं—स्वर्ण चित्रों—के साथ वह फ्रांस गये भी। पर वहां रहकर, कुछ ही दिनों में, उनकी आँखें खुल गयीं। उन्होंने देखा, कि उनकी कल्पना वाले फ्रांस तथा वास्तविक फ्रांस में आकाश-पाताल का सा अन्तर है। फ्रान्स की इस गिरी हुई दशा को देखकर वह क्षुब्ध हो उठे और उन्होंने अपने विचार परिवर्तित कर दिये। पश्चिम के अन्यान्य देशों से भी उन्हें निराशा ही मिली और अन्त में वह इस विचार पर आ पहुँचे कि सब देशों से लाख बुराइयों के बावजूद भी, रूस ही श्रेष्ठतर है। किन्तु वह रूस के शिक्षित समाज अथवा उच्च वर्गों से किसी प्रकार की आशा न रखते थे। वहां के किसानों से ही उनकी सारी आशाएँ थीं और उन्होंने बारम्बार यह विचार प्रकट किये थे कि रूस को उन्नति के शिखर पर वहां के किसान ही ला सकेंगे, दूसरे नहीं, तथा निरंकुश शासन का अन्त भी उनके ही द्वारा होगा। श्रमवर्ग की अपेक्षा वहां के कृषक-वर्ग को वह कहीं अधिक महत्वपूर्ण समझते रहे।

जारशाही के वह प्रबल विरोधी थे पर सबसे अधिक विरोधी वह रूस के तत्कालीन राज्यकर्मचारी वर्ग के थे जिन्हें वह चंगेज खाँ की तरह भयंकर एवं दुराचारी मानते थे। कोई ऐसे कड़े शब्द न थे जो उन्होंने इन सरकारी अफसरों के विरुद्ध इस्तेमाल न किये हों। एक स्थान पर इनके सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—"संस्कृतिहीन अर्थ-लोभियों का यह दल जन-सेवा की ओट में अनेकों कुकृत्य किया करता है········ ये एक नये प्रकार के पंडे हैं जो हजारों गन्दे मुखों से जनता का रक्त-शोषण कर रहे हैं।"

वह समाजवादी थे, क्रान्तिवादी भी थे, और यह भी सही है कि उनके विचारों का प्रभाव निहिलिस्ट युवक-युवतियों पर बहुत बड़े परिणाम में पड़ा (जैसा कि आगे के जीवन-वृत्तान्तों से पता चलेगा) पर वह उत्पीड़न का जवाब उत्पीड़न अथवा क्रूरता से देने के विरोधी थे। इस संबंध में उसके विचार कई अंश में महात्मा गांधी से मिलते-जुलते से थे और उनके इन्हीं विचारों ने उनके परममित्र बाकुनिन के संग, एक गहरा मतभेद पैदा कर दिया। हर्जेन ने राजनीतिक आतङ्कवाद तथा हत्याओं का समर्थन करने से बारम्बार इन्कार किया। पर अंत में बाकुनिन के अत्यन्त आग्रह करने एवं दबाव से अपने पत्र "दी बेल" में "भूमि और स्वातंत्र्य" नामक नवनिर्मित संस्था का समर्थन करने को मजबूर हुए। यहां तक तो उन्होंने विष की घूँट पी, पर

जब पोली-षड्यंत्रकारियों की मदद में बाकुनिन ने इंगलैण्ड से सहायता के रूप में, सन् १८६३ में, कुछ बन्दूकें स्टाकहोम भेजीं तथा वहां अपने को "भूमि और स्वातंत्र्य" का प्रतिनिधि घोषित कर, एक भोज में, इस बात की घोषणा करते हुए कहा, कि इस संस्था का सारे रूस में प्रभाव ही नहीं, गुप्त शाखाएँ हैं तथा पोलिश राष्ट्रीय समिति के संग इसका गहरा संबंध है, तो हर्जेन की अन्तरात्मा कांप उठी और वह इस असत् की घूंट पीने में असमर्थ रहे। उन्होंने इसका प्रतिवाद "बेल" में प्रकाशित करने की धमकी दी और उस दिन से बाकुनिन के संग उनके राजनीतिक सहयोग का अन्त हो गया। उन्हीं दिनों राजनीतिक विचारों को लेकर ही कार्लाइल के साथ भी उनकी मुठभेड़ सी हो गई पर कार्लाइल के लिए उनके हृदय में सम्मान के भाव अन्त तक बने रहे।

१८५४ के फरवरी महीने में एक दिलचस्प घटना हुई। लन्दन स्थित अमरीका के कांसल जनरल ने एक भोज दिया जिसमें विभिन्न देशों के क्रांतिकारी, जो लन्दन में अपने दिन बिता रहे थे, लन्दन उनदिनों संसार भर के क्रान्तिकारियों का अड्डा हो रहा था--आमंत्रित किये गये, पर जर्मनी के किसी व्यक्ति को आमंत्रण न दिया गया। इस अवसर पर एक अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी समिति की स्थापना हुई और इसमें जर्मनी के साम्यवादी भी बुलाये गये। कार्लमार्क्स भी उनदिनों लन्दन में ही रहा करता था, आमंत्रण पा कर वह आया और आते ही उसने हर्जेन की सदस्यता पर ऐतराज किया। इंगलैण्ड, फ्रान्स, इटली और पोलैण्ड के प्रतिनिधियों ने मार्क्स के प्रस्ताव का जोरों से विरोध किया जिसके परिणामस्वरूप मार्क्स क्रोधावेश में उठकर चलता बना और फिर न लौटा। एक दूसरे अवसर पर मार्क्स ने एक सार्वजनिक सभा में जाना इसलिए अस्वीकार कर दिया कि वहां हर्जेन भी आनेवाले थे। मार्क्स ने एन्जेल को लिखा:—"मैं कभी भी वहां न जाऊंगा जहां हर्जेन उपस्थित होगा, चूंकि उसके विचारों से मेरे विचार कभी मेल खा नहीं सकते।" गरज यह कि हर्जेन ने क्रान्तिवादी होते हुए भी कभी अपने विचारों में कटुता न आने दी। इसके लिए तत्कालीन कितने ही क्रान्तिवादी उनके विरुद्ध रहे पर उन्होंने इसकी परवाह न की वह अपने पथ पर दृढ़ रहे और महाकवि रवीन्द्र की भांति वह भी इस मत के अनुयायी रहे, कि यदि तुम्हारी पुकार सुन कर कोई भी न आये तब भी तुम एकाकी ही अपने पथ पर चलते रहो —

यदि तोर डाक शुने केऊ ना आसे।
एकला चल रे, एकला चल रे, एकला चल॥

गत तीस वर्षों में भारत की विचारधारा पर जिस प्रकार सबसे जबर्दस्त छाप गांधी जी की रही है और वे लोग भी जो अहिंसा के सिद्धान्त से मतभेद रखते रहे,

उनसे किसी-न-किसी हद तक प्रभावित हुए बिना न रह सके, उसी प्रकार १६वीं सदी का रूस आतङ्कवाद में विश्वास रखता हुआ भी हर्जेन के विचारों से अप्रभावित न रह सका। उनके लेखों के पढ़ने से यह साफ परिलक्षित है, कि वह केवल क्रान्तिवादी ही नहीं, एक श्रेणी के दार्शनिक भी थे और आध्यात्मिक तत्वों के विश्लेषक भी। यह सही है कि वह उसकाल के धार्मिक ढकोसलों के प्रबल विरोधी थे पर साथ ही मनुष्य की पतनोन्मुखी प्रवृत्तियों पर——मनुष्यत्व के ह्रास पर——आँसू गिराने वाले भी थे। अपने एक लेख में उन्होंने लिखा था :—

"आज के मनुष्य को जब मैं देखता हूँ, भौचक्का-सा हो जाता हूँ। भावनाओं की ऐसी कमी, विचारों की ऐसी क्षुद्रता, आन्तरिक आह्लाद का ऐसा अभाव, असत्य एवं अनौचित्य के विरोधाभाव की त्रुटि, विचारों की ऐसी दरिद्रता। किस द्रुतगति से उसके सारे उमंग विलीन होते हैं। इसकी सारी शक्तियां आखिर कहां नष्ट हुईं, किस दिशा में अन्तर्हित हो गयीं, कब और कैसे ? निस्सन्देह पाठशालाओं में ही वे भ्रष्टता को प्राप्त हुए, उनके अध्यापकों ने उन्हें निर्जीव बना डाला। शराबखानों के हँसी मजाक ने, कुत्सित आचरणों ने उनकी शक्ति छीन ली ···।"

हर्जेन के पूर्वोक्त उद्‌गारों से यह साफ-साफ लक्षित है, कि वह केवल राजनीतिक क्रान्ति की ही बातें न सोचा करते थे, देश की विभिन्न समस्याओं पर भी उनकी विचार-धाराएं प्रवाहित होतीं तथा शासन की बुराइयों के साथ-साथ सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक दुरवस्थाओं पर आइजाया (बाइबिल, ओल्ड टेस्टामेन्ट) की भाँति अपने अश्रु गिराते, अन्तस की व्यग्रता एवं व्यथा को शब्दों में व्यक्त किया करते थे। ये ही गुण थे जो उन्हें अन्य रूसी चिन्तकों से कहीं ऊँचा उठाते हैं, उनकी इस महान् नैतिकता के आगे शेष सभी लघु प्रतीत होते हैं। इन्सानियत को वह सबसे बड़ा——उच्चतम——स्थान देते थे, तथा अपने लेखों द्वारा मनुष्य की दिव्य भावनाओं के जागृत करने की चेष्टा में सतत संलग्न रहे। उनकी कलम में एक अजीब शक्ति थी, शब्दों में एक विचित्र जादू था, जो विरले लेखकों अथवा चिन्तकों में पाया जाता है। कारण क्रोपाटकिन के ही शब्दों में सुनिए——

The beauty of the style of Herzen—of Whom Turgueneff has truly said that he wrote in tears and blood, and that no other Russian had ever so written--the breath of his ideas, and his deep love of Russia took possession of me, and I used to read and re-read those pages, even more full of heart than of brain.

अर्थात्——हर्जेन की लेखनशैली की [illegible]——जिसके सम्बन्ध में तुर्गनेव ने लिखा है कि वह आंसुओं तथा खून से लिखा करता था, जैसा कि आज तक किसी दूसरे रशियन ने नहीं लिखा——उसके विचारों का प्रसार, तथा रूस के लिए उसके अगाध

प्रेम ने मुझे पूरी तरह अपने वश में कर लिया, और मैं उसके पन्नों को पढ़ता, जिनमें दिमाग तो था ही, पर उससे भी बढ़कर था हृदय। साथ-साथ रूस के राजनैतिक जागरण में भी उसका काफी हिस्सा रहा। कष्ट बहुत झेले, पारिवारिक विपत्तियों का शिकार बना रहा, पर कभी अनुत्साहित न हुआ, देश के और मानवता के उत्थान के सुनहले स्वप्न देखता हुआ ही इस संसार से विदा हुआ। ऐसे महापुरुष धन्य हैं। और अमर भी हैं। कवि के शब्दों में—

जीता है वह, जो मर चुका इन्सान के लिए !

और यह सही है कि उनका सारा जीवन लोकसंग्रह में ही व्यतीत हुआ।

४

महाप्राण बाकुनिन

"Know Madame, that so long as your son lives, he can never be free"...—Tsar Alexander II.

"श्रीमती जी, एक बात आप अच्छी तरह समझ लें कि जबतक आपका लड़का जिन्दा है तबतक वह कभी जेलखाने से नहीं छूट सकता।"

—(रूसी जार) अलेक्जेंडर द्वितीय।

बात सन् १८५५ की है। रूस के जार निकोलस की मृत्यु हो चुकी थी और उनकी गद्दी पर अलेक्जेंडर द्वितीय बैठे थे। इस उत्सवकी खुशी में कितने ही राजनैतिक अपराधी छोड़े जाने वाले थे। जब इन कैदियों की सूची रूसी जार के सामनेलाई गई तो उसमें बाकुनिन का भी नाम था। जार ने सूची को हाथ में लेकर उसमें से बाकुनिन का नाम अपने हाथों से काट दिया! जब बाकुनिन की पूज्य माता को यह दुःखद समाचार ज्ञात हुआ कि उनका लड़का नहीं छूटेगा तो उन्होंने जार से मिलने की प्रार्थना की। बड़ी मुश्किल से यह आज्ञा मिली। जार के पास जाकर बाकुनिन की माँ ने बहुत मिन्नत-आरजू की। तब उसके उत्तर में जार ने उपर्युक्त शब्द कहे थे।

अराजकवादियों के आचार्य माइकेल बाकुनिन का जीवन-चरित किसी उपन्यास से कम मनोरंजक नहीं है। यदि संसार के उन महापुरुषों की सूची तैयार की जाय, जिनका प्रभाव भविष्य में बहुत वर्षों तक रहेगा, तो उसमें माइकेल बाकुनिन तथा उनके शिष्य प्रिंस क्रोपाटकिन के नाम मार्क्स तथा लेनिन और महात्मा गांधी के नाम के साथ ही लिये जावेंगे। भावी संसार के निर्माण में इन सब के विचारों का काफी हाथ रहेगा।[१]

माइकेल बाकुनिन का जन्म १८१४ ईस्वी में रूस के एक धनी परिवार में हुआ था। उनके पिता राजनीति-विभाग में सरकारी नौकर थे; पर जिस समय बाकुनिन का जन्म हुआ था, उस समय वे अपनी नौकरी से रिटायर हो चुके थे और टारजक नामक स्थान में रह रहे थे। पन्द्रह वर्ष की उम्र में बाकुनिन पीटर्सबर्ग के

१. देखिये—Bertrand Russsell की 'Proposed Roads to Freedom' पृष्ठ ४३; Blue Ribbon Series, New York.

फौजी विद्यालय में भर्ती हुए और वहाँ पर तोप चलाने का काम सीखा। १८ वर्ष की उम्र में वे एक रेजीमेंट के साथ मिस्क नामक स्थान को भेज दिये गए। सन् १८३० में रूसी जारशाही ने पोलैण्ड के निवासियों के विद्रोह का जिस क्रूरता के साथ दमन किया था,उससे पोलैण्ड-निवासी अत्यन्त सन्त्रस्त होगये थे। उनकी इस दुर्दशा का नवयुवक बाकूनिनके हृदय पर अत्यन्त मार्मिक प्रभाव पड़ा और तानाशाहीके प्रति उनके हृदय में घोर घृणा उत्पन्न हो गई। सन् १८३४ में यानी दो वर्ष फौजी नौकरी करके उन्होंने इस्तीफा दे दिया और मास्को चले आये। छः वर्ष वे तक वहाँ पर दर्शनशास्त्र का अध्ययन करते रहे। सन् १८४० में वे बर्लिन गये। उनका विचार था कि बर्लिन में दर्शनशास्त्र की उच्च-से-उच्च शिक्षा पाकर वे अपने देश को लौट आवेंगे और वहां किसी विद्यालय में प्रोफेसर बनकर अपनी जिन्दगी आराम से व्यतीत करेंगे; पर उनके भाग्य में प्रोफेसरी की आरामकुर्सी के बजाय और कुछ ही लिखा था! उस वक्त कौन कह सकता था कि दर्शनशास्त्र का यह विद्यार्थी आगे चलकर कुछ ऐसे क्रान्तिकारी सिद्धान्त उपस्थित करेगा, जिनसे संसार की अनेक सरकारें थर-थर काँपने लगेंगी और अपना सब से बड़ा शत्रु समझ कर उसे अधिक-से-अधिक दंड देने में अपना सौभाग्य समझेंगीं! बर्ट्रेंड रसेलने अपनी पुस्तक में बाकुनिन का जीवन-चरित लिखते हुए ये शब्द कहे हैं—

"Now began a long period of imprisonment in many prisons and various countries. Bakunin was sentenced to death on the 14th of January 1850, but his sentence was commuted after five months and he was delivered over to Austria, which claimed the privilege of punishing him. The Austriansn their in turn, condemned him to death in May, 1851, and again his sentence was commuted to imprisonment for life. In the Austrian prisons he had fetters on hands and feet and in one of them he was even chained to the wall by the belt! There seems to have been some peculiar pleasure to be derived from the punishment of Bakunin, for the Russian Government in its turn demanded him of the Austrians, who delivered him up. In Russia he was confined first in the Peter and Paul fortress and then in Schluessellburg."

अर्थात्—"इसके बाद बाकुनिन के जीवन में एक ऐसे युग का प्रारम्भ हुआ, जिसमें उन्हें विभिन्न देशों के कितने ही जेलखानों में लम्बे-लम्बे समय तक रहना पड़ा। १४ जनवरी सन् १८५० को जर्मन सरकार ने उन्हें फाँसी का हुक्म दिया था; पर पाँच महीने बाद यह सजा काट दी गई और जर्मन सरकार ने बाकुनिन को आस्ट्रियन सरकार के सुपुर्द कर दिया। आस्ट्रियन सरकार बाकूनिन को दंड देने के लिए पहले से ही तुली बैठी थी और उसने मई सन् १८५१ में बाकुनिन को फांसी का हुक्म

दिया। पीछे यह सजा आजीवन जेलखाने के रूप में बदल दी गई। आस्ट्रियन जेलखानों में बाकुनिन के हाथ तथा पाँवों में बेड़ियाँ बँधी रहती थीं, और एक जेलखाने में तो उनकी पीठ में साँकल डालकर वे दीवार से बाँध दिये गए थे! ऐसा प्रतीत होता है कि भिन्न-भिन्न सरकारों को बाकुनिन को दंड देने में कुछ विचित्र मजा आता था। अब की बार रूसी सरकार ने आस्ट्रियन सरकार से बाकुनिन को माँग लिया और पहले पीटर तथा पाल के बदनाम किले में और फिर स्लूसलबर्ग के जेलखाने में बन्द रखा।"

सन् १८४९ से १८६१ तक बाकुनिन को जेल में ही रहना पड़ा और इन बारह वर्षों में उन्होंने जो यातनाएँ सहीं, उनका वृत्तांत पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। दूसरा कोई होता तो उसके प्राणपखेरू कभी के उड़ गये होते। यह महाप्राण बाकुनिन का ही काम था कि वे इस अग्नि-परीक्षा में पूर्णतया उत्तीर्ण हुए। प्रिन्स क्रोपाटकिन ने अपने आत्म-चरित में एक जगह लिखा है—"जब मैं पीटर और पाल के किले में बन्द किया गया तब मुझे उन तमाम शहीदों की याद आ गई, जिन्होंने इस किले में अपने दिन बिताये थे। कितने ही मर गये, कितने ही पागल हो गये। उनकी छाया मेरी कल्पना के सामने मानों नाच रही थी; पर मुझे खास तौर से खयाल आता था बाकुनिन का। दो वर्ष तक वे पीठ के बल आस्ट्रियन जेल में बँधे रहे थे और फिर रूसी सरकार ने उन्हें छः वर्ष तक इसी जेलखाने में बन्द रखा। जब ज़ार की मृत्यु के बाद वे इस जेल के अन्दर से निकाले गये तो उनका स्वास्थ्य अपने उन साथी-संगियों से, जो बाहर स्वतन्त्र रहे, कहीं अच्छा था! उनमें अपने साथियों की अपेक्षा अधिक शक्ति थी, ज्यादा ताज़गी थी। मैंने अपने मन में सोचा जब बाकूनिन इस यातना को सह गये तो मैं भी सहूँगा। मैं यहाँ नहीं हर्गिज़ मरूँगा।"

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर बनने की आकांक्षा रखने वाले युवक बाकूनिन को १८४० ईस्वी में यह स्वप्न में भी ख़याल नहीं था कि आगे चलकर उनका जीवन-पथ कंटकाकीर्ण होगा। सन् १८४२ में वे बर्लिन से ड्रेसडन नामक स्थान में पहुँचे। इस बीच उनके विचार क्रान्तिकारी हो चुके थे। ड्रेसडन में सरकार की उन पर कुदृष्टि पड़ी, इसलिए उन्हें स्विट्ज़रलैंड जाना पड़ा। स्विट्ज़रलैंड सरकार के पास रूसी सरकार की माँग आई कि बाकूनिन को पकड़ कर हमारे यहाँ भेज दो, इसलिये बाकूनिन को वहाँ से भी भागकर पेरिस आना पड़ा और यहाँ वे १८४३ से १८४७ तक रहे। रूसी सरकार ने उनकी जायदाद जब्त कर ली। १८४७ में फ्रांस की सरकार ने भी उन्हें देश निकाले का दंड दे दिया, इसलिये वे ब्रुसेल्स चले गए। मई सन् १८४९ में वे फिर ड्रेसडन आये। क्रान्तिकारियों के साथ उन्होंने प्रशिया की सरकारी फ़ौज का मुकाबला किया, पकड़े गये और जर्मन सरकार ने, जैसा

कि हम ऊपर लिख चुके हैं, १४ जनवरी सन् १८५० को उन्हें फाँसी का दंड सुनाया।

१८६१ में बाकुनिन साइबेरिया से भाग कर जापान पहुँचे और वहाँ से अमेरिका होते हुए लन्दन आ गये।

१८६१ से १८७३ तक बाकूनिन अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते रहे और इसके लिए उन्हें साम्यवाद के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स का घोर विरोध करना पड़ा। मार्क्स के तथा बाकुनिन के सिद्धान्तों में जबरदस्त भेद यह था कि मार्क्स किसी-न-किसी प्रकार की सरकार में विश्वास रखते थे और बाकुनिन पूर्ण अराजकवादी थे। किसी भी प्रकार के शासन में उनका विश्वास ही न था।

बाकुनिन और मार्क्स, इन दोनों में सिद्धान्तों का मतभेद तो था ही, स्वभाव भी दोनों का परस्पर-विरोधी था। बाकूनिन उदार तबियत के आदमी थे और असंयत भावुकता उनमें कूट-कूट कर भरी थी; लेकिन मार्क्स ने अपने भावों पर काफी काबू कर लिया था। बाकुनिन के व्यक्तित्व में अद्भुत आकर्षण था। जो कोई आदमी उनके संसर्ग में आता, वह उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना न रहता; पर मार्क्स बिलकुल जाहिदे खुश्क थे और एक बार उनसे मिलने के बाद दूसरी बार सहृदय आदमी के मन में उनके पुनर्दर्शन की अभिलाषा न रहती थी।

सन् १८७१ में बाकुनिन ने लिखा था—

"हम लोग एक दूसरे से प्रायः मिला करते थे। मेरे हृदय में मार्क्स के प्रति उनकी विद्वत्ता के कारण और साधारण जनता की सेवा के लिए उनके हृदय में जो गम्भीर और उत्साहपूर्ण भावना थी, उसकी वजह से बड़ी श्रद्धा थी; लेकिन मार्क्स के सेवा-भाव में सदा अहंभाव का सम्मिश्रण हुआ करता था। मार्क्स से बातचीत करने के लिये मेरे मन में बड़ी उत्कंठा रहा करती थी और उनकी बातचीत सदा शिक्षाप्रद तथा चातुर्यपूर्ण होती थी, सिर्फ उन अवसरों को छोड़ कर, जब उनमें क्षुद्र घृणा या विद्वेष की प्रेरणा होती थी और दुर्भाग्यवश उनकी बातचीत अक्सर क्षुद्र विद्वेष से प्रेरित होती थी। हम लोग दिल खोल कर कभी नहीं मिले। हम लोगों के स्वभाव इतने अधिक परस्पर-विरोधी थे कि हार्दिक मिलन सम्भव नहीं था। मार्क्स मेरे विषय में कहते थे—'तुम भावुकतापूर्ण आदर्शवादी हो', और उनका कहना ठीक था, और मैं उनसे कहता था—'तुम अहंकारी, विश्वासघाती और चालाक आदमी हो', और मेरा कहना भी ठीक था।"[1]

सन् १८४७ में बाकुनिन ने मार्क्स और ऐंजिल्स के विषय में लिखा था—

---

1. He (Marx) called me a sentimental idealist, and he was right; I called him a vain man, perfidious and crafty, and I also was right.

"यदि संक्षेप में इन लोगों की कार्यपद्धति का वर्णन किया जाय, तो मैं कहूँगा, मूर्खता और झूठ, झूठ और मूर्खता। इन लोगों के साथ रहते हुए स्वाधीनता-पूर्वक सांस लेना असम्भव है। मैं इन लोगों से अलग रहता हूँ। मैंने उन्हें निश्चय-पूर्वक कह दिया है कि आप लोगों के समाजवादी कारीगरों के समूह से बिलकुल अलग रहूँगा और उनसे कोई ताल्लुक नहीं रखना चाहता।"

सन् १८६४ में बाकूनिन ने इटली में 'एलाइंस ऑव सोशलिस्ट रिवोल्यूशनरीज' (Alliance of Socialist Revolutionaries) नामक संस्था की स्थापना की। इसमें अनेक देशों के प्रतिनिधि थे; पर जर्मनी का कोई प्रतिनिधि नहीं था। सन् १८६७ में स्विट्जरलैण्ड पहुँच कर बाकूनिन ने 'इंटरनेशनल एलाइंस ऑव सोशलिस्ट डिमोक्रेसी' ('International Alliance of Socialist Democracy') नामक संस्था की स्थापना की। इसके पूर्व सन् १८६४ में लन्दन में 'इंटरनेशनल वर्किंग मेन्स एसोसियेशन' (Interatinal Working men' s Association)की स्थापना होचुकी थी और इसके विधान तथा नियमों की रचना मार्क्स ने की थी। थोड़े दिनों में ही इस संस्था ने बड़ी उन्नति की। भिन्न-भिन्न देशों में इसकी शाखाएँ फैल गईं और साम्यवादी विचार के प्रचारों के लिए एक अच्छा साधन बन गईं। सन् १८६९ में बाकूनिन अपनी संस्था को तोड़कर इस संस्था में सम्मिलित हो गये।

जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं, इन दोनों व्यक्तियों के स्वभावों में बड़ा अन्तर था और विचार-पद्धति भी दोनों की परस्पर-विरोधी थी। प्रिंस क्रोपाटकिन ने अपने जीवन-चरित में लिखा है—

"मार्क्स के अनुयायियों और बाकुनिन के अनुगामियों में जो लड़ाई थी, वह कोई व्यक्तिगत कारणों से नहीं थी। बाकुनिन के अनुयायी संघ के सिद्धान्तों के पक्षपाती थे और मार्क्स के अनुयायी सारी शक्ति को एक संस्था में केन्द्रित करने के पक्ष में थे। बाकुनिन कहते थे कि संघ स्वतन्त्र रहने चाहिएँ और मार्क्स (State) राष्ट्र के पैतृक शासन में विश्वास रखते थे। बाकुनिक का विचार था कि साधारण जनता सर्वथा स्वतन्त्रतापूर्वक अपना सुधार करे और मार्क्स कानूनों द्वारा पूँजीवाद में सुधार करना चाहते थे। इन दोनों में अन्तर था लैटिन भावना तथा जर्मन मनोवृत्ति का। जर्मनी ने जब से फ्रान्स को युद्ध-क्षेत्र में हराया था तबसे वह विज्ञान, राजनीति और दर्शनशास्त्र में अपने को सबसे ऊँचा समझने लगा था। यही नहीं, जर्मन लोग साम्यवाद में भी इसी भावना से काम लेते थे और अपने 'साम्यवाद' को वैज्ञानिक कहते थे और दूसरों के साम्यवाद को 'काल्पनिक'—'हवाई' (utopian)।"

मार्क्स के अनुयायी इस कठोर शब्द के प्रयोग के लिए हमें क्षमा करें, पर

यदि वे शान्तिपूर्वक उन कार्रवाइयों पर विचार करेंगे, जो मार्क्स ने बाकूनिन के विरुद्ध कीं तो उन्हें इसी परिणाम पर पहुँचना होगा कि दर-असल मार्क्स ने ईमानदारी को धता बता दी थी। पहली अक्लमन्दी जो मार्क्स ने की थी कि अपने पत्र 'Neue Rhenische Zeitung' में यह सोलह आने असत्य अफवाह छाप दी कि बाकूनिन रूसी सरकार की खुफिया पुलिस का एक आदमी है! यद्यपि पीछे जब इसका खण्डन किया गया, तो मार्क्स ने वह भी छाप दिया था, पर इस भयंकर निराधार अफवाह से बाकुनिन की कीर्ति को बड़ा धक्का लगा था। इसके बाद मार्क्स ने अपने जर्मन मित्रों को एक गुप्त चिट्ठी भेजी, जिसमें लिखा था कि बाकूनिन पैन-स्लेविस्ट लोगों का एजेण्ट है और उन लोगों से बाकुनिन को २५ हजार फ्रैंक प्रतिवर्ष मिलते हैं।

बाकूनिन को इण्टरनेशनल से निकालने के लिए मार्क्स ने जिस चालाकी का आश्रय लिया था, वह तो वास्तव में सर्वथा निन्दनीय थी। उस घटना को सुन लीजिए। बात सन् १८६७–७० की है। बाकुनिन उन दिनों लोकार्नो में रहते थे। आर्थिक संकट के मारे बिचारे तंग थे। उन दिनों एक रूसी पुस्तक-प्रकाशक को उन्होंने यह वचन दिया कि हम तुम्हारे लिये 'कैपीटल' (Capital) नामक पुस्तक का अनुवाद रूसी भाषा में कर देंगे और इसके लिए ३०० रूबल (करीब ४५० रु०) पेशगी ले लिये। क्रान्तिकारी कार्यों में फँसे रहने के कारण बाकुनिन अनुवाद-कार्य को हाथ में न ले सके। प्रकाशक ने तकाजा करना शुरू किया। बाकुनिन बड़े तंग थे। बाकूनिन की इस मनोव्यथा को देखकर उनके एक क्रान्तिकारी साथी ने, जिसका नाम नैचेव (Netchayeff) था, प्रकाशक के एजेण्ट लुबेबिन को धमकी की एक चिट्ठी भेजी कि या तो तुम बाकुनिन को तंग करना छोड़ दो, वरना तुम्हारी खैर नहीं। चूँकि नैचेव महाशय रूस में एक आदमी का खून करके फरार हो चुके थे, इसलिए उनकी धमकी कारगार हो गई। इस धमकीपूर्ण पत्र की खबर स्विट्जरलैंड के प्रवासी रूसी समाज के कानों तक पहुँच चुकी थी और मार्क्स ने भी इसे सुन रखा था। मार्क्स ने इस चिट्ठी का उपयोग करने की ठान ली। मार्क्स ने सन् १८७२ में सोचा कि यदि कहीं यह चिट्ठी हमारे हाथ आ जाय, तो काम बन जाय! फिर हम हेग की इण्टरनेशनल में लोगों से कह सकेंगे कि देखो, बाकुनिन कैसा बेईमान आदमी है कि पेशगी रुपये लेकर फिर धमकी की चिट्ठी भिजवाता है! इस उद्देश्य से मार्क्स ने एक चिट्ठी एक रूसी विद्यार्थी को, जिसका नाम डेनियलसन था और जो मार्क्स का प्रशंसक था, लिख भेजी कि किसी प्रकार उस चिट्ठी को मेरे पास भेज दो तो काम बने। चिट्ठी निम्नलिखित है—

"It would be of the highest utility for me, if this letter was sent

me immediately. As this is a mere commercial affair and as in the use to be made of the letter no nameś will be used, I hope you will procūre me that letttr. But no time is to be lost. If it is sent, it ought to be sent at once, as I shall vave London for the Haag Congress at the end of this month."

अर्थात्—"यदि यह चिट्ठी फौरन मुझे भेज दी जाय तो वह मेरे लिये अत्य-धिक उपयोगी हो सकती है। चूँकि यह खालिस व्यापार की बात है, और चूँकि चिट्ठी का इस्तेमाल करते समय किसी के नाम का उल्लेख न किया जायगा, इसलिये मुझे आशा है कि आप मेरे लिये यह पत्र प्राप्त कर देंगे; लेकिन इसमें रत्ती भर देर न होनी चाहिए। अगर वह भेजा जाय तो फौरन भेजा जाय, क्यों कि इस मास के अन्त में मैं हेग-कांग्रेस के लिए लन्दन से रवाना हो जाऊँगा।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि मार्क्स ने यह चिट्ठी ए० विलियम्स नाम से लिखी थी। रूसी सरकार की दृष्टि से बचने के लिए कार्लमार्क्स डेनियलसन के साथ इसी नाम से पत्र-व्यवहार किया करते थे।

प्रकाशक के एजेण्ट लुबेविनने तुरन्त ही यह चिट्ठी मार्क्स को भेज दी। साथ ही लुबेबिन ने यह लिखा—"पहले तो मेरा खयाल था कि अवश्य ही इस धमकी की चिट्ठी के भिजवाने में बाकुनिनका हाथ रहा होगा; लेकिन अब शान्तिपूर्वक विचार करने पर मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि इस चिट्ठी से बाकु-निन के विरुद्ध कुछ भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि सम्भव है कि नैचेवने यह चिट्ठी बाकुनिन के बिना जाने लिखी हो।"

इस चिट्ठी के द्वारा मार्क्सने हेग की कांग्रेस में बाकुनिनको बेईमान सिद्ध करने का निन्दनीय प्रयत्न किया! मार्क्स के जीवन-चरित-लेखक Franz Mehring ने भी मार्क्स की इस कार्रवाई को, बाकुनिन के सिर निराधार अपकीर्ति मढ़ने के प्रयत्न को, अक्षम्य बतलाया है। उन्होंने लिखा है—

"यद्यपि बाकुनिन बराबर यह बात स्वीकार करते रहे कि मैंने किताब के अनु वाद के लिए ३०० रूबल पेशगी लिये थे और साथही वे बराबर यह वचन भी देते रहे कि जैसे होगा वैसे इस रुपये को मैं वापस कर दूंगा; पर आर्थिक कठिनाइयों की वजह से वे कभी इस रुपये को लौटा नहीं सके। हमारे प्रसिद्ध-से-प्रसिद्ध ग्रंथकारों में कितने ऐसे न निकलेंगे, जिन्होंने प्रकाशक से पेशगी रुपये ले लिये, जो खर्च हो गये और फिर जिस किताब के लिखने का वचन दिया था, वह किताब वे न लिख सके! निस्सन्देह यह कोई प्रशंसनीय बात नहीं है कि पेशगी रुपये ले लेना और फिर किताब न लिख सकना, लेकिन इस अपराध के लिए अपराधी का खातमा करने का प्रस्ताव वास्तव में अन्यायपूर्ण है।"

मार्क्स के एक अन्य जीवन-चरित-लेखक ने लिखा है—

"Marx must bear most of the responsibility for a report, which was not merely stupid, but fundamentally dishonest."

अर्थात्—"इस रिपोर्ट की ज़िम्मेवारी अधिकांश में मार्क्स पर पड़नी चाहिए, क्योंकि यह रिपोर्ट बिलकुल मूर्खतापूर्ण ही नहीं थी, बल्कि दरअसल इसके मूल में बेई-मानी थी।"

बाकुनिन ने अपनी एक चिट्ठी में लिखा था—"ये लोग (मार्क्स प्रभृति) बुर्जुआ शब्द का इतना अधिक प्रयोग करते हैं कि नाकोंदम आ जाता है। बुर्जुआ शब्द इनका तकियाकलाम हो गया है, क्योंकि ये लोग खुद सिर से पैर तक प्रांतीय बुर्जुआ हैं।"

आज भी मार्क्स के कितने ही अनुयायी 'बुर्जुआ' शब्द का प्रयोग बेतरह करते हैं। हमारे एक साम्यवादी मित्र कहा करते हैं—"अराजकवादी तो बुर्जुआ लोग हैं, सिर नीचे, पैर ऊपर!"

मार्क्स तथा उनके साथियों ने बाकुनिनका पीछा नहीं छोड़ा। इन लोगों ने बाकुनिन के खिलाफ़ एक पाम्फलेट निकाला, जिसमें कितनी ही ऐसी बातें लिख दीं, जो बिलकुल बेसिर-पैर की और सोलहआने झूठ थीं—बाकुनिन खुफिया पुलिस का आदमी है, रूसी सरकार का एजेंट है, रिश्वत लेता है, पूँजीपतियों का सेवक है, इत्यादि-इत्यादि। बाकुनिन उन दिनों हृदय रोग से बीमार थे और निर्धनता की दशा में अपने दिन काट रहे थे। उन्हें इस पाम्फलेट को पढ़कर बड़ा दुःख हुआ। उसका खंडन करते हुए उन्होंने लिखा था—

"मैं तो अब साठ वर्ष का हो चुका और दिल की बीमारी की वजह से मेरे लिए सार्वजनिक जीवन में भाग लेना दिनों-दिन कठिन होता जाता है। जो नवयुवक हैं, उनसे मैं कहूँगा कि वे आगे बढ़ें। जहाँ तक मेरी बात है, सो न तो मुझ में अब इतनी शक्ति रह गई है और न इतना आत्मविश्वास कि चारों ओर की प्रति-क्रिया को रोकने के लिए निरन्तर उद्योग करता रहूँ। यह प्रतिगामीपन या अवनति सब तरफ़ विजयी प्रतीत होती है। मैं तो इस युद्ध से विश्राम लेता हूँ और अपने सुयोग्य समकालीन कार्यकर्ताओं को अन्तिम प्रणाम करता हूँ। मैं अपने सहयोगियों से सिर्फ एक बात चाहता हूँ कि वे मुझे भूल जाएँ। अबसे मैं किसी को तंग न करूँगा, न कोई मुझे तंग करे।"

यह बात ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि बाकुनिन मार्क्स की इस नीति के घोर विरोधी थे कि उन्होंने इण्टरनेशनल पर कब्ज़ा करके उसे अपना बदला निकालने का साधन बना लिया था, तथापि बाकुनिनने उक्त संस्था की स्थापना के लिये मार्क्स की सदा प्रशंसा ही की थी। जब बाकुनिन ने अपने स्वास्थ्य के गिर जाने के कारण रिटा-

पर होने बात लिखी थी तो कितने ही लोगों ने इसका भी मज़ाक़ उड़ाया था ! पर दरअसल उनका स्वास्थ्य गिर गया था। बाकुनिन के अन्तिम दिन बड़े आर्थिक संकट में और अत्यन्त कष्टमय परिस्थितियों में कटे। पहली जुलाई सन् १८७६ को बर्न में उनका देहान्त हो गया।

बाकुनिन के आखिरी दिनों की स्थिति पर विचार करते हुए बार-बार मन में यह खयाल आता है कि क्या राजनीति का अर्थ यही है कि अपने विरोधी को येनकेन-प्रकारेण नीचा दिखाया जाय ? क्या ईमानदारी का राजनीति में सचमुच कोई स्थान नहीं है ? जिस महापुरुष ने अपने जीवन के तीस वर्ष संसार के ग़रीबों की सेवा में लगा दिये और जिसने अत्यन्त भयंकर पथ पर अनन्त यातनाएँ सहीं, दो बार जिसे फाँसी का हुक्म हुआ, बारह वर्ष जो जेल में रहा और जिसे जीवन-भर इधर-से-उधर मारे-मारे फिरना पड़ा, क्या उसको अन्त में यही पुरस्कार मिलना चाहिए था ?

प्रिंस क्रोपाटकिन ने अपने जीवन-चरित में एक जगह एक स्मरणीय घटना का वृत्तान्त लिखा है—

"एक बार एक मीटिंग में कुछ नवयुवक ऐसी बातचीत कर रहे थे, जो स्त्रियों के प्रति शिष्टतापूर्ण नहीं थी। उस मीटिंग में कई स्त्रियाँ भी उपस्थित थीं। उनमें से एक स्त्री ने कहा—'Pity that Michel is not here. He would put you in your place.' 'दुःख की बात है कि आज यहाँ माइकेल बाकुनिन मौजूद नहीं हैं, नहीं तो वे तुम्हें बतला देते कि तुम्हारा स्थान कहाँ है।' इस घटना का मुझ पर इतना प्रभाव पड़ा कि मुझे अब भी उस जगह का जहां पर और जिस परिस्थिति में यह घटना घटी थी, पूरा-पूरा स्मरण है। उस पर्वतकाय महान् क्रांतिकारी का उज्ज्वल आदर्श, जिसने क्रांति के लिए सर्वस्व अर्पित कर किया था और जिसकी क्रांति की भावनाएँ सर्वोच्च तथा पवित्रतम थीं, अराजकवादियों को बराबर उत्साहित किया करता था।"

बाकुनिन का जीवन इतना अधिक क्रान्तिमय रहा कि उन्हें अपने अराजकवाद-सम्बन्धी सिद्धान्तों को ठीक तौर पर जनता के सम्मुख रखने का अवकाश ही नहीं मिला। यह कार्य उनके सुयोग्य शिष्य प्रिंस क्रोपाटकिन ने किया। 'गुरु गुर ही रहे, चेला शक्कर हो गये'—यह दृष्टान्त बाकुनिन और प्रिंस क्रोपाटकिन पर चरितार्थ होता है। भविष्य के लिए मानव-समाज के कल्याणार्थ कौन-सी व्यवस्था ठीक होगी, इसका जिक्र करते हुए श्री बर्ट्रेण्ड रसेल ने अपनी पुस्तक में लिखा है—

"From the point of liberty......I have no doubt that the best system would be not far removed from that advocated by Kropotkin but rendered more practicable by the adoption of the main principles of Guild Socialism."

अर्थात्—"स्वाधीनता के खयाल से मेरी समझ में सर्वोत्तम व्यवस्था वह होगी, जिसका प्रतिपादन प्रिंस क्रोपाटकिन ने किया है, पर उसे अधिक व्यावहारिक रूप देने के लिए 'गिल्ड सोशलिज्म' के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों को ग्रहण करना पड़ेगा।"

बाकुनिन तथा प्रिंस क्रोपाटकिन के अराजकवाद-सम्बन्धी विचारों का जिक्र करते हुए महात्मा जी का नाम लेना आश्चर्यजनक भले ही मालूम पड़े, पर वह है सर्वथा प्रासंगिक। दरअसल महात्मा जी के विचार प्रिंस क्रोपाटकिन के जितने निकट हैं, उतने कार्ल मार्क्स के नहीं। जहाँ तक नैतिकता का सम्बन्ध है, महात्मा जी तथा प्रिंस क्रोपाटकिन क़रीब-क़रीब एक ही धरातल पर हैं। महात्मा जी अपने को अराजकवादी कहते भी हैं। महात्मा जी के सत्याग्रह तथा अहिंसा के सिद्धान्त में संसार के लिए जो महान् हितकारी शक्ति छिपी हुई है, उसका मूल्य हम लोगों को अभी पूर्णतया नहीं मालूम हो सकता। बाकुनिन और प्रिंस क्रोपाटकिन, मार्क्स और लेनिन हिंसा के द्वारा क्रान्ति लाना चाहते हैं, पर महात्मा जी अहिंसा द्वारा। इस सिलसिले में हमें एक घटना याद आती है।

सुप्रसिद्ध अमेरिकन दार्शनिक एमर्सन अपनी द्वितीय इंगलैण्ड यात्रा पर गये हुए थे। एक दिन वे अंग्रेज मित्रों के साथ बातचीत कर रहे थे। उन मित्रों ने कहा—"क्या आपके यहाँ अमेरिका में कोई ऐसे भी आदमी हैं, जिनके विचार अमेरिका के शासन के विषय में निजी हों, मौलिक हों?"

एमर्सन ने उत्तर दिया—"हैं तो अवश्य, पर जिन लोगों के मौलिक विचार हैं, वे ऐसे स्वप्नदर्शी हैं कि यदि मैं उनके विचारों का जिक्र करने लगूँ, तो वे आपके अंगरेज-कानों को बिलकुल ऊटपटाँग जँचेंगे, लेकिन उनका स्वप्न ही वास्तविक है।" इसके बाद एमर्सन ने कहा—"हमारे यहाँ ऐसे पवित्र विचार वाले पुरुष हैं, जो No-government and non-resistance अर्थात् अराजकवाद तथा अहिंसा में विश्वास रखते हैं।" इसके बाद एमर्सन ने निम्नलिखित शब्द कहे—

"It is true I have never seen in my country a man of sufficient valour to stand for this truth, and yet it is plain to me, that no less valour than this can command my respect. I can easily see the bankruptcy of the vulgar musket-worship—though great men be musket-worshippers—and 'tis certain as God liveth, the gun that does not need another gun, the law of love and justice alone can affect a clean revolution."

अर्थात्—ये शब्द ध्यान देने योग्य हैं कि यदि स्वच्छ क्रान्ति संसार में हो सकती है तो 'प्रेम' और 'न्याय' के सिद्धान्त से ही। यदि एमर्सन आज जीवित होते

तो अवश्य वे महात्मा जी में उस व्यक्तित्व को पाते, जिसके लिए उनकी आँखें सन् १८४७ में भटक रही थीं। पर जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, संसार का उद्धार किसी एक व्यक्ति के सिद्धान्तों से नहीं होगा। दो अरब आदमियों से बने हुए इस मानव-समूह के रोगों की रामबाण औषधि किसी एक वैद्य के पास नहीं है। कठ-मुल्ले हैं वे, जो समझते हैं कि बस हमारा ही पथ ठीक है और सब रास्ते गलत हैं। मार्क्स के जो अनुयायी महात्मा गांधीजी को 'साम्राज्यवाद के दोस्त' और प्रतिक्रिया-वादी' बतलाते हैं अथवा अराजकवाद के सिद्धान्त की खिल्ली उड़ाते हुए अराजक-वादियों को 'बर्जुआ' और 'स्वप्नदर्शी' कहते हैं, वे अपनी अल्पज्ञता का ही परि-चय देते हैं।

संसार के सामने अनेक युग आने वाले हैं। मार्क्सवाद का युग ही अन्तिम युग नहीं है, और उन भावी युगों के लाने का श्रेय जिन व्यक्तियों को होगा, उनमें महाप्राण माइकेल बाकुनिन का नाम अग्रगण्य है।

५

क्रान्तिकारी क्रोपाटकिन

"जनाब ब्लाडिमिर इलियच (लेनिन), जब आपकी आकांक्षा तो यह है कि हम एक नवीन सत्य के मसीहा बनें और नवीन राज्य के संस्थापक, तो फिर आप किस प्रकार ऐसे वीभत्स सरकारी अनाचारों और गैर-मुनासिब गवर्मेण्टी तौर-तरीकों को अपनी स्वीकृति दे सकते हैं, जैसे कि किसी के अपराध के लिए उसके नाते-रिश्तेदारों को गिरफ्तार कर लेना ? इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि आप जारशाही के विचारों से चिपके हुए हैं ! पर शायद उन निरपराध आदमियों को पकड़कर आप अपनी जान की रक्षा करना चाहते हैं । क्या आप इतने अन्धे हो गए हैं और अपने डिक्टेटर-शिप के विचारों के इतने गुलाम बन गए हैं कि आपको यह बात नहीं सूझती कि आप-जैसे यूरोपियन साम्यवाद के अग्रणी के लिए यह कार्य (लज्जाजनक तरीकों द्वारा निरपराधों की गिरफ्तारी) सर्वथा अनधिकार चेष्टा है ? आपका यह काम भयंकर रूप से त्रुटिपूर्ण तो है ही,बल्कि उससे यह भी प्रकट होता है कि आप मृत्यु से डरते हैं, जो सर्वथा तर्कविहीन बात है । उस कम्यूनिज्म के विषय में क्या कहा जाय, जिसका एक महत्वपूर्ण रक्षक इस प्रकार ईमानदारी की प्रत्येक भावना को पैरों-तले कुचलता है ।"

यह है उस महत्वपूर्ण पत्र का एक अंश, जिसे अपने जीवन के अन्तिम दिनों में (मृत्यु से दो महीने पूर्व) क्रोपाटकिन ने लेनिन को लिखा था । लेनिन उन दिनों विशाल रूसी राज्य के निरंकुश शासक थे और क्रोपाटकिन ४१ वर्ष के देश-निकाले के बाद चार वर्ष अपनी मातृभूमि के दमघोंटू वातावरण में काटकर परलोक-गमन की तैयारी कर रहे थे । इन शब्दों में उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के उस महापुरुष की आत्मा बोल रही है, जिसने कभी अन्याय के साथ समझौता करना मुनासिब न समझा, जिसने साधन और साध्य दोनों की पवित्रता पर समान रूप से जोर दिया और जिसने ईमानदारी तथा अपरिग्रह का वह दृष्टान्त उपस्थित कर दिया, जिसकी मिसाल संसार के राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं के इतिहास में दुर्लभ ही है ।

मंत्रित्व बनाम जूतों पर पालिश

जब केरेन्स्की ने क्रोपाटकिन से कहा था कि "आप हमारे सरकारी मंत्रिमंडल में जिस किसी पद को चुन लीजिए, वही आपको अर्पित हो जायगा", उस समय क्रोपाटकिन ने उत्तर दिया था "मंत्रित्व के कार्य की अपेक्षा तो मैं जूतों पर पालिश करने वाले चमार का काम अधिक आदरणीय तथा उपयोगी मानता हूँ !" इसी प्रकार दस हजार रूबल की पेंशन के प्रस्ताव को उन्होंने ठुकरा दिया और जार के शीतकालीन महलों के निवास की सर्वथा उपेक्षा की। यह तो हुई लेनिन के पूर्व के शासकों के समय की बात. स्वयं साम्यवादी सरकार के शिक्षा-मन्त्री लूनाचरस्की ने जब क्रोपाटकिन को लिखा—"आप सरकार से ढाई लाख रूबल लेकर अपनी किताबों के छापने का अधिकार हमें दे दीजिए", तो क्रोपाटकिन ने उत्तर दिया —"मैंने कभी शासन से पैसा नहीं लिया और न अब ही सरकारी सहायता ग्रहण कर सकता हूँ।" यह उन दिनों की बात है, जब क्रोपाटकिन को वृद्धावस्था के अनुरूप पर्याप्त भोजन भी नहीं मिलता था, जब उनके पास रोशनी की भी कमी थी और कोई सहायक भी नहीं था।

तो फिर प्रश्न उठता है कि आदर्शवाद को पराकाष्ठा तक पहुँचा देने वाले क्रोपाटकिन अपनी गुजर-बसर कैसे करते थे ? देश-निकाले के ४१ वर्ष उन्होंने अपनी लेखनी के बल-बूते पर ही काट दिए। इसमें भी अराजकवादी लेखों से उन्होंने एक पैसा नहीं कमाया ! वे अत्यन्त उच्च कोटि के वैज्ञानिक थे और वैज्ञानिक लेखों तथा टिप्पणियों से उन्हें कुछ मजदूरी मिल जाती थी। बड़ी सरलता के साथ उन्होंने अपने आत्मचरित में लिखा है—"अगर रूस से पर्याप्त समाचार आ जाते अथवा वैज्ञानिक विषयों पर मेरे नोट स्वीकृत हो जाते, तो रोटी-चाय के साथ मक्खन भी मिल जाता, नहीं तो रूखी रोटी पर ही गुजर करनी पड़ती।"

अद्भुत आतिथ्य

सुप्रसिद्ध लेखक फ्रैंक हैरिस ने क्रोपाटकिन के विलायत के दिनों के आतिथ्य का एक अच्छा शब्द-चित्र खींचा है—'क्रोपाटकिन की धर्मपत्नी सोफी भोजन तैयार कर रही है पति के लिए, छोटी-सी पुत्री के लिए और अपने लिए, कि इतने में कोई अतिथि महोदय न जाने कहाँ से आ टपके ! क्रोपाटकिन ने शीघ्र ही भीतर जाकर कहा—सोफी, जरा साग में थोड़ा पानी मिला देना।' थोड़ी देर बाद एक और अतिथि देव पधारे और क्रोपाटकिन को फिर भीतर आकर कहना पड़ा—'कुछ पानी और भी।' इस प्रकार की क्रिया कई बार करनी पड़ती और सोफी को ढाई आदमियों के बजाय छः-सात आदमियों को भोजन कराना पड़ता। मेहमानदारी क्रोपाटकिन के अत्यन्त प्रिय गुणों में से थी और बिलकुल अजनबी आदमी भी उनके



प्रिन्स क्रोपाटकिन
(क्रान्तिकारी क्रोपाटकिन शीर्षक परिच्छेद में)

थर पर किसी संकोच का अनुभव न करता था।"

संसार में अनेक राजनीतिक महापुरुष हुए हैं और होंगे; पर मस्तिष्क की विशालता, हृदय की उदारता, चरित्र की स्वच्छता और जीवन की उच्चता के खयाल से कोपाटकिन का दृष्टान्त प्रायः अनुपम ही सिद्ध होगा। वैसे प्रारम्भिक तथा यौवन के वर्षों के खयाल से कोपाटकिन के जीवन का सर्वोत्तम वृत्तान्त तो उनके आत्मचरित 'मेमोयर्स आफ ए रिवोल्यूशनिस्ट' से ही मिल सकता है, पर वह ग्रन्थ सन् १८९८ तक का ही है और उसके बाद कोपाटकिन २३ वर्ष और भी जीवित रहे थे। इस कारण उनके एक विस्तृत जीवन-चरित की आवश्यकता थी और उसकी पूर्ति जार्ज वुडकॉक और आइवन अवाकुमोविक नामक दो ग्रन्थकारों ने कर दी। ('प्रिन्स पीटर कोपाटकिन'—प्रकाशक बोर्डमैन)।

कोपाटकिन का जन्म सन् १८४२ में हुआ और मृत्यु १९२१ में। उनके जीवन-चरित में तत्कालीन रूस का एक चलता-फिरता चित्र-सा दिखाई देता है। उनका आत्म-चरित इतनी खूबी के साथ लिखा गया है कि वह उन्नीसवीं शताब्दी का सर्वोत्तम आत्मचरित कहा जाता है। कोपाटकिन का जीवन एकांगी न था, वह विविधांगी था। क्रान्तिकारी अराजकवादी तो वे थे ही, पर साथ-ही-साथ संसार के भूगोलवेत्ताओं में भी वे शिरोमणि थे और समाज-विज्ञान के भी जाने-माने आचार्य। रूस तथा यूरोप के सत्तर वर्ष के इतिहास पर भी उनके जीवन से विशेष प्रकाश पड़ता है।

महात्मा गान्धी और प्रिंस कोपाटकिन

कोपाटकिन के इस जीवन-चरित को पढ़ते हुए हमें उनके और गांधीजी—इन दोनों महापुरुषों के जीवन तथा दृष्टिकोण में अद्भुत साम्य प्रतीत हुआ। साधनों की पवित्रता पर वे उतना ही जोर देते थे, जितना कि महात्मा गांधी। मैरी गोल्डस्मिथ नामक एक यहूदी अराजकवादी ने लिखा है—"जो भी नवयुवक कोपाटकिन से मिलने जाता था, उसकी बात वे बड़ी प्रेमपूर्ण मुस्कराहट और सौम्य भावना से सुनते थे। पर एक बात थी कि यद्यपि प्रत्येक ईमानदार तथा उत्साही युवक के प्रति उनका व्यवहार उदारतापूर्ण रहता था, तथापि साधनों के चुनाव के विषय में वे काफी कठोरता से काम लेते थे। प्रचार के कुछ ढंगों को कोपाटकिन असह्य मानते थे। अनुचित साधनों का जिक्र करते हुए उनका स्वर कठोर हो जाता था और उनकी निन्दा बिना किसी लाग-लैस के होती थी। 'चाहे जैसे भले-बुरे साधनों से अपने लक्ष्य की प्राप्ति' के इस सिद्धांत से उन्हें घोर घृणा थी और चाहे संगठन का या रुपये एकत्रित करने का या विरोधियों के प्रति व्यवहार का या दूसरी पार्टियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रश्न होता, अगर कोई साधनों की पवित्रता को नगण्य मानता, तो इसे वे नफरत की निगाह से देखते थे और उसे गर्हणीय मानते थे।" श्री जवाहरलालजी का

कथन है कि 'साधनों की पवित्रता' पर जोर देकर महात्माजी ने राजनीति को बड़े ऊँचे धरातल पर ला दिया। संसार की राजनीति को यह उनका एक ख़ास दान था। और इस विषय में कोपाटकिन उनके अग्रणी ही थे।

शिक्षा, कृषि, शारीरिक श्रम का महत्त्व और विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्तों पर तो दोनों महापुरुषों के विचार बिल्कुल मिलते-जुलते हैं। सन् १८६६ में जब टाइन-साइड के कुछ कार्यकर्त्ता एक कृषि-संघ कायम करके खेती करना चाहते थे, कोपाटकिन ने उन्हें एक पत्र लिखकर प्रोत्साहित किया था और साथ ही मार्ग की बाधाओं के विषय में भी आगाह कर दिया था। उन्होंने बतलाया था कि छोटे समूह में अक्सर झगड़े हो पड़ते हैं शहरी कार्यकर्त्ताओं के लिए भूमि पर काम करना मुश्किल हो जाता है, पूँजी की कमी का खतरा अलग रहता है और संन्यासीपन की भावना गलत रास्ते पर ले जाती है। इसके बाद उन्होंने लिखा था—"यदि कृषि का कार्य तुमको आकर्षक लगता है, तो उसी को ग्रहण करो। तुम्हें उसमें अपने पहले के आदमियों की अपेक्षा सफलता की आशा अधिक है। कम-से-कम तुम्हें सहानुभूति मिलेगी ही, और मेरी सहानुभूति तो बराबर तुम्हारे साथ रहेगी।" इसके पहले के एक पत्र में कोपाटकिन ने अपने मित्र रोबिन को लिखा था—"बौद्धिक श्रम करते-करते मैं तो तंग आ चुका हूँ। अपनी लेखनी के द्वारा जीवित रहना मेरे लिए कठिन हो रहा है। मैं उसके बोझ से दबा जा रहा हूँ। इसके बजाय अगर मैं साग-सरकारी पैदा करता अथवा अनाज, तो दूसरों को कुछ सिखा भी सकता था।"

अब कोपाटकिन के इस पत्र की तुलना कीजिए महात्माजी के उस पत्र से, जो उन्होंने पण्डित तोतारामजी सनाढ्य को १९३२ में लिखा था। उस पत्र की प्रति-लिपि इस प्रकार है—"भाई तोतारामजी,......मेरी आकांक्षा यह है कि हम इतने फल और इतनी भाजी पैदा करें,जो हमारे लिए पर्याप्त हों। यदि गो-माता के लिए घास आदि पैदा करें और आश्रम के लिए अनाज,तो खेती के पूर्ण आदर्श को हम पहुँचे। लेकिन मैं जानता हूँ कि यह सब मूर्ख की बकवास है। खेती का काम सबसे कम किया और बातें सबसे मैंने इस बारे में ज्यादा की हैं। क्या करूँ,खेती उन्हीं चीजों में से है, जो करने का खयाल मुझको आधी आयु बीतने पर आया!—बापू।" दोनों पत्रों में कितना अधिक साम्य है। कोपाटकिन ने कृषि के विषय में भी अनुसन्धान किए थे। जब वे फरांसीसी जेल में थे, तो सरकारने उन्हें अपने कृषि-सम्बन्धी प्रयोगों के लिए एक खेत दे दिया था और ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने जो प्रयोग वहाँ किए, उन्होंने कृषि-जगत् में एक क्रांति ही कर दी! इन्हीं प्रयोगों के आधार पर उन्होंने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'फील्ड, फैक्टरीज़ एण्ड वर्कशॉप' लिखी। नई तालीम के अनेक मूल सिद्धान्त इस पुस्तक में हैं।

क्रोपाटकिन के जीवन-चरित के लेखकों ने लिखा है—"क्रोपाटकिन तथा उनके साथियों के बीच में आतंकवाद पर बराबर मतभेद रहा।" स्वयं क्रोपाटकिनने भी एक जगह लिखा था—"साधारणत: यह कहना ठीक होगा कि आतंक की प्रतिष्ठा एक सिद्धान्त के रूप में कर देना मूर्खतापूर्ण है।" इस सम्बन्ध में सन् १८९३ की एक महत्वपूर्ण घटना यहाँ दी जाती है। कोयले की खानोंमें हड़ताल हो गई थी। विलायत के मजदूर-नेता एक होटल में इकट्ठे हुए थे और उन्होंने क्रोपाटकिन को भी निमंत्रित किया था। जब तक खान के मजदूरों के कष्टों के निवारण की चर्चा चलती रही, सभी लोग एक-दूसरे से सहमत रहे; पर ज्यों ही उपायों का विषय छिड़ा कि क्रोपाटकिन की 'शान्तिप्रियता' ने मानो मेज पर विस्फोट का काम किया! मजदूर दल के सभी नेता सरकार के खिलाफ़ कठोर उपाय काम में लाने के पक्षपाती निकले। इसके विपरीत क्रोपाटकिन का कहना था कि हमें सत्याग्रह, बीच-बचाव तथा प्रचार से काम लेना चाहिए। इस वाद-विवाद का नतीजा यह हुआ कि मीटिंग टूट गई। टामसमैन नामक मजदूर-नेता बार-बार चिल्ला रहे थे—'हमें विध्वंस की नीति का आश्रय लेना चाहिए, हमें चीजों को तोड़ डालना चाहिए, हमें जालिमों को खतम कर देना चाहिए।' लेकिन ज्यों ही कुछ शान्ति होती, प्रिंस क्रोपाटकिन अपने विशेष लहजे में बड़ी विनम्रता से निरन्तर यही कहते सुनाई देते—"नहीं, विनाश नहीं, हमें निर्माण करना चाहिए। हमें मनुष्यों के हृदय का निर्माण करना चाहिए। हमें ईश्वर के राज्य का निर्माण करना चाहिए।" ये शब्द तो बिलकुल महात्मा गांधी जैसे ही प्रतीत होते हैं! और उन दिनों—१८९३ में—महात्माजी ने दक्षिण-अफ्रीका में वकालत के लिए प्रवेश किया था।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि क्रोपाटकिन के जीवन-चरित के लेखक भी अन्त में इसी परिणाम पर पहुँचे हैं कि संसार का कल्याण 'संगठित हिंसा' द्वारा नहीं होगा, बल्कि शान्तिपूर्वक एक-दूसरे के प्रश्नों को समझने के द्वारा; शासन अथवा 'राज्य' द्वारा नहीं होगा, वरन् पारस्परिक सहयोग के आधार पर स्थित सहस्रों समितियों द्वारा; केन्द्रीकरण द्वारा नहीं, विकेन्द्रीकरण द्वारा होगा। देश का ही नहीं, संसार का—यह दुर्भाग्य है कि हमारे यहां तुलनात्मक अध्ययन करके संसार के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विचारकों के विचारों का सरांश निकालने वाले विद्वान् बहुत कम हैं। क्रोपाटकिन तथा गांधी के विचारों का तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त आकर्षक है। और खास तौर से आज तो, जब कि दुनिया चौराहे पर खड़ी हुई है और उसके सामने ठीक मार्ग ग्रहण करने का प्रश्न उपस्थित है, यह विषय और भी अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है। एक मार्ग है क्रोपाटकिन तथा गांधी जी का और दूसरा है मार्क्स तथा स्टालिन का।

स्फूर्तिदायक जीवन

महापुरुषों के जीवन-चरितों में अद्भुत स्फूर्ति प्रदान करने की सामर्थ्य होती है और इस दृष्टि से क्रोपाटकिन का जीवन-चरित्र खासा महत्व रखता है। क्या अजीब सिनेमा जैसा दृश्य वह हमारी आँखों के सामने ला उपस्थित करता है! एक अत्यन्त प्राचीन और उच्च वंश में जन्म, जारशाही के अत्याचारों का घनघोर अन्धकार, गुलामी की प्रथा का ज़ोर-शोर, आठ वर्ष की उम्र में ज़ार के पार्षद बालक, बारह वर्ष की अवस्था में फ्रेंच भाषा का अध्ययन और रूसी राजनीतिक साहित्य में रुचि, अपने बड़े भाई एलेक्जेण्डर के साथ हार्दिक प्रेम, फौजी स्कूल में शिक्षा, साइबेरिया की यात्रा—गवर्नर-जनरल के ए० डी० सी० बनकर वहाँ से त्यागपत्र, फिर सेण्ट पीटर्सबर्ग के विश्वविद्यालय में पाँच वर्ष तक गणित तथा भूगोल का अध्ययन, क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित होना, यूरोप की यात्रा और वहाँ अराजकवादी संस्थाओं का संपर्क, रूस लौटकर क्रान्तिकारी विचारों का प्रचार इत्यादि। इसके बाद का दृश्य ए० जी० गार्डिनर के रेखा चित्र में देख लीजिए :—

"नाटक का पर्दा बदलता है। ज़ार निकोलस की अँधेरी रात दूर हो गई; लेकिन उसके बाद दासत्व-प्रथा बन्द होने के कारण थोड़ी देर के लिए जो उषःकाल आया था, उसे प्रतिक्रिया के अन्धकार ने ढँक लिया और रूस फिर पुलिस के अत्याचारों से कुचला जाने लगा। सैकड़ों निरपराध आदमी फाँसी पर लटका दिए गए, और हजारों ही जेलों में ठेल दिए गए, अथवा साइबेरिया में अपनी क़ब्र खोदने के लिए निर्वासित कर दिए गए। सारे रूस पर भय और आतंक का साम्राज्य था, लेकिन भीतर-ही-भीतर रूस जाग्रत हो रहा था। रूसी ज़ार एलेक्जेण्डर द्वितीय ने अपने शासन का सूत्र पुलिस के दो ज़ालिम अफसरों को—ट्रेपोफ और शुवालोफ को—सौंप दिया था। वे चाहे जिसे फाँसी पर लटका देते थे और चाहे जिसे निर्वासित कर देते थे; लेकिन फिर भी वे क्रान्तिकारी गुप्त समितियों की कार्रवाइयों को रोकने में सफल नहीं हुए। ये समितियाँ धड़ाधड़ स्वाधीनता तथा क्रान्ति का साहित्य जनसाधारण में बाँट रही थीं। इस घोर अशान्तिमय वायुमण्डल में भेड़की खाल ओढ़े एक अद्भुत किसान, अदृश्य भूत की तरह, इधर-से-उधर घूम रहा है। उसका नाम बोरोडिन है। पुलिस के अफसर हाथ मल-मल कर कहते हैं—'बस, अगर हम लोग बोरोडिन को किसी तरह पकड़ पावें, तो क्रान्ति की इस सर्पिणी का मुँह ही कुचल जाय—हाँ, बोरोडिन को और उसके साथी-संगियों को।' लेकिन बोरोडिन को पकड़ना आसान काम नहीं। जिन जुलाहों और मजदूरों के बीच में वह काम करता है वे उसके साथ विश्वासघात करने के लिए तैयार नहीं। वे सैकड़ों की संख्या में पकड़े जाते हैं, कुछ को जेल का दण्ड मिलता है और कुछ को फाँसी का; पर बोरोडिन का असली

नाम और पता बतलाने के लिए कोई तैयार नहीं।

"सन् १८७४ की बसन्त-ऋतु--सन्ध्या का समय है। सेण्ट पीटर्सबर्ग के सभी वैज्ञानिक और विज्ञानप्रेमी ज्योग्राफिकल सोसायटी के भवन में महान् वैज्ञानिक प्रिंस क्रोपाटकिनका व्याख्यान सुनने के लिए एकत्रित हुए हैं। फिनलैंडकी यात्राके परिणामों के विषय में उनका भाषण होता है। रूस के 'डाइल्यूवियल' (जलप्रलय) काल के विषय में वैज्ञानिकों ने जो सिद्धान्त अब तक क़ायम कर रखे थे, वे एक के बाद दूसरे खण्डित होते जाते हैं और अकाट्य तर्क के आधार पर एक नवीन सिद्धान्त की स्थापना होती है। सारे वैज्ञानिक जगत् में क्रोपाटकिन की धाक जम जाती है। इस महापुरुष के मस्तिष्क के विस्तार के विषय में क्या कहा जाय! उसका शासन भिन्न-भिन्न ज्ञानों तथा विज्ञानों के समूचे साम्राज्य पर है। वह महान् गणितज्ञ है और भूगर्भ-विद्या का विशेषज्ञ। वह कलाकार है और ग्रंथकार (बारह वर्ष की उम्र में उसने उप-न्यास लिखे थे), वह संगीतज्ञ है और दार्शनिक। बीस भाषाओं का वह ज्ञाता है और और सात भाषाओं में वह आसानी के साथ बातचीत कर सकता है। तीस वर्ष की उम्र में रूस के चोटी के विद्वानों में--उस महान् देश के कीर्त्ति-स्तम्भों में--प्रिंस क्रोपाटकिन की गणना होने लगती है। प्रिंस क्रोपाटकिन को बाल्यावस्था में फौजी काम सीखना पड़ा था, और पाँच वर्ष बाद जब उनके सामने स्थानके चुनाव का सवाल आया, तो उन्होंने साइबेरिया को चुना था। वहाँ सुधार की जो स्कीम उन्होंने पेश की और आमूर की यात्रा करके एशिया के भूगोल की भद्दी भूलों का जिस तरह संशो-किया, उससे उनकी कीर्त्ति पहले से ही फैल चुकी थी; पर आज तो भौगोलिक जगत में विजय का सेहरा उन्हीं के सिर बाँध दिया गया। प्रिंस क्रोपाटकिन ज्योग्राफिकल सोसाइटी के "फ़िज़ीकल ज्योग्राफी" विभाग के सभापति मनोनीत किए गए। भाषण के बाद ज्यों ही गाड़ी में बैठ कर वे बाहर निकले और एक दूसरी गाड़ी उनके पास से गुजरी, एक जुलाहे ने उस गाड़ीमें से उझक कर कहा--'मिस्टर बोरोडिन, सलाम! दोनों गाड़ियां रोक दी गई। जुलाहे के पीछे से खुफिया-पुलिस का एक आदमी उस में से कूद पड़ा और बोला 'मिस्टर बोरोडिन उर्फ क्रोपाटकिन, मैं तुम्हें गिरफ्तार करता हूँ।' उस जासूस के इशारे पर पुलिस के आदमी कूद पड़े। उनका विरोध करना व्यर्थ होता, क्रोपाटकिन पकड़ लिए गए। विश्वासघातक जुलाहा दूसरी गाड़ी में उनके पीछे-पीछे चला।"

४१ वर्ष की साधना

सन् १८७६ से लेकर १९१७ तक (४१ वर्ष) क्रोपाटकिन को स्वदेश से बाहर व्यतीत करने पड़े। कठोर-से-कठोर साधना का यह लम्बा युग केवल उनके जीवन का ही नहीं, संसार के राजनीतिक इतिहास का भी एक महत्वपूर्ण अध्याय है। इस बीच

में वे स्विट्जरलैंड तथा फ्रांस में भी रहे और दो-ढाई वर्ष के लिए उन्हें फरांसीसी जेल की भी हवा खानी पड़ी। उनके सभी महत्वपूर्ण ग्रंथ इसी समय में लिखे गए। इनमें कई तो ऐसे हैं, जिनका विश्वव्यापी महत्व है, जैसे 'पारस्परिक सहयोग' और 'रोटी का सवाल' आदि। उनके क्रान्तिकारी लेखों के भी कई संग्रह भिन्न-भिन्न भाषाओं में छपे थे और 'नवयुवकों से दो बातें' तथा अन्य लेख हिन्दी में भी छप चुके हैं।

क्रोपाटकिन ने ही लंदन में सन् १८८६ में 'फ्रीडम' नामक पत्र की स्थापना की, जो अब तक चल रहा है। इसी वर्ष क्रोपाटकिन के जीवन की एक अत्यन्त दुःखमय घटना घटी, यानी उनके बड़े भाई ने साइबेरिया से लौटते हुए रास्ते में आत्मघात कर लिया। उन्हें भी देश-निकाले का दण्ड दिया गया था, जिसके अन्तर्गत बारह वर्ष उन्हें साइबेरिया में बिताने पड़े थे। जब उनके छुटकारे के दिन निकट आए, तो उन्होंने अपने बाल-बच्चों को पहले ही रूस रवाना कर दिया और फिर एक दिन निराशा से अभिभूत होकर अपने-आपको गोली मार ली। वे महान गणितज्ञ थे—खगोल शास्त्र के अद्भुत ज्ञाता थे, और ज्योतिष शास्त्र के बड़े-से-बड़े विद्वानों ने उनकी कल्पनाशील प्रतिभा की बहुत प्रशंसा की थी। महज आशंका के आधार पर उन्हें जारशाही ने देश-निकाले का दण्ड दिया था, जब कि क्रान्तिकारी दल से उनका कोई भी सम्बन्ध न था। यदि उन्हें स्वाधीनतापूर्वक अपने खगोल-सम्बन्धी अनुसन्धान करने की सुविधा होती, तो उस शास्त्र की उन्नति में वे कितने सहायक हुए होते! पर निरंकुश शासकों में भला इतनी कल्पना-शक्ति कहाँ? क्रोपाटकिन के हृदय में उनके प्रति अत्यन्त श्रद्धा थी। इन दोनों भाइयों का प्रेमपूर्ण व्यवहार आदर्श था। पर क्रोपाटकिन ने अपनी इस हृदयवेधक दुर्घटना का जिक्र अत्यन्त संयम के साथ केवल एक वाक्य में किया है—"हमारी कुटिया पर कई महीने तक दुख की घटा छाई रही।" प्रेम-कातर क्रोपाटकिन ने अपनी भाभी तथा भतीजे-भतीजियों की यथाशक्ति सेवा की।

क्रोपाटकिन की मनुष्यता

क्रोपाटकिन की समस्त शिक्षाओं का आधार उनकी मनुष्यता थी। वस्तुतः अराजकवाद इस विषय में मार्क्सवाद से सर्वथा भिन्न है। मार्क्सवादियों की दृष्टि में व्यक्ति का कोई महत्व नहीं। मार्क्सवादी उसके साथ शतरंज के मुहरे की भाँति व्यवहार करते हैं और सिद्धान्त-सम्बन्धी मतभेद होने पर उसके शरीर तथा आत्मा को अलग-अलग कर देने में भी उन्हें संकोच नहीं होता! पर अराजकवादी के लिए मनुष्य वस्तुतः मनुष्य है, जिसके लिए मानो उसका हृदय उमड़ा पड़ता है। साम्यवादी को अपनी 'प्रणाली' की चिन्ता है, जब कि अराजकवादी को 'मनुष्य' की।

जब भी कभी अन्याय तथा अत्याचार का प्रश्न आता, क्रोपाटकिन बिना किसी भेद-भाव के उसका विरोध करते---चाहे वह अन्याय उनके विरोधी पन्थ वाले पर ही क्यों न किया गया हो। उनके शब्द सुन लीजिए---"हम व्यक्ति की पूर्ण स्वाधीनता को मानते हैं। हम उसके लिए जीवन की प्रचुरता तथा उसकी समस्त प्रतिभाओं का स्वतन्त्र विकास चाहते हैं। हम उसके ऊपर लादना कुछ भी नहीं चाहते। इस प्रकार हम उस सिद्धान्त पर पहुँचते हैं, जिस सिद्धान्त को फरियर ने धार्मिक नीति-ज्ञान के विरोध में रखते हुए कहा था--'मनुष्य को बिलकुल स्वतन्त्र छोड़ दो। उसे अंगहीन मत बनाओ, क्योंकि धर्म उसको अपंग--जरूरत से ज्यादा अपंग--बना चुका है।' उसके मनोविकारों से भी मत डरो। स्वतन्त्र समाज में ये खतरनाक नहीं होते।"

प्रिंस क्रोपाटकिन के ग्रन्थों को पढ़ जाइये, कहीं भी कोई क्षुद्र भावना उनमें दिखाई न देगी। कम्यूनिस्ट साहित्य के शाब्दिक जंजाल का उनमें नामोनिशान तक नहीं है। कम्यूनिस्ट लोग अर्थ को इतना महत्व देते हैं और नैतिकता को इतना नगण्य मानते हैं कि उनके साहित्य की लू-लपट में किसी भी सहृदय मनुष्य की आत्मा झुलस सकती है। क्रोपाटकिन का साहित्य इसके बिलकुल विपरीत है। उसमें नैतिकता की शीतल-मन्द समीर सदा ही बहती रहती है।

क्रोपाटकिन के ४१ वर्षीय देश-निकाले के कितने ही किस्से उनके जीवन-चरित में तथा उनके विषय में लिखे संस्मरणों में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं, जिनसे उनकी सन्त-प्रकृति पर पूरा-पूरा प्रकाश पड़ता है। एक बार फ्रैंक हैरिस ने उनसे कहा----"आपने देखा, उन अराजकवादियों ने यौवनावस्था में तो खूब काम किया, पर अब वे अर्थ-लोलुपता के शिकार हो गए हैं!" इस पर क्रोपाटकिन ने उत्तर दिया----"उन लोगों ने जोशे-जवानी के दिन हमारे अर्पित कर दिए और अपना सर्वोत्तम हमें भेंट कर दिया। अब इससे अधिक की माँग उनसे हम कर ही क्या सकते हैं?" यह उदारता ही क्रोपाटकिन के सम्पूर्ण जीवन की कुंजी थी।

विलायत में रहते हुए क्रोपाटकिन की मैत्री वहाँ के सर्वश्रेष्ठ विचारकों तथा कार्यकर्त्ताओं से हो गई थी। उनमें से कितने ही उनके प्रशंसक थे। हिंडमैन, बरनार्ड शा, लैन्सबरी, एडवर्ड कार्पेण्टर, नैविनसन और ब्रेलसफोर्ड प्रभृति से उनके सम्बन्ध बहुत निकट के थे और जब क्रोपाटकिन ७० वर्ष के हुए, तो उनकी संवर्द्धना के लिए आयोजित एक मीटिंग में बरनार्ड शा ने कहा था---"मुझे अब ऐसा प्रतीत होता है कि अब इतने वर्ष तक हम लोग गलत रास्ते पर चलते रहे हैं, और क्रोपाटकिन का रास्ता ही ठीक था।" तपस्वियों तथा विचारकों की विचार-धारा बहुत धीरे-धीरे काम करती है। क्रोपाटकिन ने अपनी वाणी तथा लेखनी द्वारा

जो महान कार्य किया, उसने केवल इंग्लैंड ही नहीं, फ्रांस, इटली, स्विट्ज़रलैण्ड तथा यूरोप के अन्य देशों के विचारकों को भी प्रभावित किया, और जो विचार उन दिनों नवीन प्रतीत होते थे, वे आज सार्वजनिक बन गए हैं।

रूस को वापसी

सन् १९१७ की रूसी क्रान्ति के बाद क्रोपाटकिन ने स्वदेश को लौटना उचित समझा। अब वे ७५ वर्ष के हो चुके थे, फिर भी उनके मन में युवकों जैसा उत्साह था। पेट्रोग्रेड में ६० हजार आदमियों ने उनका स्वागत किया और रूसी सरकार के प्रधान कैरेन्स्की भी उनके स्वागतार्थ उपस्थित थे। चूँकि क्रोपाटकिन का विश्वास किसी भी सरकार में नहीं था, इसलिए उन्होंने कोई सरकारी पद ग्रहण नहीं किया। वैसे कैरेन्स्की के साथ उनके सम्बन्ध अच्छे थे, पर लेनिन के हाथ में शक्ति पहुँचने पर क्रोपाटकिन सर्वथा उपेक्षा के ही पात्र बन गए।

अन्तिम दिन

क्रोपाटकिन के अन्तिम दिनों की एक झाँकी एमा गोल्डमैन के आत्मचरित 'लिविंग माइ लाइफ' में मिलती है। उन्होंने लिखा है—"रूस पहुँचने पर मुझे कम्यूनिस्ट लोगों ने बार-बार विश्वास दिलाया था कि क्रोपाटकिन तो बड़े आराम की जिन्दगी बसर कर रहे हैं और न उन्हें भोजन-वस्त्र की कमी है और न किसी अन्य वस्तु की। पर जब मैं क्रोपाटकिन के घर पहुँची, तो मामला इसके विपरीत ही पाया। क्रोपाटकिन, उनकी पत्नी सोफी तथा लड़की एलेक्जेण्ड्रा तीनों एक कमरे में रहते थे और वह कमरा भी काफी गरम नहीं था तथा पास के कमरे तो इतने ठण्डे थे कि उनका तापमान शून्य से भी नीचे था! उन्हें जो भोजन मिलता था, वह बस जीवित रहने-भर के लिए पर्याप्त था। पर जिस सहयोग-समिति से उन्हें राशन मिलता था, वह टूट चुकी थी और उसके मेम्बर जेल भेज दिए गए थे। मैंने सोफी से पूछा—'गुज़र-बसर कैसे होती है?' उन्होंने उत्तर दिया—'हमारे पास एक गाय है और बगीचे में भी कुछ पैदा हो जाता है। साथी लोग भी बाहर से कुछ भेज देते हैं। अगर पीटर (क्रोपाटकिन) बीमार न होते और उन्हें अधिक पौष्टिक भोजन की जरूरत न होती, तो हम लोगों की गुज़र-बसर हो जाती।"

जार्ज लैन्सबरी इन्हीं दिनों रूस गए हुए थे। उन्होंने एमा गोल्डमैन से कहा था—"मुझे तो यह बात असम्भव दीखती है कि सोवियत सरकार के उच्च पदाधिकारी क्रोपाटकिन-जैसे महान वैज्ञानिक को इस प्रकार भूखों मरने देंगे! हम लोग इंग्लैंड में तो इस प्रकार के अनाचार को असह्य समझेंगे।"

क्रोपाटकिन उन दिनों अपनी अन्तिम पुस्तक 'नीतिशास्त्र' लिख रहे थे। किताबों के खरीदने के लिए उनके पास पैसे नहीं थे। क्लार्क या टाइपिस्ट रखने की

वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे। इसलिए अपने ग्रन्थ की पान्डुलिपि उन्हें खुद ही तैयार करनी पड़ती थी। भोजन भी उन्हें पुष्टिकर नहीं मिल पाता था, जिससे उनकी कमजोरी बढ़ती जाती थी और एक धुंधले दीपक की रोशनी में उन्हें अपने ग्रन्थ की रचना करनी पड़ती थी।

जब क्रोपाटकिन मरणासन्न हुए, तो अवश्य लेनिन ने मास्को से सर्वश्रेष्ठ डाक्टर और भोजन इत्यादि की सामग्री भेजी थी और यह आदेश दिया था कि क्रोपाटकिन के स्वास्थ्य के समाचार उनके पास बराबर भेजे जावें। जीवन के अन्तिम दिनों में जिसे दमघोंटू वातावरण में रहने के लिए मजबूर किया गया, उसकी मृत्यु के समय इतनी चिन्ता का अर्थ ही क्या हो सकता था! ८ फरवरी, १९२१ को क्रोपाटकिन का देहान्त हो गया। लेनिन की सरकार ने सरकारी तौर पर उनकी अन्त्येष्टि करने का विचार प्रकट किया, जिसे उनकी पत्नी तथा साथी-संगियों ने तुरन्त ही अस्वीकार कर दिया। अराजकवादियों के मजदूर-संघ के भवन से उनके शव का जलूस निकला, जिसमें बीस हजार मजदूर थे। सर्दी इतने जोरों की थी कि बाजे तक बर्फ के कारण जम गए! लोग काले झंडे लिए हुए थे और चिल्ला रहे थे—'क्रोपाटकिन के संगी-साथियों को, अराजकवादी बन्धुओं को जेल से छोड़ो!'

सोवियट सरकार ने डिमिट्रोव का छोटा-सा घर क्रोपाटकिन की विधवा पत्नी को रहने के लिए और उनका मास्को वाला मकान क्रोपाटकिन के मित्रों तथा भक्तों को दे दिया, जहां उनके कागज-पत्र, चिट्ठियां तथा अन्य वस्तुएं सुरक्षित रहीं। सोफी १९३८ तक जीवित रहीं और क्रोपाटकिन के नाम पर स्थापित म्युजियम की रक्षा करती रहीं। इसके बाद वह संग्रहालय भी छिन्न-भिन्न हो गया। पर स्वाधीनता का यह अद्वितीय पुजारी युग-युगान्तर तक अमर रहेगा। उसका व्यक्तित्व हिमालय के सदृश महान और आदर्शवादिता गौरीशंकर शिखर की तरह उच्च है।

६

निहिलिस्ट युवक-युवतियाँ

क्रीमियन युद्ध की दुर्घटना, अलेकजेन्डर द्वितीय द्वारा किये गये सुधारों, तथा दास-प्रथा का उच्छेद आदि कई कारणों से जो रूस में विपुल राजनैतिक जागृति आ गई थी उसके फलस्वरूप वहाँ के नवयुवक समुदाय में ज्ञानसंचय की भी एक प्रबल लहर आ गई। रूस में उन दिनों शिक्षा का अत्यन्त अभाव था। देश के किसानों में मुश्किल से दो-चार पढ़े-लिखे आदमी मिल सकते थे।[1] उनके पढ़ाने के लिये समुचित साधन न थे। स्कूलों की अत्यन्त कमी थी। उनकी शिक्षा की ओर किसी का ध्यान न था। ज़ार तो शायद जनसमुदाय की शिक्षा के विरोधी ही रहे होंगे, वहाँ के सुधारवादियों का भी अभी इस ओर ध्यान आकृष्ट न हुआ था। पर इस बार राजनैतिक जागृति के साथ-साथ उनका ध्यान रूस के किसानों, समाज की निम्न श्रेणियों की शिक्षा की ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने यह महसूस किया कि जब तक समाज का वह अंग, जो सबसे बड़ा है, शिक्षित न किया जायगा तब तक देश का यथार्थ उत्कर्ष संभव न हो सकेगा। यह उनकी अशिक्षा का ही फल था कि बहुधा वे

---

१ रूस के तत्कालीन किसानों की अज्ञानता कितनी बढ़ी-चढ़ी थी यह उनके मूढ़ विश्वासमूलक कार्यों से परिलक्षित होता है। एकबार साइबेरिया से देश-निर्वासन की सजा भुगत कर एक कोई गणितशास्त्र के प्रोफेसर रूस लौटे थे और वहाँ के किसी छोटे से शहर में निवास कर रहे थे। उनके पास एक बड़ी लाइब्रेरी थी जिसके कारण किसान यह विश्वास करने लगे थे कि उन्हें दिव्य-दृष्टि प्राप्त है। एकबार उन्होंने आसपास के किसानों को फल के पौधे किस प्रकार लगाने चाहिए, इसकी शिक्षा दी। दूसरे दिन वे अपने रुग्ण बाल बच्चों तथा पशुओं के साथ उनके घर पर आ धमके और नाना प्रकार से उनसे अनुरोध करने लगे कि वे उन्हें आरोग्य कर दें। प्रोफेसर साहब ने उन्हें लाख समझाया कि वह जादू नहीं जानते पर उन्हें उनके वचन पर विश्वास न हुआ, बोले, आपकी जरा सी कृपा हुई और ये पलभर में रोगमुक्त हो जायँगे। आप सिद्ध पुरुष हैं यह हम लोगों को अच्छी तरह मालूम है।

अपने ही उत्थान के मार्ग में रोड़े अटकाते थे और उन देशसेवियों को जो उनके बीच छिपे हुए राजनैतिक संगठन का प्रयत्न करते थे, स्वयं पुलिस के हाथों गिरफ्तार करा दिया करते थे।[१] इस एक दृष्टान्त से ही यह लक्षित है कि उनकी शिक्षा की उस समय अत्यन्त आवश्यकता थी पर दूसरों के बीच विद्या-प्रसार के पहले यह आवश्यक था कि शिक्षक स्वयं ही पूर्ण रूप से शिक्षित हो लें। अतएव देश के युवकों ने यह निश्चित किया कि हम सर्वप्रथम ज्ञान-संचय में, जी जान से, लग जायें और इस कार्यसाधन में आने वाली रुकावटों की तनिक भी परवा न करें। किसी कवि ने कहा है कि 'बड़े काम जो करने हों तो जा पहाड़ से टक्कर ले' सो उन्होंने भी पहाड़ से टक्कर लेने की सोची। सामाजिक बन्धनों, रुपये-पैसे की कठिनाइयों, का वे कुछ भी ख्याल न करके ज्ञानपथ के पथिक बन गये।[२] रूस के सुदूर प्रान्तों से, दूर-दूर के गाँवों से ग्राम-पादड़ियों अथवा छोटे-छोटे सहकारी ओहदेदारों के लड़के शहरों में, जहाँ विद्या-मन्दिर-स्कूल-स्थापित थे, एकत्र होने लगे। बहुधा उनके पास जब वे शहरों में पहुँचते थे एक छदाम भी न रहता था और उन्हें खाने-पीने तक को मुहताज होना पड़ता था, पर अपनी उद्देश्य-प्राप्ति के लिए—'मंजिले मकसूद' तक पहुँचने के लिए वे इन्हें सहने को सहर्ष तैयार थे। "कार्यं साधयामि शरीरं पातयामि वा" के वे पक्के अनुयायी थे। वे समझते थे कि सारी कठिनाइयों को सह कर जब हम शिक्षा प्राप्त कर लेंगे तो किसी न किसी पेशे में घुस कर अपनी रोटी कमा ही लेंगे और अपने संचित ज्ञान से देश का उपकार करेंगे। यही प्रेरणा थी जिसने उन्हें इतने कष्ट सहने की अपार शक्ति प्रदान की थी।

पर ज्ञानोपार्जन की यह शुभाभिलाषा वहाँ के युवक समुदाय तक ही परिमित न थी। रूस की युवतियों तक उसकी पहुँच हो गयी। ज्ञान-पिपासा से वे भी आकुल हो गयीं और उन्होंने भी यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि येनकेनप्रकारेण शिक्षा-लाभ करके हम भी देश के उत्थान में हाथ बटावेंगी। स्त्री समाज की दशा उन दिनों वहाँ वैसी ही थी जैसी भारतवर्ष की, कुछ समय पहले।

[१] सामाजिक बन्धनों और रूढ़ियों ने उन्हें इस प्रकार जकड़ रखा था कि वे

---

१. रूस के प्रसिद्ध उपन्यासकार टुर्गनिभ ने अपने The Virgin soil नामक ग्रन्थ में इसका तथा निहिलिस्ट युवक-युवतियों का बड़ा ही सुन्दर और सच्चा वर्णन किया है।

२. उनके रग-रग से 'ॐ तमसो मा ज्योतिर्गमय' की पुकार उठने लगी।

१. पर भारतवर्ष में जहां "ढोल, गँवार शूद्र, पशु, नारी; ये सब ताड़न के अधिकारी" कहा गया है वहां "यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता"—जैसा सुन्दर

सिवा घरेलू कामों के किसी भी दूसरे काम में भाग न ले सकती थीं। पढ़ने-लिखने से उन्हें कोई सरोकार न था। घर द्वार छोड़कर बाहर निकलना-सैर, सपाटे के लिये जाना तो उनके लिए विषवत् वर्जित था। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में पड़ी हुई उन नवयुवतियों के लिए यह आकांक्षा करना कि वे सुदूर प्रान्त में जाकर शिक्षा प्राप्त करें और, तत्पश्चात्, देश के उत्थान में हाथ बटावें---राजनीति में भाग लें--कितने साहस और दृढ़ता का काम था, यह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। पर रूस में 'नये युग' का प्रारम्भ हो चुका था, और समाज के सारे बन्धनों को तोड़ कर माँ-बाप की नाराजी की कुछ भी परवा न करके, वहाँ की नवयुवतियों ने अपने ज्ञानपिपासु भाइयों का साथ दिया, उनके संग ज्ञान की खोज में निकल चलीं। अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी उन्होंने स्वतन्त्रता का आवाहन किया। और उनके इस कार्य में सहायता पहुँचाने वाला उन्हें पूर्ण रूप से प्रोत्साहित करने वाला-संसार रूपी बीहड़ वन का पथप्रदर्शक--उनका भाई---रूस का नवयुवक समुदाय---था।

सामाजिक नियमों तथा माँ-बाप की आज्ञाओं का उल्लंघन करके स्वतन्त्रता का आह्वान करने वालीं उन स्त्रियों का उद्देश्य पवित्र था। वह आजकल की पश्चिमी औरतों की भाँति स्वतन्त्र होकर आमोद-प्रमोद में, सांसारिक विषय-वासनाओं में, पड़ना नहीं चाहती थीं, वरना उनका एकमात्र उद्देश्य अपने पाँवों खड़ा होना-अपनी

वचन भी पाया जाता है। पर प्राचीन रूस में यह बात न थी। वहाँ स्त्रियों पर पुरुषों का ताड़नाधिकार सर्वमान्य समझा जाता था। परिवार की युवती पुत्र-वधुओं पर श्वसुर महाशय के डंडों का प्रहार बिना किसी रुकावट के हुआ करता था। रूस के ग्राम-गीतों में श्वसुर के डन्डों का उल्लेख आता है। रूस की एक कहावत में कहा गया है,कि "यदि तुम अपनी स्त्री को नहीं मार सकते तो फिर किसे मारोगे ?" इससे रूसनिवासियों की तत्कालीन मनोवृत्ति का खासा परिचय मिलता है। १७वीं शताब्दी तक में विवाह के समय पिता अपनी पुत्री को उसके पति के हाथ सौंपते हुए एक छड़ी भी देता था और उससे अनुरोध करता था, कि इसे जहाँ तक हो सके शीघ्र व्यवहार में लाना तथा अपनी पत्नी को भविष्य में बगैर किसी हिचकिचाहट के पीटा करना ! पति जब पहली बार अपनी पत्नी से मिलता था तो उसके कंधों पर दो-एक डंडे मार कर कहता था; "तू अपने पिता की इच्छाओं की भविष्य में परवा न कर मेरे आदेशानुसार चलना।"

जिस देश में ऐसे रस्म-रिवाज प्रचलित हों और जहाँ की स्त्रियों पर पुरुषों का अत्याचार इतना बढ़ा चढ़ा हो वहाँ स्त्रियों की आजादी का सवाल उठाना भला कब सह्य हो सकता था ?

रोटी आप ही कमाना-तथा देश की सेवा था। देश के उत्थान के लिये जो पुरुष जार-शाही के खिलाफ लड़ाइयां लड़ रहे थे वे उनकी मदद करना तथा देश और समाज की सेवा में अपना समुचित स्थान ग्रहण करना चाहती थीं। पर पुरानी लकीर के फकीर भला इसे कब स्वीकार कर सकते थे ? उन्होंने खुले आम इसका विरोध करना शुरू किया। परिणाम यह हुआ कि उन स्त्रियों को सर्वप्रथम अपने ही घरों में अपने माँ-बाप के खिलाफ बगावत करनी पड़ी। पर अधिकतर वे खुलेआम बगावत न करके माँ-बाप की आँखों में धूल झोंकना ज्यादा पसन्द करती थीं, क्योंकि वे सहसा उनके हृदय में चोट पहुँचाना नहीं चाहती थीं। माँ-बाप की आँखों में धूल झोंकने का सबसे सरल उपाय था विवाह का ढोंग रचना। किसी निहिलिस्ट युवक के साथ वह गुप्त मन्त्रणा करके यह ठीक कर लेती थी कि वह उनके पिता-माता से आकर उनके साथ विवाह का प्रस्ताव करे और जब वे विवाह के लिये राजी हो जाती थीं तो पूरे रस्म रिवाज के साथ उनका परिणय-संस्कार होता था और वह अपने पति के साथ ससुराल के लिये बिदा होती थ, पर गाँव से बाहर होते ही वह विवाह रद्द हो जाता था और वे अपने-अपने काम में लग जाते थे, एक से दूसरे का कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता था। पर कभी-कभी ऐसा भी हुआ करता था कि इस धोखे-धोखे में ही उन दोनों में झूठे पति-पत्नी में—प्रेम के भाव जाग्रत हो जाते थे, एक दूसरे को चाहने लगते थे, और वे सम्बन्ध-विच्छेद न करके सच्चे पति-पत्नी के रूप में एक साथ रहने लगते थे। पर एक साथ रह कर भी वे सांसारिक भोग-विलास में लिप्त न हो जाते थे बल्कि अपने उद्देश्य-साधन में तब भी संलग्न रहते थे।

ऐसे ही एक निहिलिस्ट विवाह तथा निहिलिस्ट दम्पति का अगले परिच्छेद में किस्सा बयान किया जाता है।

७

आहुतियाँ

१

सन् १८७१ की बात है। रूस के एक सुदूर ग्राम में फादर गैसिली नाम के एक पादरी रहा करते थे। उनके परिवार में उनकी पत्नी के सिवा उनके कई पुत्र और पुत्रियाँ थीं। उनकी ज्येष्ठा कन्या का नाम सोनिया था जो इस कहानी की नायिका है। उसकी उम्र १६ वर्ष की थी और वह देखने में अत्यन्त सुन्दरी थी। मिश्राटका की धार्मिक पाठशाला में शिक्षा ग्रहण करके वह सेंट पिटर्सबर्ग जाकर डाक्टरी पढ़ना चाहती थी। मिश्राटका में उसका श्रीमती कुवशिन्सकाया नामक एक निहिलिस्ट महिला के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया था और उसके संसर्ग से उसके हृदय में स्वतन्त्रता के भाव जाग्रत हो उठे थे। वह उच्च शिक्षा प्राप्त करके देश तथा समाज की, विशेषकर रूस के गरीब किसानों की, जिनकी दुरवस्था का हाल उसने अपनी अध्यापिका श्रीमती कुवशिन्सकाया से सुना था, सेवा करना चाहती थी। पर उसके माँ-बाप उसके इस विचार से सहमत न थे। स्त्रियों को भला उच्च शिक्षा से क्या प्रयोजन? वे सोनिया का स्थानीय एक सज्जन से, जो वयस में सोनिया से कहीं ज्यादा थे, पर धनी थे, विवाह कर देना चाहते थे। किन्तु सोनिया को यह मंजूर न था। उसके हृदय में तो कुछ दूसरी ही लगन लग रही थी। अतएव एक दिन जब फादर गैसिली अपनी पत्नी के साथ एक दूसरे गाँव को गये हुए थे, वह अपनी छोटी बहन ल्युबा से राय-मशविरा करके, एक किराये की गाड़ी पर सवार होकर भाग निकली। उसके कुछ मित्रों ने जो उच्चादर्श के समर्थक थे, उसके राह खर्च के लिए कुछ रुपये-पैसे भी दे दिये।

२

मिश्राटका नदी के तट पर वह उस समय पहुँची जब सूर्य भगवान् अस्ताचल को जा चुके थे और चारों ओर निविड़ अन्धकार फैल चुका था। सोनिया ने मल्लाहों से बहुत प्रार्थना की कि वे उसको उसी समय पार कर दें पर उसके लाख कहने पर भी वे इसके लिए राजी न हुए। अन्त में निरुपाय होकर उसने वहीं एक मल्लाह की झोंपड़ी में रात बिताने की सोची और झोंपड़ी के एक कोने में अपने सामान को रख कर लेट रही। मल्लाह तथा उसके परिवार के और लोग कुछ ही देर में सो गये,

खुर्राटे लेने लगे, पर सोनिया की आँखों में नींद कहाँ ! वहीं पड़ी-पड़ी घंटों अपने भविष्य के सम्बन्ध में सोचती-विचारती रही। पर अन्त में वह भी नींद की गोद जा पड़ी।

आधी रात के समय दरवाजे पर किसी के खटखटाने की आवाज सुन पड़ी। मल्लाह ने उठकर, सशंकित, दरवाजे को खोला। द्वार के खुलते ही फादर भेसिलो झोंपड़ी के अन्दर आ घुसे। चारों ओर नजर दौड़ाकर उन्होंने सोनिया को तुरन्त ही पहचान लिया और उसके पास जाकर उसे जगाया और घर लौट चलने को कहा। सोनिया उन्हें देखते ही नैराश्य-मग्न हो गई, उसके मंसूबों पर पानी पड़ गया। उसने रो-रोकर पिता से प्रार्थना की कि वह उसे छोड़ दें, जाने दें, पर फादर भेसिलो उसकी अनुनय-विनय से, आँसुओं से जरा भी विचलित न हुए। अन्त में निरुपाय होकर उसे घर लौट आना पड़ा।

घर लौटकर उसका जीवन और भी दुःखमय हो गया। माँ-बाप की उसके ऊपर कड़ी निगाह रहने लगी। वह एक पल के लिये भी अकेली नहीं छोड़ी जाती थी। समय-समय पर उसके ऊपर व्यंग्य-बाण भी छोड़े जाते थे, विशेषकर जब बाहर का कोई आदमी आया होता था। सोनिया के लिये यह घरेलू अत्याचार असह्य-सा हो उठा।

एक दिन फादर भेसिलो सपत्नीक भिआटका गये और अपने साथ सोनिया को भी लेते गये, क्योंकि उसे घर पर अकेला छोड़ना खतरनाक था। सोनिया को उसके भाई के डेरे पर, जो वहीं के एक स्कूल में शिक्षा प्राप्त कर रहा था, रखकर वे अपने एक मित्र से मिलने गये। इतने में अवसर पाकर सोनिया श्रीमती कुवशिन्सकाया से मिलने चली गई। उनसे उसने अपना सारा किस्सा बयान किया। श्रीमती कुवशिन्सकाया ने उसकी सारी बातें सुनकर वचन दिया कि वह अपने निहिलिस्ट मित्रों में से उसके लिए एक झूठा दुलहा खोज निकालेंगी और उसके साथ उसका झूठा विवाह कराकर उसके माँ-बाप के अत्याचार से परित्राण कर देंगी। उनकी इन बातों को सुनकर उसके आनन्द का ठिकाना न रहा ! वह हरिणी की भाँति उछालें मारती हुई घर लौटी। उस दिन से उसके रहन-सहन में घोर परिवर्तन हो गया। घर का काम-काज बड़े चाव से देखने लगी। सदैव प्रफुल्लित रहती। जिस पुरुष के साथ उसके माँ-बाप उसका विवाह करना चाहते थे उसके साथ व्यवहार में भी अत्यन्त परिवर्तन हुआ। अब वह उससे खूब प्रसन्नता के साथ मिलती मानो उसे चाहने लगी हो ! फादर भेसिलो और उनकी पत्नी सोनिया के इस व्यवहार से बड़े सन्तुष्ट हुए। उन्हें आशा हो गई कि अब वह इसके साथ विवाह करना मंजूर कर लेगी और भविष्य में और घर-द्वार सँभालेगी, गृहस्थ की तरह रहेगी, अपने निहिलिस्ट ख्यालातों को तिला-

ञ्जलि दे देगी। रूस में उन दिनों निहिलिस्टों की संख्या धड़ाधड़ बढ़ रही थी। जहाँ-तहाँ क्रान्तिकारी-निहिलिस्ट सोसाइटियों की स्थापना होरही थी। अनियंत्रित शासन-प्रणाली का नाश करना उन सबका उद्देश्य था पर किन उपायों से इस उद्देश्य की पूर्ति हो और फिर इस शासन के विनष्ट हो जाने पर कौन सी शासन प्रणाली कायम की जाय, इसमें मतभेद था।

सेंट पिटर्सबर्ग आदि शहरों में जहाँ विश्वविद्यालयों में पढ़ने के लिये छात्र एकत्र हुआ करते थे, कुछ युवक-युवतियों ने मिलकर 'कम्यूनों' की सृष्टि की थी जिसमें शामिल होने वाले युवक और युवतियाँ साम्यवाद के सिद्धान्तों का अक्षरशः पालन करने की चेष्टा करती थीं। ऐसे ही एक 'कम्यून' का एक युवक मेम्बर, एक दिन सन्ध्या समय, बैठा हुआ दो युवतियों को जो उसी 'कम्यून' की सदस्य थीं, एक पुस्तक पढ़कर सुना रहा था जब कि उस 'कम्यून' का एक दूसरा मेम्बर, आकर उपस्थित हुआ। उसने आते ही कहा कि मुझे श्रीमती कुवशिन्सकाया का एक खत अभी मिला है जिसमें सोनिया नामक एक लड़की के झूठे विवाह के लिये एक वर की याचना की गयी है। उसने सोनिया के सम्बन्ध में लिखी हुई सारी बातें चिट्ठी से पढ़ कर सुना दीं। सबों ने उस खत की बातें बड़े गौर से सुनीं और सुन कर आपस में परामर्श करने लगे कि सोनिया का उद्धार किस प्रकार किया जाय। यद्यपि उनके 'कम्यून' का यह उद्देश्य अवश्य था कि अपने राजनैतिक सिद्धान्तों के लिए देश-निर्वासित अथवा कैद में पड़े हुए, या गृह-अत्याचार से निपीड़ित, व्यक्तियों का उद्धार किया जाय, पर सोनिया के सम्बन्ध में कुछ करना उस समय बड़ा कठिन जान पड़ा, बहुत काल तक इस सम्बन्ध में तर्क-वितर्क होता रहा। अन्त में सार्जियस सिनगब नामक एक युवक ने, जो एक धनाढ्य जमींदार का लड़का था, उठ कर कहा कि मैं इस काम को करूँगा और वह सोनिया का कृत्रिम दुलहा बनने को तैयार हो गया। पर इस घटना के तुरन्त ही बाद वह मजदूरों के बीच प्रचार कार्य में लग गया और अपनी इस प्रतिज्ञा को भूल-सा गया। उधर १८७१ के मार्च महीने में श्रीमती कुवशिन्सकाया स्वयं सेंट पिटर्सबर्ग आ पहुँचीं और मेडीकल कालेज में भर्ती हुईं। उनके याद दिलाने पर सेंट पिटर्सबर्ग में एक "वार कौन्सिल" बुलाई गई जिसमें सोनिया के उद्धारार्थ निम्नलिखित कार्य-क्रम निश्चित हुआ—

सिनगब, खूब ठाठ-बाट के साथ, फादर भैसिली के घर जाकर अपने को सोनिया का प्रेमी बतलावे और अपना परिचय इस प्रकार दे : "मैं एक धनाढ्य जमींदार का लड़का हूँ, मेरा भविष्य मेरी योग्यता और वंश-मर्यादा के कारण अत्यन्त उज्ज्वल है। भिआटका में मेरा परिचय सोनिया के साथ उस समय तक हुआ था जब कि वह वहाँ की धार्मिक पाठशाला में पढ़ा करती थी। वहीं हम दोनों प्रेम-बन्धन में

बैठे थे और वहीं मैंने सोनिया से विवाह का प्रस्ताव किया था जो उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया था।" सिनगव के इस प्रकार आत्मपरिचय देते समय सोनिया वहाँ अकस्मात् आ पहुँचे और अपने प्रेमी को देखते ही उसके हृदय से जाकर लिपट जाय और "लजियस! आखिर तुम यहाँ आ गये" का उच्चारण करे। फिर वे दोनों एक दूसरे का मुग्ध होकर, आलिंगन करें। पर यह क्रिया उस दशा में की जाय जब बाहर का कोई वहाँ मौजूद रहे, ताकि सोनिया के भावी पति के आने की खबर शहर भर में फैल जाय और फादर भैसिली को अस्वीकार करने का मौका न मिले। अगर वहाँ कोई दूसरा उपस्थित न हो तो सिनगव वहाँ जा कर केवल सोनिया के साथ पाणिग्रहण का प्रस्ताव करे। फिर आगे जैसी परिस्थिति हो वैसा वह अपनी बुद्धि के अनुसार काम करे।"

पर इस कार्य-सञ्चालन के लिये काफी धन की आवश्यकता थी। एक तो यात्रा दूर की थी, फिर सिनगव को अपने आप को धनी दिखाने के लिए कुछ कीमती चीजों का ले जाना भी आवश्यक था और सोनिया के लिए कुछ मूल्यवान उपहार-योग्य वस्तुओं की भी आवश्यकता थी। पर 'कम्यून' के पास इतना कहाँ कि ये चीजें खरीदी जायं! इस सम्बन्ध में सिनगव ने स्वयं इस प्रकार लिखा है—

'हमारे दोस्तों में सिवा मेरे भाई के, किसी ने अच्छी कमीजें, नये फैशन के बूट-जूते अथवा कोट और पतलून का व्यवहार नहीं किया। हमें इन सारी चीजों को अपने धनी मित्रों से जो Bourgiois वर्ग के थे, माँगना पड़ा था। हमारे 'कम्यून' की स्त्रियों ने मुझे एक सोने की घड़ी और चैन दी थी जो मैं सोनिया के लिए उपहार-स्वरूप ले जाने वाला था। (विवाह के बाद मुझे इसे लौटाना था। पर षड्यन्त्र के असफल होने की हालत में इनके खो जाने का भी खौफ़ था) अन्त में सारी सामग्रियों के इकट्ठी हो जाने पर कुवशिन्सकाया ने मुझे एक सोनिया की तस्वीर भी दी ताकि मैं उसे देखते ही पहचान जाऊँ। भिआटका नगर का एक प्लान भी मुझे दे दिया गया। यह आवश्यक था, क्योंकि यह कहने पर कि मैं भिआटका में बहुत दिनों तक रह चुका हूँ अगर शहर के भूगोल के सम्बन्ध में बातों ही बातों में कोई गलती कर देता तो बड़ी भद्द होती।"

सोनिया को भी एक पत्र द्वारा इन बातों की सूचना दे दी गई।

जिस गाँव में फादर भैसिली रहा करते थे वह काफी बड़ा था। यात्रियों के ठहरने के लिए एक होटल भी था। सिनगव ने उस ग्राम में प्रवेश कर वहीं डेरा डाला और होटल के मालिक के यह पूछने पर कि वह कहाँ जा रहे हैं, कहा कि मुझे आगे नहीं जाना है, यहीं फादर भैसिली से मुलाकात करके लौटना है। वह इनकी बातों को सुनते ही चिल्ला उठा कि "बस, बस मैं समझ गया, आप सोनिया का पाणिग्रहण

करना चाहते हैं।" बातों ही बातोंमें उसने तथा उसकी पत्नीने सोनिया के कलंक [?] की भी कथा कह डाली। सिनगव गम्भीरतापूर्वक उनकी बातों को सुनता रहा और छः बजे का समय समीप आते देख कर सुन्दर वस्त्रों में अलंकृत हो होटल वाले के साथ फादर मैसिली के घर पहुँचा। कहीं भण्डाफोड़ हो गया तो मेरी क्या दशा होगी ?—यह सोचकर उसका हृदय काँपने लगा। बरामदे में ही फादर मैसिली से मुलाकात हो गई। सिनगव ने अपना पूर्व निर्णीत परिचय दिया। फादर मैसिली, एक सज्जन पुरुष की भाँति, सिनगव के साथ खूब अच्छे ढंग से पेश आये तथा उसे ड्राविंग-रूम में ले जा कर बिठलाया जहाँ पहले से एक और पादड़ी बैठे हुए थे। होटल का मालिक भी वहीं जाकर बैठा। फादर मैसिली के साथ मिलते ही उनके सद्व्यवहार के कारण सिनगव के हृदय से घबराहट जाती रही।

सिनगव के उस कमरे में बैठे हुए अभी दो-चार मिनट भी न हुए होंगे कि बगल वाले कमरे का दरवाजा खुला और सोनिया ने ड्राविंग-रूम में प्रवेश किया। सोनिया के उस कमरे में प्रवेश करते ही सिनगव उठ खड़ा हुआ और सोनिया 'सजि-यस ! आखिर तुम आ गये !' कहती हुई उसके गले से लिपट गई। फिर वे दोनों एक दूसरे के अधर का अधीरतापूर्वक चुम्बन करने लगे। फादर मैसिली तथा उनके मित्र एक दूसरा पादड़ी, जिसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है--इस दृश्य को देख कर दंग रह गये मानो उन पर वज्रपात हो गया हो।

सोनिया सिनगव का हाथ पकड़ कर उसे बगल वाले कमरे में ले गयी जहाँ उसकी माँ बिस्तरे पर गिर कर सिसक-सिसक कर रो रही थी। सिनगव ने उसके हाथों को चूम कर उससे चुप रहने तथा उसकी बातों को सुनने की प्रार्थना की पर वह इतनी ज्यादा बेसुध हो रही थी कि सिनगव की बातों का उस पर कुछ भी असर न हुआ। वह बार-बार यही कहती रही, कि 'तुम कौन हो ? तुम कौन हो ?' इतने में फादर मैसिली भी उस कमरे में आ पहुँचे और करुणापूर्ण शब्दों में बोले, कि 'हा भगवन् ! मैं यह क्या देख रहा हूँ ?' सिनगव ने कहा, कि आप दुःखी न हों, मैं अभी इन सारी बातों का स्पष्टीकरण कर देता हूँ जिससे आप समझ सकेंगे कि आपने अभी जो कुछ देखा है वह भय का कारण नहीं।' फिर वे दोनों ड्राविंग-रूम में बैठ गये और सिनगव ने अपनी सारी रामकहानी—जो पहले लिखी जा चुकी है—उन्हें सुना डाली। फादर मैसिली ने उन सारी बातों को सुन कर सिनगव को आश्चर्य और भय में डालते हुए कहा:—"हां, यह सब ठीक है, अगर जो कुछ आपने कहा है वह सत्य हो ! पर बात यह है कि मुझे यह शंका हो रही है कि आप कृत्रिम विवाह का अभिनय कर रहे हैं।"

'कृत्रिम विवाह' का नाम सुनते ही सिनगव के कान खड़े हो गये, घबराहट

सी आने लगी, पर बलपूर्वक अपने भाव को छिपा कर उसने उत्तर दिया:--"पिता भैसिली ! आप ऐसा कह कर मेरा घोर अपमान कर रहे हैं।"

दरअसल बात यह थी कि सोनिया के नाम लिखा हुआ एक खत उसके पिता के हाथ पड़ गया था जिसमें कृत्रिम विवाह की चर्चा थी पर इस घटना को बीते इतने दिन हो गये थे कि फादर भैसिली को इस सम्बन्ध में कुछ ठीक याद न था। सिनगव ने अपनी चाल-ढाल, बातचीत से फादर भैसिली और उनकी पत्नी की कुछ ही देर में सहानुभूति प्राप्त कर ली। उन्होंने उससे कई तरह के प्रश्न पूछ-पाछ कर यह निश्चय किया कि अपने एक सम्बन्धी, फादर माइकेल, से परामर्श करके वे अन्तिम निर्णय करेंगे कि सिनगव के साथ सोनिया की सगाई की जाय या नहीं। सिनगव को यह सन्देश सुनाकर फादर भैसिली ने स्नेहपूर्ण वचनों में कहा, कि 'तुम कल सुबह ५ बजे अपने सारे सामान के साथ मेरे घर पर आ जाओ और यहीं ठहरो।' दूसरे दिन तड़के ही फादर भैसिली का आदमी सामान लाने के लिए होटल के दरवाजे पर आ पहुँचा।

३

भैसिली परिवार के साथ दो-एक दिन में ही सिनगव की काफी घनिष्टता हो गई, सब उसे प्यार की दृष्टि से देखने लगे। सोनिया की चार छोटी बहनें और उसका छोटा भाई तो उससे खूब ही हिल-मिल गये। यह भी उनका खूब मनोरंजन करता जिससे सोनिया की माँ अत्यन्त प्रसन्न होती।

चौथे दिन फादर माइकेल और उनकी सुन्दरी भार्या एलिजाबेथ का वहाँ आगमन हुआ। कई दिनों तक फादर भैसिली और उनकी पत्नी के साथ उन दोनों की मंत्रणा होती रही। अन्त में तीसरे दिन सोनिया और सिनगव की ड्राविंग-रूम में बुलाहट हुई जहां वे सभी एकत्र थे, और फादर माइकेल ने भावी पति-पत्नी को आशीर्वाद देकर यह घोषित किया कि सिनगव के साथ सोनिया का विवाह होगा। "उस दिन से", सिनगव ने लिखा है कि "हम दोनों को एक दूसरे का चुम्बन करने का कानूनी अधिकार मिल गया।"

शादी की तैयारियां होने लगीं। इस सम्बन्ध में फादर भैसिली की इच्छा के अनुसार एक बार भिआटका की यात्रा करने का भी निश्चय हुआ, क्योंकि वह भिआटका के विशप (बड़े पादड़ी) से अपने भावी दामाद का परिचय कराना तथा उनसे आशीर्वाद लेना चाहते थे। फादर भैसिली का दूसरा आग्रह यह था कि सिनगव के पिता का भी तार द्वारा आशार्वाद मँगाया जाय। सिनगव के लिये ये दोनों ही प्रस्ताव उलझन में डालनेवाले थे। भिआटका में उसका बड़ा भाई कुछ वर्ष पहले राजनीतिक निर्वासित की हैसियत से निवास कर चुका था और वहां के गवर्नर की पुत्री के साथ शादी की थी। फादर भैसिली का उस गवर्नर के साथ परिचय था। कहीं बातों ही बातों में वह

अपने भावी दामाद का नाम ले लें तो ?

सिनगव के पिता का स्वस्ति-वचन मंगाने वाला प्रस्ताव भी उतना ही बाधक था। सिनगव ने कहा था कि मेरे पिता सेन्ट पिटर्सबर्ग में आये हुए हैं और वे वहाँ अपनी पुत्र-वधू के आने की प्रतीक्षा में ठहरे हुए हैं। अब तार कहाँ दें और कैसे दें ? बहुत सोच-विचार के बाद सिनगव ने तय किया कि सेंट पिटर्सबर्ग को अपने भाई के पते पर पिता के नाम तार दे दें। शायद वह मतलब समझ जायँ और पिता जी की ओर से जवाब दे दें। ऐसा हुआ भी, और सेंट पिटर्सबर्ग से सिनगव के पिता का तार आया कि "मैं तुम्हें अपना आशीर्वाद भेजता हूँ।"

फादर मैसिली, उनकी पत्नी सोनिया और सिनगव ने मिआटका के लिये प्रस्थान किया। इस यात्रा के सम्बन्ध में सिनगव ने खुद लिखा है:—

"रास्ते में फादर मैसिली की मेरे साथ खूब घनिष्ठता हो गई। उन्होंने अपने पारिवारिक रहस्यों का मुझे सारा पता बतला दिया और दूसरे पादरियों के साथ उनकी कैसी लड़ाई हुई, कौन-कौन उनके विरोधी थे और उनके खिलाफ षड्यन्त्र रचा करते थे इत्यादि सभी बातों की चर्चा की। उनकी पत्नी का व्यवहार मेरे साथ मातृ-वत्, स्नेह से भरा हुआ, रहा। रास्ते भर वह इस बात की चेष्टा में लगी रहीं कि मैं गाड़ी में आराम से रहूँ और मुझे सर्दी न लगे। प्रत्येक विश्राम-स्थल पर वह मुझसे कुछ खा-पी लेने के लिये अनुरोध करती रहीं। उनके आचरण से यह साफ-साफ परिलक्षित था कि मेरा उनके हृदय पर पूरा अधिकार हो गया था। मैं भी उन्हें सच्चे दिल से चाहने लगा था। मेरे हृदय में रह-रहकर यह चोट लगती थी कि दरअसल मुझसे उनका कोई सम्बन्ध न था, बल्कि मैं उनका एक क्रूर शत्रु मात्र था।"

मिआटका पहुँचकर वे सभी बिशप के पास गये। उन्होंने भावी वर और वधू को आशीर्वाद तथा उपहार दिये। शहर में विवाहोत्सव के लिये कुछ सामान खरीदे गये। तदुपरांत वे घर को लौटे।

घर लौटकर शादी की खूब तैयारियां की गईं। सिनगव ने अपने साथ लाये हुए उपहारों को पेश किया जिससे ससुराल वाले खूब प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए। उन्हें देख कर यह किसी को सन्देह न रहा कि सिनगव के ऊपर लक्ष्मी की खास कृपा है। दूर-दूर के लोगों के पास निमंत्रण भेजे गये। घर की स्त्रियाँ सोनिया के लिये कपड़े सीने तथा गाने-बजाने में व्यस्थ रहने लगीं। देखते-देखते विवाह की तिथि भी आ पहुँची और एक-एक कर निमन्त्रित स्त्री-पुरुष भी इकट्ठे हो गये। धार्मिक गानों तथा रस्म-रिवाजों के बीच सोनिया के साथ सिनगव का पाणिग्रहण-संस्कार सानन्द सम्पन्न हुआ। कहते हैं, विवाह के अवसर पर वह सरकारी अफसर भी मौजूद था जिसके साथ

फादर जैसिली सोनिया को ब्याहना चाहते थे। वह इस दृश्य को देखकर अपने आँसुओं को न रोक सका, और रोने लगा।

विदाई के समय सोनिया की माँ सिसक-सिसककर रोने लगी और रोते ही रोते अपनी पुत्री तथा दामाद को विदा किया। ग्राम से बाहर निकलकर सिनगव ने सोनिया से कहा—"अब मैं आपको आपकी स्वतन्त्रता पर बधाई देता हूँ।" वह कुछ न बोली। केवल हाथ मिलाया।

"आप मुझ से सन्तुष्ट हैं न ?" सिनगव ने पूछा।

"हाँ, हाँ, मैं आपकी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।"—सोनिया ने जवाब दिया।

१८७२ के नवम्बर महीने के अन्त में वे सेंट पिटर्सबर्ग पहुँचे। सिनगव ने वहाँ जाते ही सोनिया को स्त्रियों की एक "कम्यून" में भर्ती करा दिया। वह मैडम कुवशिन्सकाया की देख-रेख में रहने लगी। सिनगव की इस अद्भुत सफलता पर बधाइयाँ मिलने लगीं और लोग उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

यद्यपि सोनिया और सिनगव के बीच पति-पत्नी का सम्बन्ध न रहा, सिनगव का हृदय जब-तब अस्थिर हो उठता था पर सोनिया से इस सम्बन्ध में कुछ कहना पाप के समान था।

४

वे दोनों अधिक दिन तक सेंट पिटर्सबर्ग में नहीं ठहर सके। निहिलिस्ट आन्दोलन ने एक नया रूप धारण किया और नये वर्ष के लिये एक दूसरा ही कार्यक्रम निश्चित हुआ। वह था ग्राम-जनता के बीच उसके राजनीतिक विचारों का प्रचार करना। निहिलिस्ट स्त्री-पुरुष गाँवों में जाकर बड़े उत्साह और दृढ़ता के साथ अध्यापक, क्लर्क, लुहार, बढ़ई, नर्स आदि के कामों में लग गये और अपने इस पेशे की ओट में निहिलिस्ट विचारों का प्रचार करने लगे, साथ ही ग्राम्य-जनता के बीच, यथासम्भव लिखने-पढ़ने का भी विस्तार करने लगे। सोनिया और सिनगव ने शुरू में ही इस कार्यक्रम को अङ्गीकार कर के एक ग्राम-पाठशाला में नौकरी कर ली।

इस स्कूल का संस्थापक स्थानीय एक मार्टिनफ नामक व्यक्ति था जिसने बूट बनाने के काम में भारी सम्पत्ति हासिल की थी और सेंट पिटर्सबर्ग में एक दूकान करके वहीं रहा करता था। ग्रैण्ड ड्यूक निकोलस से उसकी काफी घनिष्ठता हो गई थी। ड्यूक निकोलस उससे यदा-कदा ऋण लिया करते थे और इस घनिष्ठता के कारण उसकी इस ग्राम में बड़ी धाक (रोब-दाब) थी। ज्यादातर वह सेंट पिटर्सबर्ग में ही रहा करता था पर कभी-कभी अपने ग्राम में भी आता था और आने पर गाँव भर के लोगों को दावतें देता था। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, उक्त स्कूल का संस्थापक भी वही था और इस स्कूल के अध्यापक-अध्यापिकाओं को अन्य स्कूलों की अपेक्षा कहीं ज्यादा

वेतन मिलता था, उनके ठहरने के लिये वासस्थान भी बने हुए थे। वह हल्के के सरकारी अधिकारियों के साथ भी हेल-मेल रखता था और समय-समय पर उनकी पाकिट गर्म कर दिया करता था। इसका फल यह था कि इस गाँव में वह जो चाहता करता था, उसके खिलाफ कोई अंगुली उठाने वाला न था। गाँव की सुन्दर स्त्रियों तथा लड़कियों के साथ वह मनमाना व्यवहार करता।

थोड़े ही दिनों में सिनगव और सोनिया की उस गाँव में ख्याति हो गयी तथा लोग उनके पाण्डित्य की प्रशंसा करने तथा उन्हें आदर की दृष्टि से देखने लगे। कुछ ही दिनों में उस गाँव के लड़के और लड़कियां धड़ाके के साथ पढ़ने-लिखने लगीं। गाँव वाले यह देखकर आश्चर्य-चकित हो गये और सिनगव से आकर अनुरोध किया कि आप हमें भी लिखना-पढ़ना सिखला देवें। सिनगव के तो यह प्रस्ताव मन लायक ही था। वह उन्हें पढ़ाने लगा, सोनिया भी साथ देने लगी, और पढ़ाने के मिस से वे दोनों उनके बीच अपने क्रान्तिकारी भावों का प्रचार करने लगे, उन्हें देश की दुरवस्था का हाल सुनाने लगे।

सोनिया और सिनगव साथ रहते हुए भी एक दूसरे से अलग रहते थे। पर एक दिन सन्ध्या समय जब कि वे दोनों बैठे हुए धार्मिक तथा सामाजिक प्रश्नों पर वाद-विवाद कर रहे थे, सोनिया अपने प्रेमभाव को छिपाने में असमर्थ होकर बोल उठी, कि मेरा तुमसे प्रेम हो गया है और मुझ में अब इतनी शक्ति नहीं कि मैं इस भाव को छिपा कर रख सकूं। सिनगव ने लिखा है कि "मैं उसकी इस बात को सुन कर आनन्द से पागल हो उठा।" दरअसल वह उसे जी-जान से चाहता था, प्रेम में पागल हो रहा था, पर सोनिया से अपने प्रेम के सम्बन्ध में कुछ कहना पाप के समान समझता था। आज उसे बेमाँगी मुराद मिल गई, उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। उस दिन से वे दोनों बड़े आनन्द के साथ समय बिताने लगे और दूने उत्साह के साथ अपनी ड्यूटी अदा करने लगे।

पर इसके बाद ही सिगनव का उसके संरक्षक मार्टिनफ के साथ तकरार हो गया जिससे उसके उस सुखमय शांत जीवनयापन में बाधा आ उपस्थित हुई पर भविष्य में आने वाली विपत्तियों के सामने यह कुछ भी न थी।

मार्टिनफ सेंट पिटर्सबर्ग से घर आया हुआ था और तरह-तरह के पाप-कृत्यों में तल्लीन था। उस दिन एक बजे रात को उसने गाँव भर के युवतियों तथा पुरुषों को जगवाया और उन्हें आज्ञा दी कि पुरुष उसी वक्त मछलियां मारने जांय और युवतियां उसके मनोरंजन के लिए नाचें-गावें। दूसरे दिन वह शराब के नशे में चूर एक वेश्या के साथ स्कूल के उस कमरे में दाखिल हुआ जिसमें सिनगव बैठा हुआ लड़कों को पढ़ा रहा था। सिनगव ने उसे उस दशा में देखते ही लड़कों को छुट्टी दे दी और

उन्हें घर भेज दिया। सोनिया ने भी, जो बगल के कमरे में लड़कियों को पढ़ा रही थी, अपनी छात्राओं को छुट्टी देकर उन्हें भी घर रवाना कर दिया। मार्टिनफ ने इसे अपना अपमान समझा और गुस्से में आकर सिनगब के प्रति बुरे शब्दों का प्रयोग कर डाला। अतएव दूसरे दिन वे दोनों स्कूल के क्वार्टर का परित्याग करके एक किसान की झोपड़ी में जा बसे, वहीं रहने लगे। इधर मार्टिनफ उन पर झूठा मुकदमा करके उन्हें फंसाने का उद्योग करने लगा। पुलिस के एक अफसर ने सिनगब से जाकर कहा कि यह तो आप जानते ही हैं कि कमजोर को बलवान के सामने बराबर झुकना पड़ता है, सो आपके लिए यह बेहतर होगा कि आप मार्टिनफ से माफी माँगलें और यह झगड़ा तै हो जाय। सिनगब ने उत्तर दिया कि मैंने तो कोई कसूर ही नहीं किया, माफी क्योंकर मांगूं ? मैं समझता हूँ मार्टिनफ को मेरी क्षमा-याचना करनी उचित है।

अन्ततः मुकदमा चलाने की सारी तैयारियां हो गयीं और पुलिस के अफसर ने आकर सिनगब का बयान लिया और मार्टिनफ का बयान लेने लगा। एक कमरे में वे दोनों आमने-सामने बैठे थे। दर्शकों से सारा कमरा ठसाठस भरा था। इतने में ही मार्टिनफ बोल उठा—खैर, बहुत होचुका, सिनगब ! अब हम लोग मिल जावँ–" और यह कहते हुए उसने सिगनब की ओर हाथ बढ़ाया।

"अच्छी बात है, एवमस्तु ! पर आप यह जानते हैं कि इस झगड़े का सूत्रपात मैंने नहीं किया।" यह कहते हुए सिनगब ने उससे हाथ मिला लिया, सुलह हो गई।

पर इसके बाद सिनगब और सोनिया ने वहां और ठहरना उचित न समझा और वे सेंट पिटर्सबर्ग को लौट आये।

५

सेंट पिटर्सबर्ग लौट कर उन्होंने मजदूरों के बीच निहिलिस्ट विचारों का प्रचार करना शुरू किया। सन् १८७३ ई० के नवम्बर महीने में सिनगब गिरफ्तार कर लिया गया। तीन हफ्ते हवालात में रखे जाने के बाद वह पीटर और पाल के फोरटेस (दुर्ग, एक बड़ा जेल खाना) में भेज दिया गया और वहां वह दो वर्षों तक एकाकी कारागृह (Solitary Confinement) में रखा गया। तदुपरांत उसे फिर दो वर्षों तक हवालात में रहना पड़ा। उसके बाद पुनः उस दुर्ग की खाक छाननी पड़ी। इसी बीच सोनिया भी गिरफ्तार कर ली गई थी पर कुछ दिनों के बाद वह छोड़ दी गई। १८७४ के मार्च महीने में उसे प्रति शुक्रवार को अपने पति से मिलने की आज्ञा मिली और वह हर शुक्रवार को सिनगब से मिलने लगी। सिनगब की जान में जान आई। वह स्वयं लिखता है:—

"मैं शुक्रवार की प्रतीक्षा बड़ी अधीरता के साथ करता था और उससे

(सोनिया से) मिल कर जब अपने एकान्त कमरे को लौटता तो यह सोच कर कि अब पूरे सात दिनों तक उसके वियोग का विष घूँटना पड़ेगा, दारुण हृदय-पीड़ा का अनुभव करता था। शुक्रवार के पहले सुबह—प्रत्यूष काल में—अपने बिस्तरे से उठ खड़ा होता, अपनी प्रियतमा से मिलने को दिल बेचैन-सा हो जाता था। अपने कमरे में ही इधर-उधर घूम कर, तरह-तरह की बातें सोच कर, जेल की घड़ियों का बजना गिन कर दिल बहलाने की—प्रतीक्षा की वेदना मिटाने की चेष्टा करता, पर सारे प्रयत्न निष्फल होते, उसकी सूरत एक पल के लिये भी आँखों से दूर नहीं होती। रह-रह कर दरवाजे की ओर देखता था कि कोई मेरे कमरे की ओर आ रहा है या नहीं। अन्त में जब मिलने की घड़ी आ पहुँचती तो मैं मुलाकाती कमरे में ले जाया जाता था और वहां अपनी प्रियतमा का जी भर आलिंगन और चुम्बन करता था।"

मुलाकात के वक्त जेल का एक आदमी वहां मौजूद रहता जो उनकी बातों को सुना करता था। पर इस पर भी सोनिया उसे सप्ताह भर के महत्वपूर्ण समाचार बतला देती थी। ऐसा करने का सर्वश्रेष्ठ साधन चुंबन था कागज के टुकड़े पर वह खबरें लिख कर करती और चुंबन काल में उसे अपने मुँह से सिनगब के मुँह में डाल देती। उसके ऊपर लीड (laed) लगा रहता था जिससे वह नुकसान नहीं होता। इसी तरह वह सिनगब के मुँह में कोरे कागज तथा पेन्सिल का छोटा टुकड़ा भी डाल देती थी ताकि दूसरे सप्ताह में सिनगब अपने जी की बातें उस पर लिखकर सोनिया के मुँह में डाल दे। कागज लपेट कर गोल बना दिया जाता था ताकि उस पर बहुत सी बातें लिखी जा सकें। इस प्रकार उन दोनों के बीच चिट्ठी-पत्री हुआ करती थी, एक दूसरे की आन्तरिक भावनाओं को जान सकते थे तथा सिनगब को निहिलिस्ट संसार के सम्वाद मिला करते थे। एक दिन एक दूसरा, कैदी ऐसा ही करता हुआ पकड़ा गया और तब से यह इन्तजाम किया गया कि मिलनेवाले तथा कैदी के बीच एक बड़ा सा टेबुल रहे, ताकि वह इस तरह का अधिकारियों की आँखों में धूल झोंकनेवाला कोई काम न कर सके।

पूरे चार वर्ष आठ महीने तक सिनगब जेलखानों में सड़ता हुआ अपने मुकदमे की सुनवाई की प्रतीक्षा करता रहा पर उसके मुकदमे की सुनवाई नहीं हुई। अभी उसकी सजा नहीं हुई थी, वह सिर्फ हवालात में रखा गया था। रूस के तत्कालीन शासन के—जारशाही के न्याय का यही विधान था।

जेल में इसी बीच कई उल्लेखनीय घटनायें हो गईं। जेल के वार्डरों में कुछ ऐसे थे जिन की कैदियों के साथ पूरी सहानुभूति थी। ऐसे ही एक वार्डर ने एक दिन रात में फोरट्रेस के दो कैदियों को—जिनमें एक प्रसिद्ध प्रिंस क्रोपाटकिन भी थे—निकालना चाहा पर हेड वार्डर के ऐन वक्त पर जग जाने के कारण सफल न हो सका।

दूसरे दफे कुछ कैदी निकल कर भागना ही चाहते थे कि उन्हें एक फौज के अफसर ने देख लिया और उन्हें अपनी काल कोठरी को लौट जाना पड़ा। पीछे उस अफसर को यह जानकर बड़ा पश्चाताप हुआ कि वे राजनैतिक कैदी थे और उनमें उसका एक प्यारा मित्र भी था।

पर इन सब घटनाओं में मुख्य घटना थी जेल में दंगा होना। बोगलीबफ (Bogoliuboff) नाम के एक छात्र को जलूस निकालने के दोष में १५ वर्ष तक साइबेरिया में काम करने का दंड मिला था पर वहां भेजे जाने के पहले वह कुछ काल के लिये इसी जेल में रखा गया। इस जेल में उस समय प्रायः ३०० राजनैतिक कैदी थे जो अलग अलग जेल में रखे गये थे पर कभी-कभी बाहर निकल कर अकेले अथवा मुंह बांध कर जेल के आंगन में घुमाये भी जाते थे। यह आंगन (Court yard) जेलकी प्रत्येक कोठरी (Cell) से दृग्गोचर था। एक दिन इसी आँगन में बोगलीबफ़ खड़ा था जब कि पुलिस का एक अफ़सर, ट्रिपफ वहाँ आया। उसके सर पर टोपी देख कर उसकी त्यौरियाँ चढ़ गईं और उसने चिल्ला कर कहा—तुम्हारा यह साहस कि तुम मेरे सामने टोपी पहन कर खड़े हो!—और यह कहते हुए उसने उसके सर से टोपी उतार डाली और दूर फेंक दी! कैदी अपनी अपनी कोठरियों से यह दृश्य देख रहे थे। ट्रिपफ के ऐसा करते ही वे सबके सब 'बदमाश! खूनी! ट्रिपफ! चला जा, चला जा' का शोर मचाने लगे। सारे जेल में कोहराम मच गया। ट्रिपफ ने छः मंजिले जेल की ओर आँखें उठा कर तथा गुस्से से लाल होकर, जेल के गवर्नर से कहा कि, 'इसे बेंत लगाने के लिए अलग रखो' और स्वयं वहाँ से चलता बना। आध घंटे में गवर्नर ने लौट कर अभिमानभरे शब्दों में यह संवाद सुनाया कि बोगलीबफ़ को ३० बेंत लगाये गये हैं।

राजनैतिक कैदियों ने इतना सुनते ही बलवा कर दिया और वे अपनी अपनी कोठरियों के दरवाजे, शीशे, खिड़कियाँ इत्यादि जितनी चीजें प्राप्त थीं, तोड़ने लगे। ट्रिपफ ने अतिरिक्त पुलिस भेज कर जेल गवर्नर की सहायता की और कैदियों पर धड़ाधड़ मार पड़ने लगी और वे खींच खींच कर सजा पाने वाले कमरों में लाये जाने लगे। कौन दोषी है कौन निर्दोष हैं, इसका ध्यान न रखा गया। उस दिन कैदियों को भोजन भी न मिला और जिन्हें चोट आई थी वे अस्पताल नहीं भेजे गये। मुलाकात का दिन होने के कारण कैदियों के मित्रों और संबन्धियों की सड़क पर भीड़ लग गयी पर उस दिन किसी को मिलने की इजाजत न मिली। पर सड़क पर से ही वे शोर-गुल सुनकर समझ गये कि माजरा क्या है। शहर भर में सनसनी फैल गयी और बहुत से लोगों ने कैदियों के पास यह सन्देश भेजा कि आप दंगे का अन्त कर दें, ट्रिपफ के साथ हमलोग शीघ्र ही बदला लेंगे। हुआ भी ऐसा ही। कुछ ही दिनों के

बाद भिरा नाम की एक लड़की ने अर्जी देने के बहाने ट्रिपफ के पास जाकर उस पर गोलियाँ चलायीं जिससे वह सख्त जख्मी हुआ और तब से निहिलिस्ट आन्दोलन के उस आतंकवाद का श्रीगणेश हुआ जिसके सम्बन्ध में संसार बहुत-कुछ सुन चुका है। भिरा की कहानी अगले किसी परिच्छेद में दी जायगी।

६

१८७७ के १८ सितम्बर को दंगे में भाग लेने वाले १९३ कैदियों के, जिनमें सिनगब भी था, मुकदमे की पेशी एक खास इजलास में हुई। पहले तो कुल कैदी एक साथ ही इजलास में लाये गये पर उन पर आरोपित दोष के पढ़े जाने के बाद वे १७ दलों में बाँट दिये गये और प्रत्येक दल के मुकदमे की सुनवाई अलग-अलग शुरू हुई। कैदियों ने इसका घोर विरोध किया क्योंकि एक दल दूसरे दल के मुकदमे की कार्यवाही से अनभिज्ञ रखा जा रहा था। हालाँकि उनके साथ ऐसा करने का कोई कारण न था और न ऐसा करना उचित ही था जब कि सभी एक ही दोष के दोषी बतलाये जा रहे थे। अन्य कोई उपाय न देखकर कैदियों ने आपस में सलाह-मशविरा करके यह निश्चय किया कि इजलास में ही इसका तीव्र प्रतिवाद किया जाय और कहा जाय कि चूँकि कोर्ट ने उनके अधिकार पर कुठाराघात किया है वे अपने ऊपर अदालत का कोई अधिकार स्वीकार नहीं करते। सिनगब को उन लोगों ने अपना नायक निर्वाचित किया। पर अदालत ने उनके प्रतिवाद का कोई ख्याल न किया। फल यह हुआ कि दूसरे दिन से कैदियों ने अदालत में जाना ही अस्वीकार कर दिया। कई दिनों तक पुलिस के सिपाहियों को कैदियों को जबर्दस्ती अपनी गोदी में उठा-उठाकर इजलास में लाना पड़ा। अन्त में दूसरा कोई उपाय न देखकर अदालत ने उनकी अनुपस्थिति में ही उनका मुकदमा देखना शुरू किया। कैदियों में से कुछ लोगों ने आपस की राय से अदालत में उपस्थित होना स्वीकार किया। उनमें प्रसिद्ध क्रान्तिकारी मुइश्किन (Muishkin) भी थे जिन्होंने जजों के सामने एक बड़ा ही जोशीला भाषण दिया और उन्हें खूब खरी-खोटी सुनाई। इनका जीवन-वृत्तान्त अलग दिया जायगा।

अन्त में मुकदमे की सुनवाई पूरे आठ महीनों के बाद समाप्त हुई और सबों को सपरिश्रम देश-निर्वासन की सजा मिली और वे साइबेरिया की खानों में भेज दिये गये। इस लेख के नायक सिनगब को ९ वर्ष के लिए देश-निर्वासन की सजा मिली थी।

साइबेरिया भेजे जाने के इन्तजार में तब तक के लिए सिनगब इत्यादि पीटर और पालके फोरट्रेस (दुर्ग) में ही रखे गये। इसी बीच कुछ ऐसे कैदियों ने, जिनके मुकदमे का अभी फैसला नहीं हुआ था, उनके ऊपर ज्यादा सख्तियाँ होने के कारण उपवास करना शुरू किया। उनके साथ-साथ, समवेदना प्रकट करने के लिए, सिनगब

कारि ने भी अनशन करना आरम्भ किया। तीन दिनों तक उन लोगों ने अन्न-जल का स्पर्श भी नहीं किया। जब यह बात उनके घर वालों को मालूम हुई तो दौड़े हुए जेल के सर्वश्रेष्ठ अफसर मेजेन्टजेफ के पास गये और उनसे अनुरोध किया कि वह कैदियों की माँग को, जो महज़ साधारण थी, पूर्ति करके उन्हें मृत्यु से बचा दें। उनके इस अनुनय-विनय के उत्तर में मेजेन्टजेफ ने कहा कि "वे मर जायँ, मैं तो उनके लिए कफन खरीदने की आज्ञा भी दे चुका हूँ।" शोक-संतप्त पिता, माता, स्त्रियों, बहनों और पुत्रियों का उस निष्ठुर ने कुछ भी ख्याल न किया।

इसके बाद ही कैदियों के पास यह संवाद पहुँचा कि मेजेन्टजेफ की हत्या का इंतजाम हो रहा है और उन्होंने उपवास करना छोड़ दिया। फ़ौज के एक नौजवान अफ़सर ने शीघ्र ही जनरल मेजेन्टजेफ की हत्या कर डाली। सिनगव के वह मित्रों में था और उसने उसे बहुत समझाया कि वह ऐसा न करे पर उसने एक न सुनी और उस नृशंस अफसर का प्राण लेकर ही छोड़ा और खुद भी बच रहा।

७

साइबेरिया में ६ वर्ष की सजा भुगत चुकने के बाद सिगनव की रिहाई हुई पर उसे लौटने की इजाजत न मिली। उसे केवल यूरोपीय रूस लौटने की आज्ञा मिली। वहाँ जाने की अपेक्षा उसने साइबेरिया में ही रहना बेहतर समझा और वहीं सपरिवार बस गया। गवर्नमेंट सेविङ्ग बैंक के कन्ट्रोलर की जगह भी उसे मिल गई पर अभी दुर्भाग्य ने उसका संग न छोड़ा था। 'डूमा' के लिए निर्वाचन होने वाला था। उसके पहले राज-कर्मचारियोंने तोमस्क(Tomsk)शहर से राजनैतिक सन्देहात्मक आदमियों को निकालना शुरू किया। सिनगव भी उसी जाल में जा फँसा। वह बीमार था, अतः डाक्टरों की दवा हो रही थी। इस पर भी अधिकारियों ने जो रूस जैसे देशोंमें अधिकतर हृदयहीन ही हुआ करते हैं, इसका कुछ भी ख्याल न किया और उसे जेलमें रख छोड़ा। चार दिनों के बाद उसे आज्ञा मिली कि वह बिना विलम्ब साइबेरिया की सरहद से बाहर हो जाय।

कई महीनों तक वह साइबेरिया के बाहर सपरिवार इतस्ततः घूमता रहा पर कहीं ठहरने की ठौर नहीं मिली। अन्त में उसने तोमस्क के गवर्नर-जनरल के पास अर्जी भेजी, जिस पर उसने लिखा कि 'मुझे सिनगव के तोमस्क लौटने और अपने पुराने पद पर आरूढ़ होने में कोई बाधा नहीं दीख पड़ती।' तदनुसार वह पुनः तोमस्क (Tomsk) लौट आया पर उसे पुनः सेविङ्ग बैङ्क में कन्ट्रोलर की जगह न मिली।

इसके बाद की सिनगव और सोनिया की जीवन-कथा बड़ी ही हृदय-विदारक है, दुःखों की पराकाष्ठा (Climax) है। उनका पुत्र अनाटोली रूस की ओर से जापान में लड़ने गया और वहीं घायल होकर संग्राम-स्थल में पड़े-पड़े ही मर गया।

उनकी लड़की नैदशा ने, जो केवल १७ वर्ष की थी और खूब सुन्दरी एवं शिक्षिता थी, आत्महत्या कर ली, क्योंकि जीवन के आरम्भकाल से ही दुःखों का अनुभव करते-करते उसकी नसें ढीली पड़ गई थीं। ज्येष्ठ पुत्र सर्जियस ने भी एक दिन सरकारी स्कूल की कमाई विषण्णावस्था (Melancholy) के आक्रमण के समय आत्महत्या करके अपनी मानव-लीला समाप्त कर ली। उन दिनों स्कूल का (Curiculum) अध्ययन-क्रम इतना कठिन था, इतनी ज्यादा चीजें पढ़ाई जाती थीं और छात्रों को इतनी अधिक और कठिन सजायें दी जाती थीं और उनका छात्रों के स्वास्थ्य और मस्तिष्क पर ऐसा बुरा असर होता था कि प्रतिवर्ष आत्महत्या कर लेने वाले छात्रों की संख्या बढ़ती ही जाती थी। सर्जियस तो एक दृष्टान्त मात्र है। और इस शिक्षापद्धति या विधान का कारण यह था कि जार तृतीय अलेक्जेण्डर ने, यह सोचकर कि चूँकि स्कूल और कालिज के लड़कों को पढ़ने के विषय की कमी के कारण काफी छुट्टी रहती है जिससे वे राजनैतिक कामों में भाग लेते हैं, व्यवस्था की थी कि स्कूलों और कालिजों में इतनी ज्यादा चीजें पढ़ाई जायँ कि उन्हें दम मारने की फुर्सत न रहे, राजनैतिक मामलों में भाग लेने की बात तो दर-किनार। सो, स्वार्थवश अलेक्जेण्डर तृतीय ने जो नयी शिक्षा-पद्धति कायम की थी उसी का यह दुष्परिणाम था।

सोनिया और सिनगब का जीवन-वृत्तांत पढ़कर किसकी आँखों में आँसू न आ जायँगे। आशा और उमंग के साथ जिनके जीवन का प्रभात हुआ था उनके ही जीवन की ऐसी नैराश्यपूर्ण सन्ध्या ही नहीं, अपराह्न और मध्याह्न-काल भी हुआ, और इसका एकमात्र उत्तरदायित्व था वहाँ के जारशाही शासन पर जिसने ऐसे सैकड़ों-हजारों व्यक्तियों का जीवन बर्बाद कर डाला था।

८

आलोक स्तम्भ

प्रोफेसर पीटर लेक्सोविक लैभरफ

संसार में 'नेताओं के भी नेता' कहे जाने योग्य व्यक्तियों की संख्या बहुत कम है। इस लेख के नायक प्रोफेसर पीटर लैभरफ उनमें से एक हैं।

आपका जन्म रूस के एक जमींदार परिवार में, सन् १८२३ ई० में हुआ था। आपके पिता स्वेच्छाचारी प्रकृति के जमींदार थे और रैय्यतों की बात तो अलग रही, अपने परिवार के लोगों के साथ भी बड़ी कड़ाई के साथ पेश आते थे। पर साथ ही संस्कृति के आदमी थे और खूब शिक्षित थे। इसी का फल था कि पीटर लैभरफ ने भी बाल्यावस्था में ही रशीयन, फ्रेंच और जर्मन की बहुत सी पुस्तकें पढ़ डाली थीं।

लैभरफ परिवार का उस प्रान्त में बड़ा सम्मान था। कहते हैं, दक्षिणीय रूस की यात्रा को जाते हुए जार अलेक्जेण्डर प्रथम ने लैभरफ भवन में विश्राम किया था और भावी क्रान्तिकारी पीटर की अपने ही हाथों से पीठ ठोकी थी। वह उस समय १ वर्ष के शिशु थे।

थोड़ी उमर में ही आपकी भौल्टेयर, डिडरो आदि महान् पुरुषों की कृतियों से घनिष्ठता हो गई थी। १६ वर्ष की उम्र में आप Artillery (युद्धास्त्र) स्कूल में भर्ती हुए। उसी उमर में आपने दो कविताएँ लिखी थीं जिनमें से एक किसी मासिक पत्र में भी प्रकाशित हुई थी। पर साहित्य से ज्यादा आपकी अभिरुचि विज्ञान, इतिहास और दर्शन की ओर थी। 'फ्रेंच की राज्य-क्रान्ति का इतिहास' उन दिनों आपका प्यारा ग्रन्थ था और इसे आपने कई बार पढ़ डाला था। कालिज की शिक्षा समाप्त करके आप आर्टिलरी स्कूल में ही शिक्षक मुकर्रर हुए और जब तक कि आपकी गिरफ्तारी नहीं हुई उस पद पर आसीन रहे।

आर्टिलरी स्कूल के पद पर रहते हुए आपने कई बड़े महत्त्वपूर्ण लेख लिखे थे। इनमें सबसे अधिक महत्त्व का और सनसनी फैलाने वाला आप का लेख 'व्यक्तित्व' (Individuality) पर था जिसे आपने अलेक्जेण्डर हर्जेन और प्राउधन (Proudhon) को समर्पित किया था। यह लेख सबसे महत्त्व का इसलिए है कि इसमें आपने अपने उस विचार का प्रतिपादन किया है जिसके अनुसार आप अपने जीवन भर चलते

रहे। आपने इस लेख में लिखा है कि मनुष्य को अन्धरूप से पुराने तथा प्रचलित विचारों का अनुसरण न करके—लकीर का फकीर न बनकर—अपने 'व्यक्तित्व' का परिचय देना चाहिए, प्रचलित विचारों की तीक्ष्ण समालोचना करके अपना मत आप ही कायम करना चाहिए और उसी के अनुसार जीवन में चलना चाहिए। पूर्वजों के आचार-विचार का अनुसरण करने वाला मनुष्य नीतिमान या सदाचारी नहीं है। और वह, जिसने अपना मत आप ही निश्चित किया है पर साहस अथवा त्याग की कमी से उसका जीवन में उपयोग नहीं करता, दुराचारी है।

रूस के प्रसिद्ध निहिलिज्म मत का प्रोफेसर लैभरफ का यह विचार आधार-स्तम्भ है और अपने इन्हीं विचारों के कारण उन्हें जीवन भर के लिए अपनी मातृ-भूमि का त्याग करना पड़ा था।

ज़ार अलेक्जेण्डर द्वितीय की ज्यों-ज्यों अत्याचार—निरंकुशता—बढ़ती जाती थी प्रो० लैभरफ त्यों-त्यों क्रान्तिवाद की ओर अग्रसर होते जाते थे। अन्त में १८८३ के पोल-विप्लव के कुछ दिन पहले वह 'देश और स्वतन्त्रता' नामक एक क्रान्तिकारी सोसाइटी में शामिल हो गये। इसके दो-तीन वर्षों के बाद काराकोसफ नाम के एक व्यक्ति ने ज़ार की हत्या करने का प्रयत्न किया, और इसके फलस्वरूप 'भयपूर्ण शासन' का आरम्भ हुआ और लोग धड़ाधड़ पकड़कर जेल में ठूँसे जाने अथवा साइ-बेरिया की खानों अथवा जेलों में भेजे जाने लगे। अन्ततोगत्वा प्रो० लैभरफ को भी उन्हीं में शामिल होना पड़ा और उन पर क्रान्तिकारी विचारों के प्रचार का इल्ज़ाम लगाया गया। ९ महीने हवालात में सड़ाये जाने के बाद वह काडनिकोफ नामक स्थान को, जहाँ सिर्फ असभ्य आदमियों की आबादी थी, भेज दिये गये। वहाँ उन्हें अनन्त कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, पर उनसे वह ज़रा भी विचलित न हुए वरन् वहाँ पहुँचते ही उन्होंने लिखने-पढ़ने का काम शुरू कर दिया। रूस के अन्यान्य मासिक पत्रों के लिए लेख लिखने लगे। अपने इन लेखों में उन्होंने अपने 'व्यक्तिगत' मत का खूब ज़ोरदार शब्दों में प्रतिपादन किया है। इसके सिवा सदाचारों का लक्ष्य, शिक्षित तथा सदाचारी व्यक्तियों का देश तथा देश की साधारण जनता के प्रति, कर्तव्य आदि विषयों पर भी बड़े उत्तम और प्रभावशाली लेख लिखे थे। क्रान्तिकारियों के लिए तो ये लेख धर्म-ग्रन्थ के समान हो गये हैं। निहिलिस्ट उनके लेखों को पढ़ते थे, मनन करते थे और उनसे उत्साहित होते थे। उनके लिए लेख मार्गदर्शक-से हो गये हैं।

हर्मन लोपाटिन—जो स्वयं कुछ दिनों के बाद गिरफ्तार करके Schlüssel-burg के पिंजड़े में बन्द कर दिये गये और जिनका फिर पता न चला—की सहायता से फरवरी १८७० में प्रोफेसर कार्डानिकोफ़ से मिलकर पेरिस चले गये, और वहीं रहने लगे। अपनी मातृभूमि से यह उनकी अन्तिम बिदाई थी।

पेरिस पहुँचते ही उनकी वहाँ के विद्वानों के साथ खासी जान-पहचान हो गई और विद्वत्समाज में—खासकर क्रान्तिकारी विद्वानों के बीच—उनका खूब सम्मान होने लगा। 'इन्टरनैशनल' से भी उनका सरोकार हो गया। फ्रांस-जर्मन युद्ध के बाद कुछ दिनों के लिए फ्रांस का शासनसूत्र साम्यवादियों के हाथ आ गया। प्रोफेसर लैभरफ साम्यवादी सरकार की ओर से शिक्षा-संगठन के लिए प्रयत्न करने लगे पर इतने ही में साम्यवादी शासन का अन्त हो गया। शासन की बागडोर पुनः अ-साम्यवादियों के हाथ चली गई।

अपने कुछ रशियन मित्रों के अनुरोध पर उन्होंने जुरिच (Zurich) से एक 'Vpered' (अग्रगामी) नामक पत्र निकाला जो कुछ दिनों के बाद जुरिच के बदले लन्दन से प्रकाशित होने लगा। इस पत्र से उनका सम्बन्ध १८७६ तक रहा। १८७६ में उन्होंने इस पत्र से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया।

कई राजनैतिक आन्दोलनों में भाग लेने के कारण १८८२ में उन्हें फ्रांस से निकल जाने की आज्ञा मिली पर इस आज्ञा का फ्रांस में उनके कुछ सम्माननीय मित्रों द्वारा इतना घोर विरोध हुआ कि अन्ततोगत्वा फ्रांसीसी सरकार को उन्हें पेरिस लौट आने की आज्ञा देनी पड़ी। इसके बाद उन्होंने कई बड़े महत्त्वपूर्ण लेख लिखे जिसका सम्बन्ध रूस के क्रांतिकारी आन्दोलन के इतिहास से था। पर उस समय की उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'कल्पना का इतिहास' (History of thought) नामक ग्रन्थ है। प्रायः १६०० पृष्ठ की दो भागों में बँटी हुई इस पुस्तक में उन्होंने संसार के परिणाम (Evolution of the world) पर विशद विवेचना की है और उसका विस्तृत इतिहास दिया है। इसमें उन्होंने दिखलाया है कि संसार शुरू से ही उन्नति करता आया है और आगे और भी उन्नति करेगा। समाज-सुधारकों के दिल में ये बातें आशा उपजाने वाली हैं, इसमें सन्देह नहीं। प्रोफेसर लैभरफ अगर जीवित रहते तो इस पुस्तक के और भी कई भाग प्रकाशित करते। पर 'मेरे मन कुछ और है कर्ता के कुछ और,' १६०० की ११ फरवरी को उनकी मृत्यु हो गई और उनकी यह मनोभिलाषा पूरी न हो सकी। उनकी मृत्यु पर संसारव्यापी शोक प्रदर्शित किया गया था और जीवन-काल में जो उनके विरोधी थे उन्होंने भी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

९

क्रूर कौशल

१

जेल-अधिकारियों की आँखों में बार-बार धूल झोंकने वाले निहिलिस्ट वीर लियो ड्यूस्क का जन्म रूस के कीफ नामक स्थान में सन् १८५५ में हुआ था। १६ वर्ष की ही अवस्था में वह क्रान्तिकारी दल में प्रविष्ट हुआ और अपने दो सहयोगियों—स्टीफानभिक और बोहानोवस्की—के साथ Tchigrin ज़िले के किसानों के बीच क्रान्तिकारी मत का प्रचार करने लगा। उक्त ज़िले के किसान उन दिनों रूसी सरकार के कोप के भाजन हो रहे थे और उनमें से कुछ लोग नित्य-प्रति गिरफ्तार होकर जेलों में ठूँसे जा रहे थे। उन्हें जो जमीन दी गई थी उसे वे आपस में बाँटना न चाहते थे, सामूहिक ढंग पर ही जोतना चाहते थे, पर गवर्नमेण्ट इसके विरुद्ध उन्हें—यह आदेश दे रही थी कि वे जमीन को आपस में बाँट लें, उसे व्यक्तिगत सम्पत्ति बना लें, जो उन्हें मंजूर न था। गवर्नमेण्ट की ओर से जो उन पर सख्तियाँ की जा रही थीं उसका एकमात्र कारण यही था। लियो तथा उसके साथियों ने किसानों के बीच विद्रोहाग्नि फैलाने का यह अच्छा मौका देखा और उनके भीतर जो आग सुलग रही थी उसे उभाड़ने लगे। पर इसके लिए उन्होंने जिस साधन का उपयोग किया वह ठीक न था। उन्होंने ज़ार की ओर से उन किसानों के नाम झूठा घोषणापत्र निकाला जिसमें यह कहा गया था कि मैं—यानी ज़ार—तो उनके सामूहिक ढंग पर जमीन रखने के पक्ष में हूँ पर वहाँ के जमींदार इसके विरुद्ध हैं और मुझे आप पर सख्तियाँ करने को विवश कर रहे हैं। ज़ार ने उनसे यह अनुरोध किया था कि वे उन जमींदारों के विरुद्ध बगावत करके उनसे जमीन छीन लें। किसान, जो ज्यादातर सीधे दिल के थे और इनके षड्यंत्र से अनभिज्ञ थे, इस घोषणापत्र को सत्य मानकर बगावत की तैयारियाँ करने लगे। धीरे, धीरे यह बात दूर तक फैली और अधिकारियों को इसकी सूचना मिल गई। फल यह हुआ कि लियो तथा उसके साथियों को वहाँ से भाग आना पड़ा और उनका उद्देश्य पूरा न हो सका।

उक्त घटना के कुछ दिनों के बाद फौज के सिपाहियों में विद्रोहाग्नि फैलाने के उद्देश्य से लियो ड्यूस्क फौज में भर्ती हुआ और उच्च श्रेणी में रखा गया। एक बार

वह फौज के एक अफ़सर से इसलिए झगड़ बैठा कि उसने उसे 'आप' न कहकर 'तुम' कहा था; दूसरी बार वह बगैर छुट्टी लिए पाँच दिनों तक गायब रहा और एक राजनैतिक कैदी के भागने में मदद देता रहा। इसकी खबर फौज के अफसरों को लग गई। उन्होंने उसे गिरफ्तार करके कोर्ट मार्शल के हवाले किया और उसे हवालात में बन्द होना पड़ा।

यहाँ रूस के 'स्नानागारों' के सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक है। रूस में साप्ताहिक स्नान को जो महत्त्व प्राप्त है, या था, वह और किसी दूसरे देश में नहीं। कारण स्पष्ट है। वहाँ सरदी इतनी ज्यादा पड़ती है और वहाँ के लोगों के पहनने के कपड़े कुछ इतने मोटे और अधिकतर बाल के बने हुए होते हैं कि अगर आदमी कम-से-कम सप्ताह में एकबार भी स्नान न करे तो शरीर में खुजलाहट पैदा हो जाती है। अतएव सप्ताह में एकबार भी स्नान करना वहाँ आवश्यक समझा जाता है। इसके लिए वहाँ के धनवानों के घर में, सार्वजनिक संस्थाओं में, जहाँ-तहाँ स्नान के लिए खास स्थान बनाये जाते थे। सार्वजनिक 'स्नानागारों' में टिकट देकर कोई भी स्नान कर सकता था। ऐसे ही एक 'स्नानागार' में स्नान करने के बहाने से लियो ड्यूस्क जेल-अधिकारियों की आँखों में धूल झोंककर प्रथम बार भाग निकला था।

लियो जिस जेल में रखा गया था वह खासकर फौजी कैदियों के लिए एक भाड़े के मकान में बनी थी। उसमें साप्ताहिक स्नान के लिए कोई खास स्नानागार न था। आम कैदियों के लिए जो सदर जेल थी उसी के स्नानागार में इस जेल के कैदी भी जाकर नहाया करते थे। पर लियो ड्यूस्क ने कहा कि मैं किसी सार्वजनिक स्नानागार में जाकर नहाऊँगा। जिस अफसर के सामने उसने यह इच्छा प्रकट की थी उसने उसे इजाजत देने से इन्कार कर दिया। पर एक दूसरे अफसर के, जिसको लियो जब-तब पाकिट गर्म कर दिया करता था, कहने-सुनने से उसने अन्ततोगत्वा उसे सार्वजनिक स्नानागार को भेजना मंजूर किया। दो सिपाहियों के बदले उसकी निगरानी के लिए तीन सिपाही भेजे गये और उन्हें यह आदेश मिला कि कैदी के ऊपर कड़ा पहरा रखें, उसे भागने का मौका न दें। उक्त सार्वजनिक स्नानागार में दो खिड़कियाँ थीं और एक दरवाजा था। दो सिपाही दोनों खिड़कियों के और एक दरवाजे के पास खड़े हो गये। लियो नहाने के लिए अन्दर गया और जाते समय अपने सारे कपड़े तथा कुछ रुपये द्वार-स्थित सिपाही के हवाले करता गया। फरवरी का महीना था, कड़ी सरदी पड़ रही थी, किसी के लिए भी यह सम्भव न था कि वह बगैर काफी कपड़ों के मकान से बाहर निकल सके, अतएव वह सिपाही निश्चिन्त हो रहा।

स्नानागार के अन्दर प्रवेश कर लियो ने देखा कि उसका वह साथी जिसके

साथ भागने का प्लान ठीक हुआ था मौजूद है। वह अपने साथ कुछ कपड़े लेता आया था जिन्हें पहनकर और सर पर हुड लगाकर, जिसे रूस में पहना करते हैं, लियो बड़ी निर्भीकता और शान के साथ बाहर निकला और स्नानागार के हाते से बाहर हो गया। जेल में वह बराबर फौजी कपड़े पहना करता था और उस समय तो वह बिना किसी पोशाक के घर के अन्दर घुसा था। अतएव द्वार-स्थित सिपाही न तो उसे सादे कोट और पैन्ट में पहचान ही सका और न उसे सन्देह ही हुआ कि लियो ड्यूस्क भागा जा रहा है। खिड़कियों के पास जो सिपाही खड़े थे उन्होंने भी उसे देखा पर उन्हें भी किंचित् सन्देह न हुआ। हाते से बाहर एक गाड़ी खड़ी थी। लियो और उसका साथी उस पर बैठकर चलते बने। बाहर सिपाहियों ने बहुत देर तक उसका इन्तजार करके भीतर जाकर देखा कि आखिर वह इतनी देर तक करता क्या है? पर वहाँ तो उसका नाम-निशान भी न था। उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। जेल-अधिकारियों की समझ में भी यह न आया कि वह कैसे भाग निकला? बेवकूफ बन गये, पछताने लगे, पर 'अब पछताये होत क्या जब चिड़ियाँ चुग गई खेत?'

२

लियो ने इस घटना के बाद अपना नाम बदल डाला और छिपकर रहने लगा क्योंकि पुलिस उसकी तलाश में चारों ओर घूमने लगी। उन दिनों लियो ही नहीं बल्कि लियो जैसे सैकड़ों ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें पुलिस खोज रही थी पर वे गुप्त रूप से नाम बदलकर अपने काम में संलग्न थे और पुलिस की आँखों में धूल झोंक रहे थे। पर एक दिन उसी दल के एक व्यक्ति ने, जिसे पुलिस ने पकड़ लिया था और जो मृत्युदंड पाने की आशंका से भयभीत हो रहा था, उनका भण्डाफोड़ कर दिया, जिसके फलस्वरूप वह स्वयं तो रिहाई पा गया पर कई दूसरे आदमी पकड़ लिये गये। लियो ने बदले में उसके ऊपर बन्दूक का वार किया जिससे वह सख्त जख्मी हुआ। इसके कुछ ही दिनों के बाद Tchigrin में विद्रोह फैलाने के इलजाम में लियो ड्यूस्क की भी एक दिन अकस्मात् गिरफ्तारी हो गई। उसके मित्र स्टीफानविक और बोहानोवस्की पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे। वे तीनों एक ही जेलखाने में बन्द किये गये। पर कुछ ही महीनों के बाद वे तीनों जेलखाने से निकल भागे। उनके भागने की कथा इस प्रकार है—

फ्रोलेनको नामक एक क्रान्तिकारी मजदूर के वेष में जेलखाने में दाखिल हुआ और कुली का काम करने लगा। उसने अपना नाम माइकेल बतलाया। वह काम करने में बड़ा चतुर और परिश्रमी था और बड़ी मुस्तैदी से अपनी ड्यूटी अदा करता था। उसके कामों से प्रसन्न होकर जेलखाने के गवर्नर ने उसकी तरक्की कर दी, उसे वार्डर बनादिया, साधारण कैदियों के वार्ड में उसकी नियुक्ति हुई। यहाँ भी उसने अपनी

ड्यूटी उसी मुस्तैदी और होशियारी के साथ अदा करनी शुरू की, यहाँ तक कि जेल-अधिकारियों का उस पर पूरा विश्वास हो गया और सब उसे जी-जान से चाहने लगे। वह शीघ्र ही राजनैतिक कैदियों के वार्ड में भेज दिया गया। यहाँ भी उसने उसी बुद्धिमत्ता और तत्परता का परिचय दिया और साथ ही, लियो तथा उसके साथियों को जेल से बाहर निकालने के उपाय में भी संलग्न रहा। पर अपना बाहरी रंग-ढंग, चाल-ढाल, कुछ इस प्रकार का रखता था कि कोई भी इस बात का कतई सन्देह न कर सका कि वह राजनैतिक मामलों में दिलचस्पी लेता है या राजनैतिक कैदियों से उसकी जरा भी जान-पहचान है। जेलखाने के अन्दर का सारा प्रबन्ध-भार उसके ऊपर था और बाहर का इन्तजाम ओशिन्सकी नामक एक व्यक्ति के हाथ, जो खुद कुछ दिनों के बाद गिरफ्तार होकर शूली पर चढ़ा था।

'माइकेल' ने निश्चित तिथि पर लियो तथा अन्य तीन कैदियों को वार्डरों की पोशाक पहनाकर बाहर निकाला। जेल के पास ही नदी थी जिसमें ओशिन्सकी ने पहले से नाव ठीक कर रखी थी। दुर्भाग्यवश उन चार कैदियों में से एक के पैर टकरा गये और वह अलार्म सिगनल (खतरे की घंटी) की गेरी पर गिर पड़ा। सहसा चारों ओर घंटी बज पड़ी। पर ऐसी घबराहटके समय में भी माइकेल ने स्थिरता और बुद्धिमानी से काम लिया। उसने घंटी की आवाज से जगे हुए अन्य वार्डरों को यह कहकर कि मैंने ही गलती से घंटी बजा दी है, चिन्ता की कोई बात नहीं है, सन्देह-रहित कर दिया। वे सो गये, इधर माइकेल नामधारी फ्रोलेनको ने लियो आदि कैदियों को जेल से बाहर किया और खुद भी निकल भागा। नदी में नाव पहले से लगी थी। वे सबके सब उस पर सवार होकर चल दिये और एक सप्ताह तक चलते ही गये पर पुलिस उनकी टोह न पा सकी।

उक्त घटना के दो वर्ष बाद तक लियो प्रचार-कार्य में लगा रहा पर अन्त में अधिक दिनों तक पुलिस की तीक्ष्ण आँखों से बचा रहना असम्भव जानकर और यह सोचकर कि अबकी बार पकड़े जाने पर वह जरूर ही शुशेलबर्ग के क़िले में ठूँसा जायगा उसने रूस से भाग निकलना ही श्रेयस्कर समझा और सन् १८८० के प्रारम्भ में अपने इस उद्देश्य में सफल हुआ, और रूस से बिदा हो गया।

३

रूस से बिदा होकर ड्यूस्क प्रायः चार साल तक स्विट्जरलैण्ड और जर्मनी में निवास करता रहा और कई विषयों के अध्ययन में लगा रहा। अन्त में १८८३ ई० में उसने और कई रूसी साम्यवादियों के साथ, जो स्विट्जरलैण्ड में शरण ले रहे थे, मिलकर एक 'मजूरों के उद्धारार्थ समिति' की नींव डाली जिसका उद्देश्य रूस में कार्ल मार्क्स के विचारों का प्रचार करना था। इसी उद्देश्य-पूर्ति के लिए उन लोगों

ने स्विट्जरलैण्ड में एक प्रेस भी खोल डाला और १८८४ के मार्च महीने में ड्यूस्क इस सम्बन्ध की कुछ पुस्तिकाएँ, पैम्फलेट वगैरह साथ लेकर कौवर्ग के लिए रवाना हुआ। वहाँ से उसका अभिप्राय उन कागज-पत्रों को एक ऐसे स्थान पर भेजना था जो रूस की सरहद के समीप हो और जहाँ से वे अविलम्ब रूप से रूस को भेजे जा सकें। उन दिनों समाज-प्रजातन्त्रवादियों पर जर्मनी में भी कड़ी निगाह रखी जाती थी और उनका मुख्य पत्र Der Sozial-Demokrat जर्मनी में न छपकर स्विट्जरलैण्ड में छपता था और वहाँ से गुप्त रूप से जर्मनी को भेजा जाता था। कौवर्ग के जिस होटल में ड्यूस्क जाकर ठहरा उसके मालिक को जर्मन सरकार की ओर से सख्त हिदायत थी कि वह स्विट्जरलैण्ड से आने वाले यात्रियों पर कड़ी निगाह रखे और जिसके सम्बन्ध में जरा भी सन्देह हो कि वह जब्त पत्र-पत्रिकाएँ अथवा पुस्तकों को आगे भेजना चाहता है उसके आने की सूचना तत्काल पुलिस को दे दे। ड्यूस्क के पास भी एक बड़ा-सा बक्स था जो पुस्तकों और पर्चों से भरा था। होटल के मालिक ने सरकारी आज्ञानुसार उसके आने की खबर पुलिस को दे दी और पुलिस ने आकर बिना किसी वारन्ट के उसकी खानातलाशी ली। दुर्भाग्यवश उसके बक्स से और चीजों के साथ-साथ Sozial-Demokrat अखबार की, जो जब्त था, कुछ कापियाँ निकल आईं। वह फौरन गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिस के द्वारा नाम-धाम पूछे जाने पर उसने अपने को बुलिगिन नामक एक मास्को का छात्र बतलाया पर अनुसंधान करने पर मालूम हुआ कि मास्को में बुलिगिन नाम का कोई छात्र नहीं है। रूस की पुलिस के कान चौकन्ने हो गये और अन्त में उसे यह पता चल गया कि यह बुलिगिन नामधारी व्यक्ति दूसरा कोई नहीं ड्यूस्क ही है। फिर क्या था, रूसी सरकार ने जर्मन सरकार से यह अनुरोध किया कि वह उसे उसके हवाले कर दे। चूँकि राजनैतिक अपराधियों को रूसी गवर्नमेन्ट के जिम्मे करने के सम्बन्ध में तब तक रूस और जर्मनी के बीच कोई सन्धि नहीं हुई थी अतः रूसी सरकार ने ड्यूस्क पर अपराध लगाया कि उसने गोर्नोविक नामक एक व्यक्ति की हत्या की थी अतएव वह असाधारण अपराधी था और इसलिए जर्मन सरकार का यह फर्ज था कि वह लियो ड्यूस्क को उसके हवाले करे। इस सम्बन्ध में रूसी सरकार को झूठ बोलना पड़ा और कई नीच कर्मों को करना पड़ा पर उसे झूठ बोलते हुए अथवा नीच कर्म करते हुए जरा भी हिचकिचाहट न हुई। इससे यह पता चलता है कि जारशाही का उस समय तक कितना नैतिक पतन हो चुका था।

ड्यूस्क के गिरफ्तार हो चुकने पर रूसी सरकार ने स्टिफानविक के सम्बन्ध में भी लिखा कि वह भी ड्यूस्क के साथ-साथ वर्षों से लापता है, शायद जर्मनी में छिपा हो, उसकी भी खोज होनी चाहिए और गिरफ्तार होकर उसे भी हमारे पास आ जाना

चाहिए क्योंकि गोर्नोविक की हत्या में वह भी शामिल था, हालांकि वह इस घटना के ड्यूस्क के पकड़े जाने के-कई वर्ष पहले ही गिरफ्तार हो चुका था और उस समय रूस के किसी जेलखाने में सजा भुगत रहा था। रूसी सरकार को इस झूठ बोलने में क्या मतलब था यह वही समझे। दूसरी नीचता जो उसने की वह यह थी कि उसने बोगडेनोभिक नामक व्यक्ति को डिप्टी पब्लिक प्रॉसीक्यूटर की झूठी उपाधि देकर ड्यूस्क की पहचान के लिए भेजा। उसने ड्यूस्क के साथ, जर्मन मजिस्ट्रेट के सामने, इस तरह से बातें करनी शुरू कीं मानों उन दोनों की पुरानी जान-पहचान हो, हालांकि इसके पहले उसने ड्यूस्क को कभी देखा भी न था, जान-पहचान की बात तो अलग है।

मजिस्ट्रेट ने उसकी बातों पर विश्वास करके बेडन गवर्नमेन्ट के पास सिफारिश की कि वह (ड्यूस्क) रूसी सरकार के हवाले किया जाय। गवर्नमेन्ट ने वैसा ही किया, पर ऐसा करने के पहले यह शर्त करा ली कि लियो ड्यूस्क का मुकदमा किसी खास पालिटिकल ट्रिब्यूनल के सामने न देखा जायगा और न उसके ऊपर गोर्नोविक की हत्या के अपराध के सिवा और कोई दूसरा अपराध ही लगाया जायगा।

इसी समय एक उल्लेखनीय घटना हो गई। अपनी गिरफ्तारी के प्राय: डेढ़ साल पूर्व ड्यूस्क ने निकोलस क्रिडलस के नाम से बेसेल विश्वविद्यालय में अध्ययन करके वहाँ से मैट्रिकुलेशन पास किया था। वहाँ प्रो० थुन नामक एक अध्यापक से पढ़ने का उसे मौका मिला था। प्रो० थुन रशियन भाषा के अच्छे विद्वान् थे और रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन पर एक पुस्तक लिखना चाहते थे। ड्यूस्क के रशियन होने के कारण उन दोनों में काफी घनिष्ठता हो गई थी, क्योंकि उस ड्यूस्क ने उन्हें इस विषय की बहुत-सी नयी बातें बतलाई थीं। पर ड्यूस्क को कुछ ही दिनों में यह मालूम हो गया था कि प्रो० थुन रशियन आतंकवादियों के प्रबल विरोधी हैं और उनका यह मत है कि यूरोप की सभी सरकारों का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे रशियन क्रान्तिकारियों को साधारण अपराधियों की भाँति रूसी सरकार के हवाले कर दिया करें। एक बार रूस पर सार्वजनिक भाषण देते हुए उन्होंने यहाँ तक कह डाला था कि स्टिफानोविक, बोहानोवस्की और ड्यूस्क नाम के तीन क्रान्तिकारी कीफ के किले से भागकर किसी दूसरे देश में निवास कर रहे हैं पर 'अभाग्यवश' अभी तक पकड़े नहीं गये हैं। ड्यूस्क उस सभा में उपस्थित था। दूसरे दिन इस विषय पर उक्त प्रो० थुन के साथ वाद-विवाद करते हुए उसे यह पक्की तरह मालूम हो गया कि अगर प्रो० थुन उसकी असलियत को जान जायँ तो उसे जरूर ही गिरफ्तार करा दें। अतः उसने प्रो० थुन के साथ मिलना-जुलना बंद कर दिया और शीघ्र ही बेसेल से भी चलता बना।

शीबर्ग के मजिस्ट्रेट के सामने जब ड्यूस्क लाया गया तो उसने प्रो० थुन को वहाँ पहले मौजूद पाया। चूँकि कोई दूसरा ऐसा योग्य व्यक्ति न मिल सका था जो ड्यूस्क के पास के रशियन भाषा के कागजों का अनुवाद करके मजिस्ट्रेट को समझा सके, प्रो० थुन इस काम के लिए वहाँ बुलाये गये थे। प्रो० थुन ने ड्यूस्क को देखते ही उसे रशियन जबान में, जो स्वयं मजिस्ट्रेट भी नहीं समझ सकता था, कहा कि मैं तुम्हारे असली नाम से वाकिफ़ हूँ और तुम्हारी हर तरह से मदद करने को तैयार हूँ। प्रो० थुन की इन बातों को सुनकर आश्चर्य और भय के मारे ड्यूस्क के तो होश-हवास गुम होने लगे पर दरअसल बात यह थी कि प्रो० थुन को स्विट्जरलैण्ड में ही ड्यूस्क के सम्बन्ध में सारी बातें मालूम हो चुकी थीं और वह अब उसकी सहायता को हर तरह से—और हृदय से—तैयार थे। उन्होंने अपनी शक्ति भर यह कोशिश की कि ड्यूस्क की उसके मित्रों के साथ मुलाकात हो और मामले के सम्बन्ध की जितनी बातें गुप्तरूप से होती थीं उनकी सूचना वह फौरन उसे तथा उसके मित्रों को दे देते थे। उन्होंने यहाँ तक वचन दे रखा था कि अगर ड्यूस्क हवालात से किसी तरह भाग निकले तो वह उसे स्वयं अपने घर में छिपा रखेंगे पर रूसी सरकार के यह सूचित करने के कारण कि ड्यूस्क दो बार जेल से भाग चुका है उस पर अत्यन्त कड़ा पहरा रखा गया था, अतएव अबकी बार उसे भागने के प्रयत्न में सफलता न मिल सकी। प्रो० थुन के इस विचार-परिवर्तन का कारण यह था कि रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन का गहन अध्ययन कर चुकने के बाद उनकी यह धारणा हो गई थी कि रूस-निवासियों के लिए बेकानूनी साधनों के और आतङ्कवाद के सिवा उद्धार का कोई दूसरा उपाय न था और जारशाही के क्रूर तथा अनुचित व्यवहारों-निरंकुशता का वही एकमात्र जवाब था। केवल वैध उपायों से वहाँ काम न चल सकता था। 'शठं प्रति शाठ्यम्' की ही वहाँ जरूरत थी।

४

रूसकी तत्कालीन सरकारके लिए झूठ बोलना—झूठा वादा करना—साधारणसी बात थी। ड्यूस्क के मामले में भी उसने ऐसा ही किया। यद्यपि वह वादा कर चुकी थी कि ड्यूस्क को सिवा गोर्नोविक की हत्या के दूसरे किसी राजनैतिक अपराध में सजा न दी जायगी और उसके साथ राजनैतिक अपराधियों का-सा सलूक न होगा पर ड्यूस्क के साथ आगे चलकर उसका जैसा व्यवहार हुआ उससे यह साफ-साफ परिलक्षित है कि उसने अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया। ड्यूस्क के साथ शुरू से अन्त तक राजनैतिक अपराधी का-सा ही व्यवहार हुआ और उसके आचरण से यह साफ जाहिर होता है कि उसकी यह प्रबल इच्छा थी कि उसे राजनैतिक अपराध में ही दण्डित करें क्योंकि वैसी अवस्था में उसे घोर से घोर दण्ड दिया जा सकता

था, फाँसी तक दी जा सकती थी, पर जर्मन गवर्नमेण्ट के भय से वह ऐसा न कर सकी। जर्मन की सरहद पार करते ही ड्यूस्क एक राजनैतिक अफसर (Gender-mire) की देख-रेख में रखा गया। सेंट पिटर्सबर्ग लाकर वह पिटर और पाल के दुर्ग में रखा गया जिसमें केवल राजनैतिक अपराधी ही रखे जाते थे ! वह शीघ्र ही ओडेसा नामक शहर में लाया गया जहाँ गोर्नोविक की हत्या हुई थी। वहाँ उसे एक ऐसी गन्दी और अन्धकारपूर्ण कोठरी (Cell) में रखा गया जिसमें दिन-रात भीषण-काय चूहे इधर-उधर घूमने और उस पर आक्रमण करने को तैयार रहते थे। इस निकृष्ट जीवन से घबड़ाकर उसने यह निश्चय किया कि आत्महत्या कर लें और अन्न-जल का परित्याग कर दिया। तीन दिनों तक वह अनशन करता गया। गवर्नमेण्ट ने यह सोचकर कि अगर उसकी इस तरह मृत्यु हो गई तो जर्मनी उसे दोषी ठहराने की चेष्टा करेगा, उसकी दशा में परिवर्तन कर दिया। अन्त में उसके मुकदमे की सुनवाई कोर्ट मार्शल के सामने हुई जहाँ केवल न्याय का स्वाँग रचा गया क्योंकि कोर्ट मार्शल के प्रेसिडेण्ट ने उसे बयान तक नहीं देने दिया, और उसे १३ वर्ष ४ महीने का 'दण्डनीय अधिवासन' की सजा दे दी। इससे अधिक सजा उसे उस अपराध में दी नहीं जा सकती थी वरना उसे वही दी जाती।

'दंडनीय अधिवासन' (Penal settlement) से मतलब यह था कि इस सजा का पाने वाला साइबेरिया के किसी ऐसे स्थान को भेज दिया जाता था जहाँ कुलियों की जरूरत रहती थी और वहाँ उसे दिन-रात खान इत्यादि में खटना पड़ता था, जी-तोड़ परिश्रम करना पड़ता था और कभी-कभी जमींदारों के कोड़े भी खाने पड़ते थे। ऐसे स्थानों में 'कारा का दंड्य अधिवासन' (Kara penal settlement) मुख्य था। लियो ड्यूस्क को वहीं भेजा जाना निश्चित हुआ।

रूस से साइबेरिया की यात्रा बड़ी कठिन थी और रास्ते के दारुण कष्टों का कोई अन्त न था विशेषकर दंडित व्यक्तियों के लिए तो यह यात्रा न थी, मौत थी। कहीं भीषण सरदी, कहीं असह्य गर्मी, कहीं बीहड़ वन, कहीं रेगिस्तान, दिन-रात की पुलिस सिपाहियों की कड़ाई, गालियाँ और हंटर की मार ! इतने से ही इस यात्रा की भीषणता का अनुमान किया जा सकता है।

रास्ते में जहाँ-तहाँ मृत व्यक्तियों की लाशें पड़ी मिलती थीं। ये लाशें उन कैदियों की होती थीं जो यात्रा के कष्ट न सह सकने के कारण प्राण परित्याग कर देते थे।

और इन 'दंडनीय अधिवास' स्थानों का यह हाल था कि वहाँ कैदियों को न तो भरपूर भोजन मिलता और न सोने-रहने के लिए समुचित स्थान ही। माँ-बाप, स्त्री, बाल-बच्चों से कोसों दूर रहते हुए इन अभागे कैदियों का जीवन पशुओं से भी

बदतर था । एक तो वनवास के दिन और फिर कोड़ों की कड़ी चोट उनकी इस दयनीय दशा पर विचार करके किस की आँखों में आँसू न आ जायेंगे !

इन अधिवास-स्थानों में से एक स्थान का नाम Nerchinsk था जहाँ हजारों मील में केवल चाँदी की खानें थीं जो जार की व्यक्तिगत सम्पत्ति समझी जाती थी । बहुत दिनों तक रूस से बिना किसी बोध के, किसान यहाँ ले जाकर, जबर्दस्ती, बसाये जाते थे ताकि वे इन खानों में काम कर सकें । सन् १७२२ से वहाँ कैदियों का भेजा जाना शुरू हुआ । सन् १८६३ के पोल-बलवा के बाद के तीन वर्षों में १८,६२३ पोल देश-निर्वासन का दण्ड देकर साइबेरिया भेजे गये थे जिनमें प्राय: ७,००० तो सिर्फ इन्हीं खानों में रखे गये थे जिनमें ४,२५२ उच्चकुल के —कुलीन— धनी-मानी कैदी थे ।

५

अन्तत: १८८५ की २४ दिसम्बर को ड्यूस्क अपने इष्टस्थान पर—'कारा के दण्डनीय अधिवासन' (Kara penal settlement) में—पहुँचा । फीबर्ग की गिरफ्तारी के बाद से २२ महीने गुजर चुके थे और इतने दिनों में उसने ८,००० मील की पैदल यात्रा की थी और एक सौ से अधिक जेलखानों में डेरा डाल चुका था और हर तरह की, एक से एक बढ़कर सख्तियों को झेल चुका था । अगर उसे यह सन्तोष न होता कि वह यह सब कुछ अपनी मातृभूमि तथा एक उच्च कार्य के लिए सह रहा है, वह कदापि इन यातनाओं को न सह सकता और उसके प्राण-पखेरू कब के उड़ गये होते ।

कारा के दण्डनीय अधिवासन में उसकी ऐसे बहुत से राजनैतिक अपराधियों—स्त्री-पुरुषों—से मुलाकात हुई जिनकी दृढ़ता और आत्म-त्याग की कथाएँ स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य हैं । रूस-वाटिका के ये श्रेष्ठ नहीं, श्रेष्ठतम फूलों में से थे और इनकी विद्वता, सच्चरित्रता, योग्यता और उदारता का सानी रखने वाला मनुष्य—स्त्री या पुरुष—किसी भी दूसरे देश में उच्च से उच्च पद को प्राप्त होता पर—यह सोचकर किसका हृदय दुःखित न होगा—यहाँ, रूस में, ये जार के निरंकुश-क्रूर—हाथों द्वारा जीवन के आरम्भ-काल में ही काट डाले गये । साइबेरिया की यन्त्रणाओं से घबड़ाकर कुछ तो पागल हो गये और कुछ ने आत्महत्या कर ली । इनके जीवन-वृतान्त अत्यन्त ही हृदय-विदारक हैं, क्योंकि—

फूल तो दो-दिन बहारे जा-फिजां दिखला गये ।
हसरत उन गुंचों पे है जो बिन खिले मुरझा गये ।

इनकी शक्तियों को प्रस्फुटित होने का मौका न मिल सका, असमय में ही काल-कवलित हो गये । ड्यूस्क ने ऐसे अनेक स्त्री-पुरुषों के जीवन-वृतान्त का तथा

कारा-कारागार की विभिन्न घटनाओं का हाल अपनी 'साइबेरिया में सोलह वर्ष' नामक पुस्तक में दिया है। इनमें से एक घटना का—स्त्रियों के उपवास का—हाल यहाँ दिया जाता है। यह घटना १८८८ की है और इसके होने का कारण यह हुआ:—

कारा प्रान्त के गवर्नर-जनरल (बड़े लाट) बैरन कौर्फ एक दिन कारा जेल के निरीक्षण में आये। जेल के किसी बरामदे में एलिज़ावेथ कोवल्सकाया नामी एक राजनैतिक अपराधिणी एक बेंच पर बैठी हुई थी, वह उन्हें देखकर खड़ी नहीं हुई क्योंकि रूस के तत्कालीन क्रान्तिकारी ज़ार अथवा उनके पदाधिकारियों के आधिपत्य को स्वीकार नहीं करते थे और न उनके लिए किसी प्रकार का सम्मान प्रदर्शन करते थे। बैरन कौर्फ के लिए बुद्धिमानी का काम यह होता कि एलिज़ावेथ की ओर देखते नहीं, दूसरी ओर चले जाते पर ऐसा न करके उन्होंने उसके प्रति कड़े शब्दों का व्यवहार किया और कहा कि तुम्हें मुझे आते देखकर खड़ा होना था क्योंकि मैं इस प्रान्त का सबसे बड़ा अफसर हूँ। उनके इस कथन के जवाब में एलिज़ावेथ ने केवल इतना ही कहा कि "मैंने आपके उस पद के निर्वाचन में भाग नहीं लिया था।"

एलिज़ावेथ के इस अति संक्षिप्त उत्तर को सुनकर बैरन कौर्फ की आँखें गुस्से लाल हो गईं और उन्होंने एलिज़ावेथ को कारा-जेल से हटाकर दूसरे जेल में भेजने का निश्चय किया।

आधी रात के समय जब वह निद्रा देवी की गोद में विश्राम ले रही थीं, जेल के कमाण्डेण्ट (एक अफसर) ने एलिज़ावेथ के कमरे में प्रवेश कर जेल के कुछ नौकरों की मदद से उसे खींचकर कमरे से बाहर किया। भय से व्याकुल होकर वह चिल्ला उठी और उसका चिल्लाना सुनकर जेल भर की स्त्री कैदियों की नींद टूट गई और दूसरे दिन उन्होंने इस घटना के विरोध में अनशन करने का निश्चय किया।

कमाण्डेण्ट उनके इस निर्णय को सुनकर घबड़ा गया, क्षमा-याचना की, उत्तर में उन्होंने कहा कि जब तक वह कारा-जेल से अपनी तब्दीली न करा लेगा तब तक वे अपने निर्णय पर दृढ़ रहेंगी। पर अन्त में कमाण्डेण्ट के यह वादा करने पर कि वह अमुक समय तक अपनी बदली करा लेगा, उन लोगों ने, तब तक के लिए, अनशन करने का विचार त्याग दिया। पर निश्चित समय के गुजर जाने पर भी उसे वहीं देखकर उन लोगों ने पुनः अनशन करना शुरू कर दिया। स्त्रियों की जेल पुरुषों की जेल से १२ मील की दूरी पर थी पर उनके अनशन का संवाद पुरुष कैदियों (राजनैतिक) को भी मिल गया और उन्होंने भी अनशन करने का निश्चय किया। तीसरे दिन कमाण्डेण्ट और भी भयभीत हुआ और स्त्रियों से जाकर कहा कि उसके आवेदन-पत्र का जवाब आया है, वह शीघ्र ही किसी अन्य जेल में भेज दिया जायगा। उसके इस आश्वासन देने पर स्त्री तथा पुरुष कैदियों ने अनशन भंग कर दिया। पुनः बहुत काल

व्यतीत हो जाने पर भी वह वहीं बना रहा, उसकी बदली नहीं हुई। अतएव स्त्रियों ने फिर तीसरी बार अनशन करने का निश्चय किया।

उनमें से एक - मैडम सिगिडा—ने अपना बलिदान देकर दूसरों के प्राण बचाने की सोची। उसने कमाण्डेण्ट के साथ मुलाकात करने की इच्छा प्रकट की और भेंट होने पर जेल के अन्यान्य पदाधिकारियों के सामने ही, उसके मुंह पर एक तमाचा लगाया और कहा कि यह 'तुम्हें कमाण्डेण्ट की हैसियत से मिल रहा है।' कैदियों से इस प्रकार अपमानित होनेवाला अफ़सर साधारणतः उस जेल से हटा दिया जाता था और उसे अपमानित करने वाले कैदी को प्राण-दण्ड मिलता था। मैडम सिगिडा ने सोचा था इस बार भी वैसा ही होगा पर तत्काल इन दोनों में से एक भी न हुआ। इस घटना के बाद ही उन स्त्रियों ने अनशन करना शुरू कर दिया।

१६ दिन हो गये पर उन्होंने एक कण भी मुँह में न डाला और धीरे-धीरे मृत्यु-द्वार की ओर अग्रसर होने लगीं। अन्त में जेल-उच्चाधिकारियों के यह वचन देने पर कि कमाण्डेण्ट तो अपने पद पर बना रहेगा पर वे स्त्रियाँ ही दूसरी जेल को भेज दी जावेंगी, उन्होंने अन्न ग्रहण किया।

पर इस सन्धि के तुरन्त ही बाद उन राजनैतिक देश-निर्वासितों पर दूसरा आघात हुआ। बड़े लाट (गवर्नर-जनरल) ने यह हुक्म जारी किया कि भविष्य में जेल-अधिकारियों की आज्ञाओं का एक से अधिक बार उल्लंघन करनेवाले राजनैतिक कैदियों को बेंत की सज़ा दी जाय। इस आज्ञा से कैदियों में खलबली मच गई क्योंकि बेंत की सजा को वे सबसे अधिक अपमानकारी समझते थे और यह अब तक कभी कानूनी तरीके पर व्यवहार में नहीं लायी गई थी। उन्होंने इसका घोर विरोध करना चाहा पर विरोध करें कैसे? विरोध करने का मायने थे इस सजा का आह्वान करना। अन्त में उनके विचार से इस दण्ड का व्यवहृत होना न होना तो अलग की बात थी, इस दण्ड का अस्तित्व ही घोर अपमानकारी था! अतएव इसका विरोध आवश्यक था, पर वे कभी इस सम्बन्ध में कुछ भी निर्णय न कर पाये थे कि इस अनुचित और अपमानकारी आज्ञा का किस प्रकार विरोध किया जाय—कुछ लोगों की राय में इस दण्ड से छुटकारा पाने का एकमात्र उपाय था सबका एक साथ ही आत्महत्या कर लेना, पर अभी वे इस सम्बन्ध में कुछ निश्चित न कर सके थे, तर्क-वितर्क हो ही रहा था कि समाचार मिला कि जेल के कमाण्डेण्ट को तमाचा मारने वाली मैडम सिगीडा को बेंत लगाये गये हैं, और वह इस सजा के सहने में असमर्थ होकर मर गई है। इस दु:खद समाचार को सुनकर तथा जीवन से विरक्त होकर तीन और वीराङ्गनाओं ने भी विष खाकर, एक साथ ही, प्राण दे दिये। जब यह

समाचार पुरुषों को मालूम हुआ तो उन्होंने भी उक्त स्त्रियों का अनुसरण करने का निश्चय किया और २९ में से १७ कैदियों ने उसी रात विष-पान कर लिया। इसके बाद का दृश्य कहते हैं, बड़ा ही हृदय-विदारक था। उन लोगों ने विष-अफीम तो खा लिया पर विष में काफी शक्ति न होने के कारण मरे नहीं। पर मृत्यु से ज्यादा कष्टदायक थी वह यन्त्रणा जो उन्हें इस विष के कारण सहनी पड़ी। पर इससे वे ज़रा भी विचलित न हुए और दूसरे दिन पुनः विष का अबकी बार मॉफिया—का पान किया। पर इस बार भी उन्हें कष्ट तो बहुत हुआ पर मरे सिर्फ दो ही। ड्यूस्क ने उनकी रोमांचकारी मृत्यु का इस प्रकार वर्णन किया है—

बोबोहम और कल्युशिनी ने औरों की अपेक्षा ज्यादा—तिगुना—विष खा लिया था, अतएव वे शीघ्र ही संज्ञाहीन हो गये। रात्रिकाल में बोबोहम को होश आया और उसने कल्युशिनी के गले की घरघराहट सुनकर उसे जगाने की चेष्टा की, आलिङ्गन किया, चुम्बन किया पर वह जगा नहीं अन्त में यह सोचकर कि उसका मित्र अब "इस जीवन में फिर जग न सकेगा, मुट्ठी भर, अफ़ीम लेकर खा गया और कल्युशिनी की बगल में लेटकर उसने भी सदा के लिए आँखें बन्द कर लीं।"

अन्ततः गवर्नर-जनरल को वह आज्ञा रद्द कर देनी पड़ी।

१८९० के अन्त में ड्यूस्क की जेल से रिहाई हुई और वह कारा अधिवासन में रखा गया। यहाँ कैदियों को आंशिक स्वतन्त्रता मिलती थी, वे आठ मील की दूरी तक जा-आ सकते थे और स्वेच्छानुसार कोई भी काम कर सकते थे पर उन्हें प्रतिदिन प्रातःकाल अपनी हाज़िरी देनी पड़ती थी। १८९७ में गवर्नर की आज्ञा लेकर वह शिल्का नदी के तट पर स्ट्रेटिएन्स्क नामक एक छोटे से शहर में जा बसा और ट्रांस-साइबेरियन रेलवे में नौकरी कर ली, पर दो ही वर्षों में वह वहाँ के बाशिन्दों के पापपूर्णजीवन से घबड़ाकर ब्लेगोभिस्टशेन्स्क (Blagovistshensk) नामक एक दूसरे नगर को चला गया और वहीं रहने लगा।

६

१९०० के जुलाई महीने में उस शहर के निरीह शांतिपूर्ण चीनियों की जो निष्ठुर हत्या की गई थी उसका वह चश्मदीद गवाह था।

अमुर नदी के तट पर वह शहर (Blagovistshensk) बसा था और उसकी आबादी ३८,००० थी। नदी की दूसरी ओर साघालिएन नामक एक बस्ती चीनियों की थी। रूस के इस शहर को खाना पहुँचाने वाला वही गाँव था। नाव से नदी-पार के वे ग्राम्य निवासी शाक-भाजी इत्यादि भोजन के सभी पदार्थ लाकर कम ही दाम पर, इस शहर में बेचा करते थे।

१९०० के बसन्तकाल तक उन चीनियों के साथ इस शहर के रहने वाले रशियन

का सम्बन्ध मित्रवत् था पर चीन के 'बोक्सर' बलवे के बाद जब रूसी सरकार ने अमूर पार करके अपनी कुछ फ़ौज चीन के राज्य में भेजना निश्चित किया तो चीनियों के हृदय से सद्भाव जाता रहा और वे नगरवासियों को आशंका की दृष्टि से देखने लगे। फलतः जब रूस की फौज अमूर पार करके आगे की ओर अग्रसर हो रही थी पर अस्त्र-शस्त्र से भरी हुई एक नौका नदी के बीच ही में थी, गाँव की ओर से कुछ चीनियों ने दो-चार बन्दूकें दाग दीं जिससे उस नाव को लौट आना पड़ा और सारे शहर में सनसनी फैल गई। कुछ लोगों ने अमूर प्रान्त के रशियन मिलिटरी (फ़ौजी) गवर्नर से जाकर पूछा कि इस शहर में तथा इसके अड़ोस-पड़ोस में रहने वाले चीनियों के साथ वह किस तरह का व्यवहार करना चाहते हैं। गवर्नर-जनरल ग्रिवस्की ने उत्तर दिया कि चूँकि अभी रूस और चीन के बीच लड़ाई की घोषणा नहीं हुई है, फिलहाल कुछ करने की ज़रूरत नहीं है। शहर में रहने वाले चीनियों ने भी गवर्नर से जाकर पूछा कि हमें रूस की भूमि त्यागकर चीन के राज्य में चला जाना उचित है या नहीं। उसने उत्तर दिया —नहीं, आप बिना भय और चिन्ता के यहाँ पूर्ववत् निवास करें, रूस-साम्राज्य के अन्दर रहने वाले शांतिपूर्ण विदेश-निवासियों पर रूस की सरकार कदापि कोई उपद्रव नहीं आने दे सकती है और न उन्हें कोई क्लेश पहुँचा सकती है। उसने उसी दिन एक घोषणा-पत्र भी निकाला जिसमें शांतिपूर्ण चीनियों पर अत्याचार करने वालों के लिए दण्ड का भय दिखलाया गया था। उसी दिन अपराह्न-काल में नदी के उस पार से कुछ बन्दूकें दगीं जिससे शहर में आतंक छा गया। पर बन्दूक की उन गोलियों से कोई क्षति नहीं पहुँची। तथापि शहर के कुछ लोग वहाँ रहने वाले चीनियों को अविश्वास की दृष्टि से देखने लगे। शहर में उस समय कई हज़ार चीनी निवास करते थे और व्यापार-वाणिज्य तथा नौकरी में लगे हुए थे। परिश्रमी और ईमानदार होने के कारण लोगों का उन पर पूरा विश्वास था। नौकरी करने वाले चीनियों ने तो किसी-किसी परिवार में बड़ी घनिष्ठता प्राप्त कर ली थी और बहुत से लोगों ने अपना सारा कारबार उनके ही ऊपर छोड़ रखा था। जनरल ग्रिवस्की के आश्वासन पर विश्वास करके ये कई हज़ार चीनी वहीं ठहरे हुए थे।

पूर्वोक्त घटना के दूसरे दिन अश्वारोही सिपाही नगरनिवासियों के दरवाज़ों पर जाकर चीनियों की तलाश करने लगे। अगर कोई चीनी मिल गया तो उसे अपने साथ चलने को कहते थे। लोगों के यह पूछने पर कि वे इन चीनियों को अपने साथ क्यों और कहाँ ले जा रहे हैं, उन्होंने उत्तर दिया कि शहर भर के चीनी एक ही स्थान पर पुलिस की देख-रेख में रखे जाने वाले हैं। पर लोगों को उनकी इस बात पर विश्वास न हुआ, वे समझ गये कि इनके साथ कोई अमानुषिक बर्ताव ज़रूर होगा। अतएव कुछ दयालु लोगों ने उन्हें घर के अन्दर छिपा रखना चाहा पर सफल न हो

सके, पड़ोसियों ने जाकर पुलिस को ख़बर दे दी और कज्जाक सैनिकों ने आकर उन्हें भी गिरफ्तार कर लिया। कई दिनों तक यही होता रहा।

चीनियों की घबराहट का ठिकाना न था। अपने यूरोपियन मित्रों से विदा लेते हुए उन लोगों ने अपनी सारी जायदाद उनके जिम्मे कर दी और किसी-किसी ने उन्हें रुपया देते हुए यह भी कहा कि अमुक व्यक्ति का मुझ पर इतना कर्ज है उसे दे देना और बाकी सम्पत्ति पर अपना अधिकार समझना, उनकी आँखों से आँसू गिर रहे थे और राह भर वे यही पूछते जाते थे, कि "क्या वे हमारा सर उतार डालेंगे?"

दुर्दैवग्रस्त चीनियों की यह आशंका निर्मूल न थी। उनका सर तो न उतारा गया पर उससे भी अधिक पाशविक क्रूर उपायों से उसके प्राण-हरण किये गये। अमुर नदी के तट पर लाकर वे एकत्र किये गये और उन्हें आज्ञा दी गई कि वे नदी पार करके चीन के राज्य में चले जायँ। नदी की चौड़ाई और गहराई दोनों ही वहाँ बहुत ज्यादा है और उनके लिए यह कभी सम्भव न था कि बिना नौका के वे जीते-जागते नदी पार कर सकें। फिर वृद्ध, बालक, रोगी तथा वनिताओं के लिए यह कब सम्भव था कि वे थोड़ी दूर भी तैरकर जा सकें? सिपाहियों की इस आज्ञा को सुनकर उनकी घबराहट का ठिकाना न रहा। घुटने टेक-टेककर प्रार्थना की कि वे इस तरह मौत के मुँह में न डाले जायँ पर वे भला इनकी कब सुन सकते थे? उनके इस अनुनय-विनय के उत्तर में उन्होंने उन्हें बन्दूक के कुन्दों से ठेल-ठेलकर पानी में डालना शुरू किया। जिन्होंने जरा भी हिचकिचाहट दिखलाई वे वहीं कत्ल कर दिये गये! कुछ लोगों ने गवर्नर के दिये हुए आश्वासन की याद दिलानी चाही, उन्हें भी वहीं सर दे देना पड़ा।

अन्त में निराश-निरुपाय होकर वे पानी के अन्दर घुसे और कुछ ही देर में नदी के विपुल प्रवाह में बहने लगे। इस प्रकार सूर्योदय होते-होते कई हजार निर्दोष प्राणियों के शव अमुर नदी के जल पर तैरते नजर आये और कई दिनों तक तैरते रहे! जिन लोगों ने इस घटना को अपनी आँखों देखा था उन्होंने बहुत से ऐसे दृश्यों का वर्णन किया है जिसे पढ़कर हृदय विदीर्ण होने लगता है।

एक परिवार में चार व्यक्ति थे—पिता, माता और दो बच्चे। पिता-माता ने एक-एक बच्चे को गोद में ले लिया और तैरकर उस पार जाने की चेष्टा करने लगे। कुछ ही दूर गये होंगे कि दोनों नदी के गर्भ में चले गये और थोड़ी देर बाद जल पर तैरते नजर आये। उनके प्राण-पखेरू उड़ चुके थे। एक दूसरे परिवार में एक ही बच्चा था। माँ ने बहुत प्रार्थना की कि कम-से-कम उस बच्चे का प्राण न लिया जाय पर उसका कुछ फल न हुआ। अन्त में निरुपाय होकर वह बच्चे को किनारे पर ही छोड़कर जल के अन्दर घुसी पर शीघ्र ही लौट आई और बच्चे को

लेकर जल में प्रवेश किया। पर दो-चार कदम आगे बढ़कर पुनः जल के बाहर लौटी और बच्चे को जमीन पर रखना ही चाहती थी कि एक निष्ठुर सिपाही ने आगे बढ़कर उसका तथा उसके बच्चे का काम तमाम करके इस अभिनय का अन्त कर दिया ! कैसी हृदय-विदारक घटना थी !

शहर के कुछ दयालु नगरनिवासियों को जब यह मालूम हुआ कि किस निर्दयता से गवर्नर के हुक्म की तामीली की गई है तो उनके दुःख का ठिकाना न रहा। वे रो पड़े, उन्होंने सिपाहियों के इस अमानुषिक और अनुचित कार्य की कड़े शब्दों में निन्दा करनी चाही पर रूस में यह कब सम्भव था !

नगर के कुछ कोमल-हृदय व्यक्तियों ने दो-चार चीनी नौकर-नौकरानियों तथा अतिथियों को छिपा रखा था। उन्होंने अधिकारियों के पास आवेदन-पत्र देकर यह प्रार्थना की कि वे उनकी व्यक्तिगत जमानत पर पूर्वोक्त आज्ञा से बरी कर दिये जायँ पर दो-एक गवर्नर के मित्रों को छोड़कर किसी को ऐसी इजाजत न मिली। मैडम माकेयेभा नामक एक रमणी ने चर्च के विशप तथा गवर्नर से, जिससे उनकी काफ़ी जान-पहचान थी, जाकर याचना की कि उनका एक चीनी नौकर जिसने पाँच वर्ष तक बड़ी ईमानदारी और सचाई के साथ उनकी सेवा की थी, उनकी जमानत पर छोड़ दिया जाय पर उनके लाख अनुनय-विनय करने पर भी उनका हृदय न पसीजा। विशप ने कहा कि आपको किसी चीनी के लिए ऐसा अनुरोध करना सर्वथा अनुचित है और जनरल ग्रिबस्की ने चीनी का नाम सुनते ही अपने गले की ओर हाथ ले जाकर कहा कि—"चीनियों के साथ ऐसा ही व्यवहार होगा" अर्थात् उनके सर उतार लिये जायँगे ! और तुर्रा यह कि कुछ दिनों के बाद ही जनरल ग्रिबस्की ने उपरोक्त हत्या का सारा दोष अपने नीचे के अफ़सरों के मत्थे मढ़ा था और अपनी निर्दोषिता और अज्ञानता दिखलायी थी ! शहर में जो कुछ थोड़े-से चीनी बच रहे थे वे भी एक-एक करके मार डाले गये। अपने कृत्यों का औचित्य दिखलाने के अभिप्राय से पुलिस ने यह झूठी खबर फैलायी कि चीनियों के निवास-स्थानों में बहुत-से गोले-बारूद पाये गये हैं। दरअसल इस हत्या के कारण दो थे—एक तो चीनियों की सम्पत्ति के लूटने की आकांक्षा और दूसरे उनसे लिये हुए ऋण के निराकरण की प्रत्याशा, चीनियों की सम्पत्ति को अपनी पूर्व-मनोभिलाषा के अनुसार, कज्जाकों तथा पुलिस के सिपाहियों ने खूब लूटा और इस लूट में पुलिस के बड़े-बड़े अफसर भी सम्मिलित थे ! कई अफसरों ने तो गाड़ियों पर लाद-लादकर उनके माल अपने घर पहुँचाये थे ! उनकी सम्पत्ति के बँटवारे के लिए कई दिनों तक खुले-आम ये अफसर आपस में कुत्तों की तरह लड़ते रहे।

पूर्वोक्त हत्या के बाद 'अमुर गजट' में 'जो सरकार की ओर से प्रकाशित

होता था' इस घटना का ज़िक्र इस प्रकार किया गया था—"रूस के राज्य में रहने वाले चीनियों को चीन राज्य में भेज दिया गया और इसके लिए यह राय दी गई थी कि वे अमुर पार करके उस पार चले जायें।" उस प्रान्त के गवर्नर-जनरल ने सेंट पिटर्सबर्ग के अधिकारियों के पास समाचार भेजा था कि "चीनियों ने अपने मृत तथा घायल व्यक्तियों को अमुर में फेंक दिया था। इस तरह के प्रायः चालीस मुर्दे नदी में बहते हुए पाये गये हैं।" कर्नल कैनोभिक नामक एक अफ़सर ने अधिकारियों को सूचित किया था कि 'Pajataia Pad' में मैंने चीनियों की एक बड़ी फ़ौज को परास्त किया है जिसके लिए उसे पुरस्कार भी मिला था, हालांकि उस स्थान पर उसकी केवल दो जापानी औरतों के साथ मुलाक़ात हुई थी।

पूर्वोक्त हत्या की आज्ञा निस्सन्देह जनरल ग्रिवस्की ने ही दी थी पर वह साफ़ इन्कार कर गया और अपनी न्यायनिष्ठा दिखलाने के लिए उसने इसकी जाँच-पड़ताल करने के लिए एक कमीशन भी मुकर्रर कर दिया जिसकी रिपोर्ट कभी प्रकाशित नहीं हुई। कुछ दिनों के बाद उसने कहा था कि जाँच से यह पता चला कि अफ़सरों के बीच एकता का न होना ही इस हत्या का कारण था! ज़ार निकोल्स द्वितीय के राज्याभिषेक के दिन मास्को में जो हज़ारों मनुष्यों के प्राण चले गये थे, उसके सम्बन्ध में भी सरकार की ओर से यही घोषणा की गई थी कि इसका एकमात्र कारण प्रबन्ध में एकता का अभाव था। जनरल ग्रिवस्की को आगे चलकर चीनियों के ऊपर विजय प्राप्त करने के उपलक्ष में खिताब भी मिला था। उस प्रान्त के करीब ६८ ग्राम, जिनमें चीनी निवास करते थे और जो रूस के राज्य में थे, जला दिये गये और उनमें बसने वाले चीनियों को कत्ल कर दिया गया। तत्पश्चात् अमुर नदी की दूसरी ओर के गाँवों में कज्ज़ाकों ने जाकर आग लगाई और उन्हें भस्मीभूत कर डाला। ड्यूस्क ने, जिसने इन घटनाओं को अपनी आँखों देखा था, लिखा है कि दो दिनों तक ये गाँव दिन-रात जलते रहे और अमुर नदी का जल इनकी परछाईं से लाल बना रहा। वृद्ध, वनिता, बालक—सभी क्रूरतापूर्वक कत्ल कर दिये गये; तरुणी स्त्रियों तथा बालिकाओं के साथ बलात्कार किया गया, तत्पश्चात् उनके साथ भी वही सलूक हुआ जो औरों के साथ, अर्थात् वे भी कत्ल कर दी गईं!

७

इस पाशविक अत्याचार के बाद बहुत से न्यायप्रिय एवं करुणाशील व्यक्तियों ने उस नगर को सदा के लिए त्याग दिया। ड्यूस्क का हृदय भी इन घटनाओं से अत्यन्त दुःखी हो रहा था और वह भी इस शहर को सदा के लिए त्याग देना चाहता था पर देश-निर्वासित होने के कारण अपने निर्वासन-स्थान को नहीं छोड़ सकता था। अतएव उसने पुनः पलायन की सोचा और इसके लिए मौका ढूँढ़ने लगा। अन्त में



घुड़सवार कज्जाकों की एक टोली।

एक दिन सुअवसर पाकर वह वहाँ से भाग निकला और येनकेन प्रकारेण जापान जा पहुँचा। जापानियों के उद्यम, उत्साह, सफाई और सचाई की उसने बड़ी प्रशंसा की है। उनकी ईमानदारी का जिक्र करते हुए उसने लिखा है—"रात्रि में किसी मकान अथवा दूकान के दरवाजे बन्द नहीं होते; दूसरे की चीजों का कोई स्पर्श नहीं करता; खोई हुई चीजें अगर किसी दूसरे को मिल जाती हैं तो वह उन्हें उनके मालिक को फौरन लौटा देता है।"

जापान से अमरीका होता हुआ १९०१ में वह यूरोप पहुँचा। १९०५ में ज़ार ने एक घोषणा की जिसमें रूस में वैध शासन के निर्माण का वादा किया गया था तथा राजनैतिक कारणों से देश छोड़े हुए व्यक्तियों को रूस लौटने की इजाजत दी गई थी और उनकी रक्षा का आश्वासन दिया गया था। ज़ार की इस मायावी चाल को न समझकर कितने आदमी रूस को लौट आये और यहाँ आकर गिरफ्तार हो गये। ड्यूस्क भी उन्हीं में था। १९०६ के जनवरी में वह पुनः गिरफ्तार कर लिया गया तथा चिर-परिचित पिटर और पाल दुर्ग में रखा गया। उसके मित्र अबकी बार हताश हो गये और उसके पुनः आजाद होने की आशा त्याग दी। पर वीर हृदय ड्यूस्क इस बार भी विचलित न हुआ और पुनः जेल से निकल भागने की तरकीबें सोचने लगा।

इस बार भी उसे देश-निर्वासन का दंड मिला और वह अन्य कैदियों के साथ साइबेरिया के लिए रवाना हुआ। अबकी वह उत्तर साइबेरिया के तुरुखांस्क नामक सुदूर दंडनीय अधिवासन को, जो स्वास्थ्य के लिए बड़ा हानिकारक स्थान समझा जाता था, भेजा गया। रास्ते में उसने कुछ कपड़े खरीदने की इच्छा प्रकट की। जिस अफसर के चार्ज में वह रहा था उसने यह सोचकर कि यदि यह स्वयं कपड़े खरीद लेगा तो इसके कपड़ों के लिए सरकार से मिले हुए रुपये बच रहेंगे, उसे आज्ञा दे दी, और दो सिपाहियों की निगरानी में वह कपड़े खरीदने को बाजार में निकला। कपड़ों की एक दूकान पर वे दोनों सिपाही कपड़े देखने तथा कीमत तय करने में इतने मशगूल हो गये कि ड्यूस्क सुअवसर पाकर, बगल के एक मकान में घुस पड़ा और उसके पिछले द्वार से निकलकर चलता बना। सिपाही उसे ढूँढ़ते फिरे पर उसकी टोह न पा सके। वह भेष बदलकर सेंट पिटर्स बर्ग चला आया और वहाँ से ट्रेन द्वारा फिनलैण्ड की राह पकड़ी। यहाँ वह 'रशियन सोशल-डिमो-क्रेटिक कांग्रेस' का प्रमुख सदस्य हो गया।

१०

रशियन क्रान्तिकारियों की दादी 'बबूश्का'

१

जीवन के प्राय: २५ वर्ष जेल तथा साइबेरिया में, देश-निर्वासित होकर, बिताने वाली, रशियन क्रान्तिकारियों की 'परम प्यारी दादी' कैथराइन ब्रेस्को-भस्काया का जन्म एक जमींदार के घर हुआ था। उसके पिता ने, जो स्वयं उदार विचार के थे, उसे शुरू से ही विज्ञान तथा यात्रा सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने को प्रोत्साहित किया था। उसकी शिक्षा-दीक्षा के लिए एक जर्मन तथा एक फ्रेंच अध्यापिका भी रखी गई थीं जिसके परिणामस्वरूप वह लड़कपन से ही इन भाषाओं में बातचीत कर सकती थी। उसकी माँ धर्मधुरीणा एवं उदार-हृदया थीं और बाल्यावस्था में ही उसे यह शिक्षा दिया करती थीं कि वह नौकर-नौकरानियों के साथ भाई-बहन का-सा बर्ताव करे। एक दिन इन बातों को सुनकर छोटी-सी कैथराइन ने अपनी सुन्दर पोशाक सर्दी से सिसकते हुए एक किसान के छोटे से बच्चे को दे दी! दस वर्ष की अवस्था से ही वह अधिकारियों को किसानों के ऊपर छोटी-छोटी-सी बातों के लिए कोड़े लगाने के कारण घृणा की दृष्टि से देखने लगी थी। षोड़शी होने तक उसने वाल्टेयर, रूसो, डिडरो आदि क्रान्तिकारियों की पुस्तकें पढ़ डाली थीं और फ्रेंच की राज्यक्रान्ति का सारा इतिहास उसे विदित हो चुका था। नवीन विचारों---भावनाओं---से प्रेरित और समुत्साहित होकर उसने अपने स्टेट के समीप ही एक स्कूल का उद्घाटन किया जिसमें तत्काल ही प्राय: २० किसानों ने नाम लिखाये। उन्हें कैथराइन स्वयं लिखना-पढ़ना सिखलाने लगी। इसके कुछ ही दिनों के बाद ज़ार की एक घोषणा के अनुसार दास (Serfs) मुक्त कर दिये गये, पर वस्तुत: इससे किसानों की दशा सुधरी नहीं बल्कि और खराब ही हो गई। सैकड़ों वर्षों से वे जमीन को जोतते आये थे और उनके विचार से वह जमीन के साथ बेचे और खरीदे जा सकते थे पर उस जमीन से जिसमें वे इतने वर्षों से रहते आये थे, पृथक् नहीं किये जा सकते थे। अपने-अपने मालिकों से उनका यही कहना था कि 'हम आपके हैं, पर जमीन हमारी है।' अतएव जब वे मुक्त किये गये तो उन्होंने प्रकृतित: यही समझा कि वे जमीन के साथ-साथ मुक्त किये गये हैं पर शीघ्र ही उनकी यह धारणा गलत साबित हुई।

क्योंकि एमान्सिपेशन ऐक्ट के पास होते ही जमींदारों ने उन्हें आज्ञा दी, कि वे अपनी पुरानी जमीन को छोड़कर दूसरी बतलाई हुई जमीन में, जो निम्न श्रेणी की थी, जाकर बसें और उसे ही जोतें। किसानों ने जमीन छोड़ने से इन्कार किया, क्योंकि अगर वे ऐसा करते तो भूखों ही मरते। सरकार की ओर से उन पर जमीन छोड़ने के लिए तरह-तरह की सख्तियां की जाने लगीं। घर-घर में फौज के सिपाही बिठाये गये, किसानों पर कोड़े लगाए गये, उनकी लड़कियों के साथ बलात्कार कराया गया—पाँच साल तक रूस भर में यही हालत रही। आख़िर गरीब किसान ज़ार की महती शक्ति के सामने कब तक ठहर सकते थे? अन्त में निरुपाय होकर उन्होंने हार मानी, जमीन छोड़ दी। कैथराइन ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि—"मैंने अपने पाठशालागृह में तथा पिता जी से इस सम्बन्ध की अनेक हृदय-विदारक कहानियाँ सुनी थीं। बहुधा मैंने अभागे किसानों को पिताजी के सामने पंक में लोटते तथा घुटने टेककर उनसे यह प्रार्थना करते देखा था कि वह एक बार पुनः घोषणापत्र में देखें कि कोई गलती तो नहीं है। मैं धीरे-धीरे यह अनुभव करने लगी कि मैं जो कुछ कर रही हूँ वह निष्फल है, राजनैतिक तथा आर्थिक मामलों में विपुल परिवर्तन की आवश्यकता है, थोड़े से काम न चलेगा, पर क्रान्तिवाद में अब तक मेरी दीक्षा नहीं हुई थी। प्रकाश-प्राप्ति तथा देश के अनुभवी एवं वृद्ध लोगों के विचार जानने के उद्देश्य से मैं १९ वर्ष की अवस्था में अपनी, माँ और बहन के साथ सेंट पिटर्सबर्ग को गई। ट्रेन में हमारी गाड़ी में, एक सुन्दर एवं तरुण राजकुमार (प्रिन्स) जो साइबेरिया से अपने अधिकार पद सम्बन्धी काम से लौट रहे थे, आकर बैठे। घंटों तक इन प्रश्नों पर वह मुझसे वाद-विवाद करते रहे। उनके शब्दों में अग्निवत् स्फुरण था। आवेश में आकर हम लोग ऊँचे स्वर में बोलने लगे पर मेरी माँ ने आकर मुझसे धीरे-धीरे बातें करने को कहा, मेरी नर्स भी एक बार ऐसा ही कह चुकी थी।

"वह तरुण प्रिन्स आज वृद्ध हैं और देश-निर्वासित हैं। उनका नाम पिटर क्रोपाटकिन है।"

सेंट पिटर्सबर्ग पहुँचकर कैथराइन शीघ्र ही गर्म दल वालों के साथ जो सुधार-आन्दोलन के शिखर पर थे जा मिली और उनकी गुप्त सभाओं में भाग लेने लगी। अभी तक इन गुप्त संस्था-सभा-समितियों में सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने का कोई प्रस्ताव न था, जनता में प्रारम्भिक शिक्षा का किस प्रकार विस्तार किया जाय तथा उच्च श्रेणी की स्त्रियों में उच्च शिक्षा का प्रसार किस तरह हो—बस यही दो उनके सम्मुख मुख्य प्रश्न थे। कई साल तक कैथराइन देश के विभिन्न प्रान्तों में घूमती तथा गर्म विचार वालों के साथ मिलती रही, अन्ततः उसने अपने जीवन को

लोक-सेवा के लिए उत्सर्ग कर देने का निश्चय कर लिया। उसके पति को, जिनके साथ उसकी हाल ही में शादी हुई थी और जो स्वयं उदार विचार के थे, उसके साथ पूर्ण सहानुभूति थी और उन दोनों ने मिलकर एक कृषि-विद्यालय की, किसानों के हित के लिए, स्थापना की। उन्हें शीघ्र ही यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि किसानों को कानून के द्वारा जो उन्हें थोड़ा-सा हक़ प्राप्त था उस तक का भी किंचित ज्ञान न था। अतएव वे उन्हें कानून के द्वारा मिले हुए निर्वाचन-सम्बन्धी हक़ों को समझाने तथा उनका किस प्रकार उपयोग करना चाहिए आदि बातों को बतलाने लगे। फल यह हुआ कि उसके बाद से जस्टिस ऑफ़ दी पीस तथा अन्य पदाधिकारियों के चुनाव में वहाँ के किसान काफ़ी दिलचस्पी लेने लगे तथा उदार विचार वालों के लिए ही अपना मत देने लगे। अनुदार विचार वाले जमींदारों को फलतः अपने पदों से हट जाना पड़ा, उनके क्रोध का ठिकाना न रहा, उन्नतिशील पार्टी के नेताओं को खौफनाक राजनैतिक क्रान्तिकारी आदि कहकर उनका विरोध करने लगे। सरकार ने भी उन्हीं का साथ दिया। मि० और मैडम ब्रेस्कोभस्काया के ऊपर शीघ्र ही पुलिस तैनात की गई, औरों को साइबेरिया भेज दिया गया। गवर्नमेण्ट के किसानों को कोई उम्मीद न रखनी चाहिए, इसकी इस घटना से पुष्टि हुई क्योंकि जब वह उन लोगों के साथ, जो उन्हें सिर्फ उनके गवर्नमेण्ट से मिले हुए अधिकारों को समझा रहे थे, ऐसा पेश आ सकती थी तो फिर उससे किसी बात की क्या उम्मीद की जा सकती थी? इस घटना ने मैडम ब्रेस्कोभस्काया का सारा दृष्टिकोण ही बदल डाला। प्रो० थुन की तरह उनका भी यह दृढ़ विश्वास हो गया। रूस की जनता की दशा-सुधार के लिए कोई काम कानूनी तरीकों पर सम्भव नहीं, वैध उपायों से सफलता मिलनी मुश्किल ही नहीं, असम्भव है, और किसी भी सुधार के पहले यह आवश्यक है कि प्रचलित निरंकुश तथा एकतंत्र शासन का अन्त कर दिया जाय। ज़ार अलेक्ज़ेण्डर द्वितीय के मनमाना शासन और अत्याचार से तंग आकर उन दिनों रूस के बहुत से नौजवान स्त्री-पुरुष प्रक्षिप्त रूप से किसानों को बगावत के लिए उभाड़ रहे थे। मैडम ब्रेस्कोभस्काया ने भी इसी क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेने का निश्चय किया। इस आन्दोलन में शामिल होनेवालों के आगे जो खतरा था उससे वह वाकिफ थी और वाकफियत रखते हुए भी उसने उसमें अपने आपको डालने का निश्चय किया। अपने पति से भी उन्होंने साफ-साफ पूछा, कि मृत्यु-दण्ड अथवा देश-निर्वासन के लिए तैयार हैं या नहीं। उत्तर मिला—नहीं, पर वह इस उत्तर से जरा भी विचलित नहीं हुई, और अपनी आत्मा की आज्ञा को शिरोधार्य करके सदा के लिए उनसे बिदा ले ली, क्योंकि उसके हृदय में देश-प्रेम की लगन लग चुकी थी।

२

किसानों के बीच काम करने के लिए यह आवश्यक था कि काम करने वाला उन्हीं जैसा, उसी श्रेणी का, हो वरना वे उसे सन्देह की दृष्टि से देखते थे, उसकी बातों पर विश्वास नहीं करते थे, उससे अलग ही रहना चाहते थे। कैथराइन ने उनका सन्देह मिटाने के लिए अपनी सुन्दर पोशाक को तिलाञ्जलि दे दी और उन्हीं जैसी पोशाक धारण कर ली। पुलिस की आँखों से बचने के लिए भी यह आवश्यक था क्योंकि पुलिस भी किसानों के हाथ पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुषों का संसर्ग होते देखकर चौकन्नी हो जाती थी। पर केवल पोशाक के परिवर्तन से ही कैथराइन का देहाती स्त्री का-सा दीखना सम्भव न था, उसके जैसा सुन्दर चेहरा, कोमल शरीर देहाती स्त्रियों को कहाँ नसीब ! पर कैथराइन ने इन्हें भी त्याग देने का निश्चय किया और तेजाब डालकर अपने चमड़े को खराब कर डाला और अपने मुख की सुन्दरता मिटा ली। स्त्रियों के लिए सुन्दरता से बढ़कर क्या है पर एक कैथराइन ही नहीं, अनेक अन्य निहिलिस्ट स्त्रियों ने इसका भी बलिदान कर दिया। जब हम उनके इस त्याग पर ध्यान देते हैं तो हमारे हृदय में उनके प्रति अपार भक्ति का उद्रेक होता है और हम उनके इस किन शब्दों में उच्च त्याग की प्रशंसा करें, यह समझ में नहीं आता।

इस प्रकार अपनी धन-दौलत, ऐश-आराम, गार्हस्थ्य-जीवन और अनुपम सुन्दरता का बलिदान देकर कैथराइन ने किसानों को जगाना शुरू किया और न्याय-विरुद्ध (Illegal) जीवन व्यतीत करने लगीं अर्थात् झूठे नाम और झूठे पासपोर्ट (Passport) के सहारे इधर-उधर घूमने लगीं। दिन भर वह मजूरों—किसानों—के साथ मिलकर काम करती थीं और रात्रिकाल में उनके संग हिलमिलकर बैठतीं, उनसे उनके दुःख की कथाएँ सुनतीं और उन्हें स्वतन्त्रता के सन्देश सुनाती थीं। कैथराइन ही नहीं, सैकड़ों ऐसे स्त्री-पुरुष रात-दिन यही जीवन बिता रहे थे और किसानों के जगाने में संलग्न थे। फल यह हुआ कि कुछ ही दिनों में यह आन्दोलन ३६ प्रान्तों में फैल गया और सन् १८७४ तक 'The Peoples Party' का काफ़ी संगठन हो गया। निहिलिस्ट स्त्रियों ने अपने आभूषणों और वस्त्रों को बेच-बेचकर रुपयों की सहायता की थी !

अन्ततः एक दिन कैथराइन भी गिरफ़्तार कर ली गईं और कीटाणुओं से भरी हुई एक छोटी-सी कोठरी में रखी गईं। पर वहाँ से शीघ्र ही वह सेंट पिटर्सबर्ग के जेल में भेज दी गईं जहाँ उन्हें एक काल-कोठरी में रखा गया जिसमें आदमी मुश्किल से बैठ और लेट सकता था। उनके सिवा उस जेल में और भी कई सौ राजनैतिक कैदी काल-कोठरियों में पड़े हुए थे। उनके इस अस्वास्थ्यकर दुःखपूर्ण एकाकी जीवन का परिणाम यह हुआ कि दो-तीन वर्षों तक उन्हें सिर्फ़ हवालात में रखा गया और

उसके बाद उनके मुकदमे की सुनवाई हुई। तब तक प्रायः १०० कैदी मर चुके थे, या विक्षिप्त हो चुके थे ! मुकदमे की सुनवाई क्या हुई न्याय का स्वांग रचा गया। मैडम कैथराइन को साइबेरिया में 'कड़ा परिश्रम' करने की सजा मिली और कोर्ट के न्याय-विधान की आलोचना करने के अपराध में दण्डावधि पाँच वर्षों के लिए बढ़ा दी गई।

३

साइबेरिया जाने की राह में कैदियों को जो यातनाएं सहनी पड़ती थीं वह वर्णनातीत हैं। सर्दी के मारे सारा अंग ठिठुरा जाता था, फिर भी सैकड़ों मील का सफर पैदल तय करना पड़ता था। बीच-बीच में रहने के जो स्थान थे वे इतने गन्दे थे कि उनमें कीड़ों के मारे पशुओं का रहना भी असाध्य था, मनुष्यों की बात तो अलग है। छोटे-छोटे कमरों में खटमलों तथा कष्टदायक कीड़ों के सिवाय टायफाइड, यक्ष्मा आदि के कीटाणु भी भरे पड़े थे।

आर्कटिक सर्कल, जहाँ की सर्दी विख्यात है, के समीपवर्ती बार्गुजिन नामक अधिवासन में दो वर्ष रह चुकने के बाद वह कारा-बंदीगृह में भेजी गई जहाँ कई उल्लेखनीय घटनाएँ हुईं जिनकी चर्चा पहले की जा चुकी है। मैडम सिगिडा को जब कोड़े लगाये थे और उसके विरोध में कुछ स्त्री-पुरुषों ने अपने जीवन का बलिदान दिया था उन दिनों कैथराइन भी कारा-जेल में ही थीं।

कारा-जेल से निकालकर उन्हें चीन की सरहद के पास के एक बुरिअत नामक छोटे से गाँव में रहने की आज्ञा मिली जहाँ की सर्दी असह्य थी। कैथराइन ने लिखा है कि २३ वर्षों के जेल-जीवन और देश-निर्वासन की अवधि में यहाँ के दिन सबसे ज्यादा दुःखदायक थे। यहीं सन् १८८५ में जार्ज केनन नाम के एक अमरीकन पत्र के प्रतिनिधि ने, जो उस पत्र की ओर से साइबेरिया की स्थिति का अध्ययन करने के लिए भेजे गये थे, उनसे मुलाकात की थी। उन्होंने उनके पाण्डित्य, देश-प्रेम, वाक्चातुर्य, शिष्टाचार आदि की प्रशंसा करते हुए उनके दुःखमय जीवन की भी चर्चा की है। उनका कहना है कि इतना कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत कर चुकने—इतनी सख्तियाँ झेलने—पर भी उनके हृदय में साहस और उत्साह ज्यों-का-त्यों बना हुआ था और उनका यह परम विश्वास था कि रूस में स्वतन्त्रता का झंडा एक-न-एक दिन अवश्य ही फहरायगा। मि० केनन जब उनसे विदा हो रहे थे तो उन्होंने उनसे कहा था—"मि० केनन हम लोग भले ही देश-निर्वासन में मर जायँ, हम लोगों के बच्चे भी देश से बाहर निर्वासनावस्था में ही प्राण-परित्याग करें, उनके बच्चे भी देश से निकाले जायँ और बनवास में ही उनके प्राण भी छूटें, पर अन्त में इन सबका कुछ अच्छा ही परिणाम होगा।"

बुरिअत से छुटकारा पाकर उन्हें आज्ञा मिली कि वह साइबेरिया के किसी बड़े

नगर में निवास कर सकती हैं और तदनुसार उन्होंने कई अन्यान्य नगरों में निवास किया—पर चाहे वह कहीं रहें उन्हें पुलिस के पास प्रतिदिन हाजिरी देनी पड़ती थी। अन्तत: २६ वर्षों के बाद गवर्नमेण्ट ने यह समझकर कि जेल तथा साइबेरिया के कष्टों ने कैथराइन की शक्तियों का ह्रास कर दिया होगा उन्हें मुक्त कर दिया। पर अपने कामों से कैथराइन ने यह शीघ्र साबित कर दिया कि यह उनकी गलत धारणा थी, अवस्था अधिक होने तथा अनेक यातनाओं के सहने पर भी उनकी शारीरिक—पर उससे भी अधिक मानसिक—शक्ति का ह्रास नहीं हुआ था। रूस लौटते ही वह पुन: क्रान्तिकारी दल के संगठन-कार्य में लग गईं। रूस लौटकर उन्होंने देखा कि गत २३ वर्षों में अत्यन्त परिवर्तन हो गया है। निहिलिस्ट आन्दोलन के प्रारम्भिक काल के उनके हजारों साथी या तो मृत्यु की गोद में जा पड़े हैं या विक्षिप्त हो गये हैं या कारागारों में सड़ रहे हैं। क्रान्तिकारी आन्दोलन का संचालन उनकी संतति के हाथ था जिनसे कैथराइन का परिचय न था पर उन्होंने शीघ्र ही नवीन नेताओं तथा नूतन केन्द्र-स्थानों का पता लगा लिया और उसके साथ मिलकर दुगुने उत्साह के साथ काम करने लगीं। रूस के एक कोने से दूसरे कोने तक घूमती रहीं और निहिलिस्टों की गुप्त सभाओं में भाषण देती रहीं। 'छ: वर्षों तक' उसने अपनी एक पुस्तक में लिखा ह—"रेल का डिब्बा ही मेरा घर बना रहा। रात्रिकाल में नौकाओं पर अथवा किसानों की झोंपड़ियों में या जंगलों में हमारी सभाएँ होती थीं।" पुलिस उनकी तलाश में चौबीसों घंटे लगी रहती थी पर २३ वर्षों के अनुभव के बाद उनकी आँखों में धूल झोंकना वह खूब सीख गई थीं क्योंकि रूसी पुलिस तथा भेदियों की पद्धति और युक्तियों का उन्हें पूरा परिचय मिल गया था। साम्यवादी क्रान्तिकारी पार्टी के वह प्रमुख सदस्यों में से थीं और उसी पार्टी की ओर से १९०४ में वह अमरीका गईं। वहाँ उनके जाने का उद्देश्य था रूसी क्रान्तिकारियों के लिए धन की सहायता तथा ज़ारशाही के क्रूर एवं स्वेच्छापूर्ण शासन का भंडाफोड़ करके अमरीकनों की सहानुभूति प्राप्त करना। दोनों में ही उन्हें आशातीत सफलता मिली। अमरीका में उनका खूब ठाट-बाट के साथ स्वागत हुआ तथा वहाँ के बड़े-बड़े नगरों में सभाएँ की गईं जिनमें उनकी वक्तृता सुनने के लिए श्रोताओं का समुद्र उमड़ पड़ता था। न्यूयार्क, बोस्टन, फिलाडेलफिया, शिकागो आदि नगरों में महती सभाएँ हुईं तथा उनमें प्रस्ताव पास किये गये जिनमें रूसी क्रान्तिकारी आन्दोलन का समर्थन एवं ज़ार के निरंकुश शासन और अत्याचारों की घोर निन्दा की गई। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों, पत्र-सम्पादकों, नागरिकों ने मैडम ब्रेस्कोभस्काया का हार्दिक समर्थन

किया[1] तथा समाचार-पत्रों ने उनके भाषणों को अपने पत्रों में मुख्य स्थान देकर प्रकाशित किया। १०,००० डालर (१ डालर = तीन रुपया) की आर्थिक सहायता भी मिली।

१. बोस्टन की एक महती सभा में मैडम ब्रेस्कोभस्काया के समर्थन में भाषण देते हुए Journal of Education के सम्पादक डाक्टर विन्शिप ने जार के सम्बन्ध में यहाँ तक कह डाला था कि 'मुझे तो प्रलोभन हो गया है कि वाल्टेयर के शब्दों को व्यवहार करूँ—'नराधम को कुचल डालो'।"

११

बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय

१

रूसी सरकार तथा धर्मगुरुओं—पादरियों—की आँखों में काँटों की तरह चुभने वाले, त्याग-मूर्त्ति, साम्यवादी ज़मींदार, दयालु-हृदय प्रिन्स डमित्री एलेक्जेण्ड्रोविच खिलकौफ का जन्म एक धनाढ्य परिवार में हुआ था और फौजी शिक्षा की परीक्षाओं में सफल होकर सन् १८७५ में वह फौज में भर्ती हुए थे। १८७७ में रूस तथा टर्की के बीच युद्ध का आरम्भ हुआ पर वह जिस रेजिमेन्ट के अफ़सर थे वह युद्ध-स्थल पर नहीं भेजी गई। पर उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि वह युद्ध में शामिल हों अतएव उन्होंने अपनी बदली एक कज्जाकों की रेजिमेन्ट में करा ली और उसी का नेतृत्व ग्रहण करके कौकेसस की रणभूमि में पधारे। उस समय तक उनके हृदय में मातृभूमि के लिए प्राणार्पण करने वाली फौज के अफ़सरों के लिए बड़ा सम्मान था पर साथ ही वह फौज के सिपाहियों को भी उतनी ही ऊँची निगाह से देखते थे जितनी फौज के बड़े-बड़े ओहदेदारों को, क्योंकि उनकी सम्मति में वे भी तो देश-हित के लिए ही अपने प्राण अपनी हथेलियों पर रखकर रणभूमि को जाते हैं। फौज के बड़े-बड़े अफसरों के साथ उनकी जितनी घनिष्ठता बढ़ती गई और उनके कामों से वह जितना ही ज्यादा वाकफियत हासिल करते गये उन्हें उनसे उतनी ही अधिक निराशा होती गई, यहाँ तक कि अन्ततोगत्वा वह फौज की नौकरी को घृणा की दृष्टि से देखने लगे तथा मातृभूमि के नाम पर होने वाले युद्ध के प्रबल विरोधी हो गये। "जिसकी मुझे आशा न थी, उन्होंने लिखा है, "उसे देखकर मैं दंग रह गया। अधिकांश अफसर स्वार्थ के वशीभूत होकर अपनी ही देखते थे, अपने प्रतिस्पर्धी को क्षति पहुँचाने अथवा अपने नामवरी-खिल्लत हासिल करने के लिए वह बिना किसी हिचकिचाहट के समूचे उद्योग (Enterprise) को संकट में डालने या अपने हजारों सैनिकों का विध्वंस करने के लिए हर वक्त तैयार थे। मुझे इस बात से बड़ी निराशा हुई और मैं भ्रम में डाले गये, मूक, सैनिकों के लिए जो केवल तोपों के लिए भोजन-सामान समझे जाते थे, मार्मिक-पीड़ा अनुभव करने लगा। मैं इस बात की चेष्टा में लगा कि कम-से-कम मेरे अधीनस्थ कज्जाक सैनिकों का तो परित्राण हो सके।"

एक दिन तुर्कों की खोज में घूमते हुए प्रिन्स खिलकौफ ने एक तुर्क को पाकर उसे अपने हाथों मार डाला। क्षणिक आवेश में आकर उन्होंने उसके प्राण तो ले लिये पर इसके बाद ही यह सोचकर कि उन्होंने एक निर्दोष का खून कर डाला है, उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ, हार्दिक पीड़ा हुई, और इस पापकर्म के लिए उपवास करके प्रायश्चित करने का निश्चय किया। कई दिनों तक वह घटना उनके दिमाग में चक्कर काटती रही यहाँ तक कि उसने फौज की नौकरी से स्तीफा देने तक का विचार कर लिया पर उस रेजिमेन्ट के कर्नल के विरोध करने पर रुक गये। इसके बाद की एक दूसरी घटना से भी उन्हें बड़ी निराशा हुई तथा उनके पूर्वकथित मत की पुष्टि हुई।

ग्राण्ड ड्यूक के नामदिन के उपलक्ष में एक फौजी परेड का आयोजन किया गया था तथा वह (ग्रांड ड्यूक) और फौज के अन्यान्य पदाधिकारी बड़े उत्साह और आनन्द के साथ इस उत्सव में भाग ले रहे थे। इतने में ही जख्मी सिपाहियों से लदी हुई एक घोड़ागाड़ी वहाँ आ पहुँची। जख्मी सैनिकों के आर्त्तनाद से आकाश गुंजायमान हो रहा था तथा गाड़ी के अन्दर से खून की धारा बाहर निकल रही थी। बड़ा ही हृदय-विदारक दृश्य था पर इसका वहाँ के उपस्थित अफसरों पर कुछ भी असर न हुआ। उसे चुपचाप जाने देने के बजाय वे चिल्लाकर गाड़ी वाले को डाँटने तथा घोड़ों पर चाबुक मारने लगे कि वे तेजी से आगे बढ़ जायँ, पर इसका कुछ भी ख्याल न किया कि गाड़ी की चोट से ही उन जख्मियों को इतनी पीड़ा हो रही थी!

युद्ध समाप्त होने पर प्रिन्स खिलकौफ सेंट पिटर्सबर्ग न आकर कौकेसस में ही उस कज्जाक रेजिमेन्ट के साथ ठहर गये। वहाँ की प्रजा तुर्क जाति की थी पर उनके ऊपर शासन करने वाले अफसर रूसी थे। उनके अत्याचारों का दृश्य देख-देखकर उनके दुखित हृदय में और भी चोट पहुँचने लगी। कज्जाक सैनिकों की मदद से वे अफसर उन पर हर तरह की सख्तियां करते थे तथा अपनी झोली भरने को उन्हें लूटा करते थे। एक बार एक रूसी अफसर प्रिन्स खिलकौफ की रेजिमेन्ट के कज्जाक सैनिकों को लेकर एक गाँव में गया। प्रिन्स खिलकौफ यह सोचकर कि कहीं उनके द्वारा वह खून-खराबी तथा लूट-पाट न कराये, स्वयं भी छिपकर, वहाँ जा पहुँचे। अपने सैनिकों को मना कर दिया कि वे उनकी उपस्थिति का हाल उस अफसर से न कहें, और स्वयं एक तुर्क किसान की झोंपड़ी में जा घुसे। वहाँ उन्हें मालूम हुआ कि उस गाँव के किसान दो बार मालगुजारी—एक बार टर्की के अधिकारियों तथा दूसरी बार रूसी अधिकारियों को अदा कर चुके हैं तो भी वह रूसी अफसर उनसे तिबारा मालगुजारी वसूल करने आया है। इसे सुनकर वह अत्यन्त क्रोधित हो उठे और उस अफसर के पास जाकर कहा कि मैं अभी गवर्नर से इसकी फरियाद करने जा रहा



रूस के तत्कालीन जमींदार कानूनन किसानों को काम करने के लिए मजबूर कर सकते थे। इस प्रथा के प्रबल विरोधियों में प्रिन्स खिलकौफ थे। जिनकी साम्यवादी भावनाएँ उनके कष्टों का कारण हुईं।

हूँ। अपने कज्जाक सैनिकों से यह कहकर कि वे किसी तरह का ज़ोर-ज़ुल्म न करें, वह लौट आये। उनके लौटने के थोड़ी देर बाद वे कज्जाक सैनिक भी वापस आ गये। दरियाफ्त करने पर मालूम हुआ कि प्रिन्स खिलकौफ के चले जाने के बाद उस अफसर ने उन सैनिकों को किसान की गऊ आदि पशुओं की हत्या करने का हुक्म दिया पर उन्होंने ऐसा करने से इन्कार किया और उस ज़ालिम अफसर को अकेला ही छोड़कर लौट चले। अन्त में निरुपाय होकर वह अफसर भी प्राणों के भय से विना विलम्ब के वहाँ से वापस हुआ।

'ला और आर्डर' की रक्षा करनेवाले किसी अफसर के कामों में अगर किसी दूसरे ने इस तरह का हस्तक्षेप किया होता तो उसे सख्त सजा मिलती पर चूँकि प्रिन्स खिलकौफ फौज के बड़े अफसर थे और चूँकि इस मामले को आगे बढ़ाने से गवर्नर की ही पोल खुलती—क्योंकि उसने सिर्फ लूटपाट के उद्देश्य से ही उस अफसर को वहाँ भेजा था—उसने मामले को आगे बढ़ाना नहीं चाहा, इस सम्बन्ध में कोई कार्रवाई नहीं की। पर इस घटना से प्रिन्स खिलकौफ को यह पूरा विश्वास हो गया कि शांति के समय भी यत्र-तत्र फौज रखने का एकमात्र अभिप्राय अत्याचार करना है। रूस ही क्यों सभी सरकारों का स्थायी फौज रखने में क्या मतलब है, यह उनकी समझ में आ गया।

रूसी अफसरों के अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने के कारण वह शीघ्र ही तुर्कों के प्रीति-भाजन बन गये और वे उन्हें विश्वास की दृष्टि से देखने लगे। औरों की तरह प्रिन्स खिलकौफ को यह भय न रहा कि अकेला पाकर कोई तुर्क उनकी हत्या कर डालेगा।

रेजिमेन्ट के अफसर जिनके जिम्मे कोष था और जो खर्च-वर्च के लिए उत्तरदायी थे, कितने बेईमान थे और किस तरह अपने श्रेष्ठ अफसरों के जानते हुए भी रुपये हजम कर जाते थे और झूठे खर्चे लिखते थे—इन सारी बातों का भी प्रिन्स खिलकौफ ने भंडाफोड़ करना चाहा। एक बार प्रायः २५,००० रूबल (रूसी सिक्का) गुम हो गये और कोई इसका पता न बता सका। प्रिन्स ओल्डेनबर्ग, जो उस रेजिमेन्ट के सबसे बड़े अफसर थे, को इस बात की सूचना तक न दी गई पर प्रिन्स खिलकौफ से यह कहा गया कि भविष्य में रेजिमेन्ट के भोजन आदि का प्रबन्ध वह अपने हाथ में ले लें। उन्होंने कहा कि मुझे मंजूर है पर शर्त यह है कि भविष्य में खर्चे के हिसाब में यथार्थता पर पूरा ध्यान रखा जाय अर्थात् झूठे खर्चों को न दर्ज किया जाय। फौज के जनरल को यह स्वीकार न हुआ, और उसने एक दूसरे व्यक्ति को मुकर्रर किया। परिणाम यह हुआ कि तीन ही मास के अन्त में और भी कई हजार रूबल्स गायब हो गये। समस्या जटिल हो चली और अब जनरल महोदय को भी खौफ होने लगा।

अतः हार मानकर उसने प्रिन्स खिलकौफ की शर्तें स्वीकार कर लीं तथा उन्हें इस पद पर नियुक्त किया। प्रिन्स खिलकौफ ने इस सच्चाई और चातुर्य के साथ इस कार्य-भार को निबाहा कि उस वर्ष के अन्त में रेजिमेन्ट के सारे खर्च को काटकर और पिछली खोयी हुई रकम को पूरा करके भी ६८,००० रूबल्स की बचत हुई।

पर अपनी इस ईमानदारी और न्यायप्रियता के लिए उन्हें शीघ्र ही जुर्माना देना पड़ा। लोग उन्हें 'साम्यवादी' कहकर उनकी आलोचना करने लगे और उन पर सरकार की ओर से खुफिया पुलिस तैनात की गई क्योंकि वह कानून तोड़ने वालों की राह में रोड़े अटकाते थे। अन्ततः इन सारी बातों से विरक्त होकर उन्होंने १८८० में फौज की नौकरी से इस्तीफा दे दिया और पालटम्भा के अपने स्टेट पर लौट आये तथा कृषि एवं कृषकों की दशा-सुधार की योजनाएँ सोचने लगे।

उनकी माँ ने उन्हें करीब १२ सौ एकड़ भूमि खेती करने के लिए दी और शेष को अपने अधिकार में रखा। प्रिन्स खिलकौफ तथा उनकी माँ के दृष्टिकोण में बड़ा अन्तर था। वह रैय्यतों से जहाँ तक कम हो सके लेना चाहते थे पर उनकी माँ का उद्देश्य था उनसे जहाँ तक ज्यादा मिल सके, लेना। अतएव उन दोनों में अनबन रहा करती थी।

प्रिन्स खिलकौफ को जमीन दी गई थी उसमें एक सेब का बगीचा भी था। वह ६०० रूबल्स प्रतिवर्ष की मालगुजारी पर बन्दोबस्त था। पर प्रिन्स खिलकौफ ने जमीन का अधिकार पाते ही यह घोषित किया कि वह बगीचा आगे से उनकी खास देख-रेख में रहेगा, बन्दोबस्त नहीं होगा, और किसानों को यह आदेश दिया कि वह आगे से उस बगीचे के फूलों को चुरायें नहीं बल्कि जब कभी सेब खाने की इच्छा हो, निःशंक उस बगीचे में आ जायँ और जी भर खायँ और लौटते समय कुछ अपने साथ भी लेते जायँ। पर इतने से ही उन्हें सन्तोष न हुआ। जब बगीचे के सारे फल तोड़-कर इकट्ठे किये गये तो उन्होंने उनमें से आधे फल उन किसानों में बाँट दिये जिन्होंने उस बगीचे के फल लगाये थे। तो भी बाकी फलों के लिए उन्हें प्रायः २०० रूबल्स की आय हुई।

क्रमशः उनके विचार जमीन तथा सम्पत्ति के सम्बन्ध में 'साम्यवादी' होते गये। उनके हृदय में बार-बार यह प्रश्न उठता था कि आखिर किस न्याय से जमीन के ऊपर अधिकार उनका है, जमीन जोतने वाले किसानों का नहीं ?

एक दिन वह अपने एक बगीचे से होकर घोड़े पर टहलने जा रहे थे। बगीचे के समीपवर्ती किसी खेत को एक किसान जोत रहा था तथा उसके दो घोड़े बन्धन-मुक्त होकर बगीचे के छोटे-छोटे 'ओक' वृक्षों के शीर्षभाग को चख रहे थे। प्रिन्स खिलकौफ को यह देखकर बड़ा रंज हुआ और उन्होंने डाँटकर उस किसान से पूछा,

कि 'क्या तुम्हें यह मालूम नहीं कि ओक के ये छोटे-से पौधे नुकसान हो जायेंगे ?" उनकी इस डाँट को सुनकर वह किसान उनकी ओर घूमा। उसकी दुबलाहट, उसके पीले चेहरे, धँसी हुई आँखों को देखकर उनके हृदय में दया का संचार हो आया। प्रिन्स खिलकौफ ने लिखा है कि उसकी जैसी सूरत न तो पहले देखी थी न उसके बाद देखी है।' उसने उत्तर में केवल इतना ही कहा—"मैंने स्वयं तीन दिन से कुछ नहीं खाया है।"

प्रिन्स खिलकौफ को यह उत्तर सुनकर मर्मान्तिक पीड़ा हुई और उसके हृदय से आह निकल पड़ी।

एक दिन पुनः वह अपने बगीचों से होकर घोड़े पर कहीं जा रहे थे। अकस्मात् उन्हें किसी के भागने की आवाज सुन पड़ी। उन्होंने देखा कि एक औरत आगेकी ओर बेतहाशा भागी जा रही है, पग-पग पर गिरती है पर उठकर फिर भागती है—मानों किसी नृशंस पशु से अपने प्राण बचाने को भागी जारही हो। उन्होंने पुकार कर उसे ठहरने को कहा पर वह रुकी नहीं बल्कि उन्हें अपनी ओर बढ़ते देखकर और भी तेजी से भागना शुरू किया। आगे एक खन्दक थी जिसे वह औरत पार कर गई पर अश्वारोही होने के कारण प्रिन्स खिलकौफ न पार कर सके। खन्दक के उस पार जाकर वह बेदम होकर गिर पड़ी। दरियाफ्त करने पर मालूम हुआ कि वह स्त्री गर्भवती थी और प्रसवकाल समीप जानकर उस बगीचे के वृक्षों से गिरी हुई सूखी पत्तियों को जलाने के निमित्त ले जाने आई थी पर इतने में ही बगीचे के मालिक को आते देखकर उसके प्राण सूख गये और दण्ड के भय से वह उसी तरह भागी जैसे कोई हरिणी व्याधे को देखकर भागती है।

प्रिन्स खिलकौफ का हृदय इन घटनाओं से अत्यन्त दुखित हो उठा और उस क्षीणकाय कृषक तथा उस भागती हुई गर्भवती स्त्री की सूरत को वह लाख कोशिश करके भी अपनी आँखों से न भुला सके। अन्त में, एक दिन, गाँव के मुखियों को बुलाकर उन्होंने कहा कि मैं अपनी सारी जमीन किसानों के हाथ केवल उतने ही मूल्य पर जितना कि वह मालगुजारी के रूप में देते हैं, बेच देना चाहता हूँ। प्रिन्स खिलकौफ की इस बात पर पहले तो उन्हें विश्वास ही न हुआ, स्तब्ध होकर उनकी ओर देखने लगे, पर अन्त में प्रिन्स खिलकौफ ने उन्हें विश्वास ही नहीं दिलाया बल्कि अपनी सारी जमीन बराबर हिस्से में बाँट दी। इसके लिए जो उन्हें मूल्य देना पड़ा वह नहीं के बराबर था। अपने लिए उन्होंने एक पर्णकुटी (Cottage) बना रखी थी, उसके आसपास की थोड़ी-सी जमीन किसानों ने स्वेच्छा से उन्हें दे दी। तब से वह उसी पर्णशाला में रहने तथा स्वयं ही उस जमीन की जुताई करने लगे; एक साधारण किसान का-सा जीवन बिताने लगे।

प्रिन्स खिलकौफ ने कुल प्राय: १,१६१ एकड़ जमीन किसानों को दी थी। कुछ ही दिनों में वे किसान उस जमीन में आकर बस गये और ६३ घरों का वह एक नूतन गाँव बस गया। प्रिन्स खिलकौफ ने, वहां एक ग्राम-पाठशाला तथा एक ग्राम-पुस्तकालय खोलने का भी निश्चय किया था पर इस उद्देश्य-पूर्ति के पहले ही उनके सर पर विपत्ति के बादल उमड़ आये और उनका यह मनोरथ पूरा न हो सका।

रूस में उन दिनों गरीबों पर पादड़ियों का अत्याचार जार (अथवा गवर्नमेंट के अधिकारियों) से किसी कदर कम न था। ईसाई धर्म के पवित्र आदर्शों को भूलकर वे केवल गरीबों के चूसने में संलग्न थे। प्रिन्स खिलकौफ को उनके दुष्कृत्यों को देख-देखकर उनसे इतनी घृणा हो गई कि उन्होंने चर्च जाना एकदम ही छोड़ दिया। किसानों ने उनसे अनुरोध किया कि आप हमें इस धर्म के नाम पर अत्याचार करने वाले—खून चूसने वाले—पादड़ियों से बचायें और उनके दुःख की कथाएँ सुनकर प्रिन्स खिलकौफ ने बड़े पादड़ी (Bishop) के पास एक खत भी भेजा पर उसका उल्टा ही परिणाम हुआ। पादड़ियों ने सरकारी अधिकारियों से जाकर प्रिन्स खिलकौफ की जी भर शिकायत की और कहा कि वह उस प्रान्त के क्रान्तिकारी दल के नेता ही नहीं सर्वेसर्वा हैं। फल यह हुआ कि वह तथा उस गांव के २० और किसान शीघ्र ही मजिस्ट्रेट के सामने बुलाये गये और उन पर ग्रीक चर्च से अलग होने का जुर्म लगाया गया। पर जब मुकदमे की सुनवाई हुई तो उन पर आरोपित दोष का कोई प्रमाण न मिला बल्कि उस गांव के पुरोहितों (Priests) के दुष्कर्मों का ही भंडाफोड़ हुआ। अतएव अधिकारियों ने इस मामले को, जहाँ तक जल्द हो सके, शान्त ही कर देना उचित समझा। तदनुसार प्रिन्स खिलकौफ तथा २० कृषक जिन पर मुकदमा चलाया गया था, छोड़ दिये गये। पर खारकौफ के बिशप महोदय ने शीघ्र ही अपनी ओर से एक फतवा निकाला जिसमें धार्मिक वाह्याडम्बरों के विरोधी सुधारवादियों पर अभिशाप तथा गालियों की बौछार की गई थी। प्रिन्स खिलकौफ ने इस फतवे की आलोचना जोरदार की किन्तु संयत् भाषा में लिखकर उसकी एक प्रति बिशप के पास भेजी तथा कुछ कापियां किसानों में बांट दीं। बदले में पादड़ियों तथा पुरोहितों ने प्रत्र-[illegible] सभाएँ कीं और उनमें कहा कि देश के कई स्थानों में ये धार्मिक सुधारवादी किसानों के द्वारा टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये हैं पर यहां आप लोगों को दयार्द्र होकर केवल उन्हें समाज से बहिष्कृत मात्र कर देना ही काफी होगा। कहना न होगा कि उनका यह कथन सर्वथा निर्मूल था, पर धर्म के इन पुजारियों को सत्य से कोई वास्ता न था।

उन्हीं दिनों किसानों के साथ जमींदारों का भी कुछ झगड़ा हो गया जिसका कारण आर्थिक था। सरकारी अधिकारियों ने जो ऐसे मौके को कभी हाथ से नहीं



सरकारी अधिकारियों ने हर तरह से किसानों को सताना शुरू किया। भीषण शीतकाल में एक किसान-पत्नी को घर से बाहर करता हुआ एक सरकारी कर्मचारी।

जाने देते, हर तरह से किसानों को सताना शुरू किया। एक किसी गांव के सभी किसानों पर कोड़े लगाये गये और कोड़े लगाते समय गवर्नर महोदय वहां स्वयं उपस्थित थे और किसे कितने कोड़े लगे यह गिनते जाते थे। कहते हैं, निर्दोष किसानों के बदन से खून के जो छींटे निकलते थे उनसे उसकी पोशाक लाल हो गई थी! एक किसान के, जो पहले फौज का सिपाही था, विरोध करने पर गवर्नर ने हुक्म दिया कि इसके विरोध करने के कारण इस पर दो-चार दर्जन और कोड़े लगाये जायँ! इस जुल्म की शिकायत उच्च अधिकारियों तथा स्वयं जार के पास तक की गई पर इसका कोई फल न हुआ, उत्तर तक न मिला।

प्रिन्स खिलकौफ को जिनसे किसानों ने सम्मति ली थी, गवर्नमेंट के अधिकारियों ने सन्देह की दृष्टि से देखना शुरू किया और गवर्नर ने उन्हें मुलाकात करने को बुला भेजा। उनके बीच निम्नलिखित वार्त्तालाप हुआ।

गवर्नर—प्रिन्स खिलकौफ! मेरी राय में आपका किसी शहर में रहना अधिक उपयुक्त है। वहां आप पढ़े-लिखे लोगों से मिल-जुल सकते हैं और वहां का जीवन ग्राम्य-जीवन की अपेक्षा कहीं अधिक सुखकर है।

प्रिन्स—धन्यवाद! पर मैं ग्राम्य-जीवन से पूर्णतः सन्तुष्ट हूँ और नगर-जीवन की आकांक्षा नहीं रखता।

गवर्नर—ऐसी दशा में हम लोग आपको जबर्दस्ती निकालेंगे; आप किसानों के बीच अशान्ति के बीज बोते हैं; उन्हें तो भगवान् ने ही कठिन परिश्रम करने को बनाया है।

प्रिन्स—और भूखों मरने के लिए भी?

गवर्नर—जी हाँ, भूखों मरने के लिए भी; पर आप उनके मस्तिष्क में दूसरे विचारों को भरते हैं, आप क्रान्ति का संगठन कर रहे हैं, पर कम-से-कम बीस वर्षों तक आपकी मंसा पूरी नहीं हो सकती, यह स्मरण रहे, इसकी मैं गारण्टी करता हूँ।

प्रिन्स—मैं किसी क्रान्ति का संगठन करना नहीं चाहता, सिर्फ़ निरीह किसानों की कानून तोड़ने वाले पादड़ियों, जमींदारों तथा पुलिस से रक्षा करना चाहता हूँ। अधिकारीगण ही उनमें ऐसी भावनाओं और गुणों की सृष्टि कर रहे हैं जिनके कारण अन्ततोगत्वा खून-खराबी अवश्य ही होगी। यह आप स्वयं अनुभव करते हैं, अगर आप केवल २० वर्षों के लिए ही शान्ति-रक्षा की गारण्टी करते हैं।"

प्रिन्स खिलकौफ ने उन्हें विश्वास दिलाया कि वह किसानों के बीच किसी किस्म का आन्दोलन नहीं करते क्योंकि अपने विचारों का दूसरों पर प्रभाव डालना उनकी नीति के विरुद्ध है, किसानों ने स्वयं ही आकर उनसे सम्मति ली थी।

सरकारी अधिकारी अगर नियमानुसार चलें तो किसानों को यह जरूरत ही न होगी कि वे मेरी सम्मति माँगें।

पर उनके इस कथन का कोई परिणाम न हुआ और वह पाँच वर्ष के लिए देश-निर्वासित होकर सुदूर कौकेसस को भेज दिये गये। जब उन्हें कैदी बनाकर पुलिस गाँव से बाहर ले जा रही थी तो उस गाँव के किसान अपने-अपने दरवाजों पर खड़े होकर उनसे ससम्मान विदा ले रहे थे और फूट-फूटकर रो रहे थे।

विपत्ति के समय अपने देशवासियों की सहायता में आगे बढ़ने वाले तथा अधिकारियों से यह याचना करने वाले कि वे कम-से-कम अपने बनाये हुए कानून को आप ही न तोड़ें, को यही पुरस्कार मिला था! पर उनके दुःख का यहीं अन्त न हुआ। जीवन की सबसे बड़ी आपदा तो अभी उनके ऊपर आने ही को थी।

२

जार अलेक्जेण्डर तृतीय के शासनकाल में धार्मिक सुधारवादियों पर तरह-तरह की सख्तियाँ की गई थीं जिनमें सबसे बड़ी सख्ती जो उनके दिल को फाड़ने वाली थी वह उनके लड़के-लड़कियों का अपहरण था। प्रचलित ईसाई धर्म की कुरीतियों तथा धर्मगुरुओं एवं पुरोहितों के वाह्याडम्बर, ढकोसलों और उनकी दुश्चरित्रता का विरोध करने वाले (Dissenters) के नाम से विख्यात थे और वे उन दुराचारी पादड़ियों के अधीनस्थ चर्चों में न तो स्वयं जाते थे और न अपने बाल-बच्चों को भेजते थे। बाइबिल को अपना धर्मग्रन्थ मानते थे, उसी के अनुसार चलते थे, और अपने आचरण एवं विचारों को ईसामसीह के आदेशानुसार सदैव शुद्ध रखते थे। चर्च के 'जलसों' में भाग नहीं लेने के कारण प्राचीन मतावलम्बियों की आँखों में वे बागी के समान थे। रूस के सर्वश्रेष्ठ धर्मगुरु जार को भला यह कब सह्य होता! स्वतन्त्र विचार—चाहे वह राजनीति से सम्बन्ध रखता हो चाहे धर्म से—उनके लिए सर्वदा सर्प के समान भयकारी था। इसके कुचलने में वे नीचातिनीच साधनों का भी प्रयोग कर सकते थे। अतएव यदि जार अलेक्जेण्डर तृतीय ने बालापहरण का सहारा लिया तो इसमें आश्चर्य ही क्या?

धार्मिक सुधारवादियों (Dissenters) के बाल-बच्चे पुलिस द्वारा जबर्दस्ती छीनकर पादड़ियों के हवाले किये जाते थे और वे उन्हें पाल-पोसकर तथा धार्मिक ढकोसलों की शिक्षा देकर, उन्हें गृहदास बनाते थे। माँ-बाप की गोदी से बच्चों का जबर्दस्ती छीना जाना कितना क्रूरतापूर्ण था और इससे उनके हृदय पर कितनी गहरी चोट पहुँचती होगी यह सहज ही में अनुमान किया जा सकता है। काउन्ट टालस्टाय ने इसकी चर्चा करते हुए एक जगह लिखा है—

"मालकनी मत के कुछ आदमियों ने मुझ से आकर उनकी विपत्ति

में सहायता पहुँचाने को कहा। पांच बच्चे, जिनकी उम्र २ से ११ वर्ष तक की थी, अपने माँ-बाप की गोद से छीन लिये गये थे। हम लोगों ने अधिकारियों के पास दरख्वास्तें भेजीं पर उनका कोई असर न हुआ।" कभी-कभी एक-दो नहीं, बल्कि गाँव भर के डिसेन्टरों को एक किसी स्थान पर अपने बच्चों के साथ एकत्र किया जाता था और उनकी गोद से उनके बच्चे एक साथ ही छीन लिए जाते थे और इसका अगर वे विरोध करते थे तो उन्हें मार भी खानी पड़ती थी ! एक बार एक किसी आदमी की गोद से उसकी छोटी लड़की जबर्दस्ती छीन ली गई। इसकी उसके दिल पर ऐसी कड़ी चोट पहुँची कि वह उसे सहने में असमर्थ होकर वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा। पुलिस के एक अफ़सर ने यह कहते हुए कि यह अभिनय कर रहा है उसकी उसी दम अपने बूट जूते से खूब मरम्मत की।

× × ×

सन् १८८६ ई० में प्रिन्स डी० ए० खिलकौफ ने सिसिली भिनर नामक एक रमणी से विवाह किया जिनके धार्मिक विचार भी उनके ही जैसे थे। अतएव यह विवाह प्रचलित प्राचीन धर्मपद्धति के अनुसार न हुआ और न इसमें Orthodox greek church के किसी पुरोहित (Clergy) से सहायता ली गई। प्रिन्स खिलकौफ और सिसिली भिनर की शीघ्र ही दो सन्तान हुईं—पर उन्हें भी उन्होंने चर्च के जल से अभिसिक्त नहीं कराया और उनका नाम बोरिस (पुत्र) तथा ओलगा (पुत्री) रखा। विधिविरुद्ध संतान होने के कारण उनका पिता के नाम तथा सम्पत्ति पर कोई अधिकार न था और न वे गवर्नमेण्ट के किसी विद्यालय में शिक्षा पा सकते थे; गवर्नमेण्ट के किसी पद के लिए वे उम्मीदवार भी न हो सकते थे और न उन्हें चर्च की छत्रच्छाया ही प्राप्त हो सकती थी।

प्रिन्स खिलकौफ की माँ प्रिन्सेस खिलकौफ पुराने आचार-विचार की महिला थीं और उन्हें अपने वंश की मान-मर्यादा का कुछ दूसरा ही ख्याल था। उनके तथा प्रिन्स खिलकौफ के विचार में बड़ी भिन्नता थी, अतएव उन दोनों में जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, सदैव खटपट चला करती थी। सामाजिक तथा धार्मिक बातों में उन दोनों के बीच पहले से ही बड़ा मतभेद था, बोरिस और ओलगा के जन्म के बाद से तो यह और भी वृहत् होगया। उनके पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा के सम्बन्ध में उन दोनों के बीच खटपट चलने लगी, विशेषतः इसलिए कि प्रिन्सेस खिलकौफ अपने पौत्र तथा पौत्री पर अपना एकाधिकार जमाना चाहती थीं।

१८९२ के फरवरी में प्रिन्स खिलकौफ को देश-निर्वासन का दण्ड मिला और वह, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, सुदूर कौकेसस को भेज दिये गये। वहीं के एक गाँव में उन्होंने अपनी धूनी रमाई। छः मास के बाद उनकी स्त्री तथा बच्चे भी

वहाँ आ पहुँचे तथा उनके साथ ही रहने लगे। पर शीतकाल में उस गाँव में रहना मृत्यु के समान था। टूटी-फूटी झोंपड़ियों के सिवा वहाँ रहने का कोई दूसरा स्थान न था और सड़कों पर इतनी कीच थी कि बाहर निकलना मुश्किल था। जाड़े भर प्रिन्स खिलकौफ के बच्चे घरों में पड़े रहे, और नाना प्रकार की बीमारियों से रुग्ण रहे, पर वह वहाँ से हट नहीं सकते थे क्योंकि अधिकारियों का यह सख्त हुक्म था कि वह उसी गाँव में अपने ५ वर्ष के वनवास-दिवस बितायें। किन्तु वह अपने परिवार को वहाँ रखना नहीं चाहते थे अतएव दूसरे साल जब शीतकाल का आगमन हुआ तो उन्होंने अपनी स्त्री तथा बच्चों को एक समीपवर्ती जर्मन निवास-स्थान को भेज दिया और स्वयं अधिकारियों की आज्ञा से जब-तब वहाँ जाकर उनकी खोज-खबर लेने लगे।

इधर इनकी माँ, प्रिन्सेस खिलकौफ, ने ज़ार के पास दरख्वास्त दी कि प्रिन्स खिलकौफ तथा उनकी पत्नी मेरी पौत्र-पौत्रियों का उचित रूप से पालन-पोषण नहीं करतीं और उनके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार करती हैं, अतएव वे बच्चे उनसे छीनकर मुझे दे दिये जायँ। ज़ार ने इस सम्बन्ध में पूछ-ताछ करने की आवश्यकता नहीं समझी। प्रिन्स खिलकौफ ने अपनी जमीन किसानों को दे दी थी और सरकारी अधिकारियों के खिलाफ उन्हें सहायता पहुँचाई थी। इतना ही नहीं, उन्होंने अपना विवाह प्रचलित धर्मपद्धति के अनुसार नहीं किया था अतएव उनका उन बच्चों पर कोई अधिकार न था। बस, ज़ार ने हुक्म दिया कि पुलिस उनके बच्चों को उनसे छीनकर प्रिन्सेस खिलकौफ के हवाले करे।

१८९३ के अक्टूबर महीने में एक दिन जब प्रिन्स खिलकौफ अपने परिवार की खोज-खबर लेने उनके निवास-स्थान पर गये हुए थे, पुलिस का एक अफसर कुछ सिपाहियों के साथ वहां आ उपस्थित हुआ और बोला कि ज़ार की आज्ञानुसार मैं यहाँ से आपके बच्चों को ले जाने आया हूँ।

प्रिन्स खिलकौफ उसकी इस बात को सुनकर दंग हो गये, कुछ काल तक उनके मुँह से एक शब्द भी न निकला।

"पर रशियन कानून के मुताबिक मेरे बच्चे कहाँ हैं? फिर आप किसे ले जाने को आये हैं?"—प्रिन्स खिलकौफ ने पूछा।

"ठीक है," उत्तर मिला—"तो, मैं आपके नहीं, सिसिली भिनर के बच्चों को ले जाने आया हूँ। यह आज्ञा-पत्र देखिये।"

आज्ञा-पत्र में लिखा था—

"शाहंशाह की आज्ञा से, सिसिली भिनर के अधिकार से उसके बोरिस और ओलगा नामक बच्चों को ले लो और उन्हें प्रिन्सेस खिलकौफ के हवाले करो।"

न्याय और तर्क दोनों ही इस आज्ञा के विरुद्ध थे। किस न्याय-विधान के अनुसार जार ने यह आज्ञा दी थी ? सिसिली भिनर को प्रतिवाद का मौका क्यों न दिया गया ? फिर अगर प्रिन्स खिलकौफ उन बच्चों के न्यायसंगत पिता नहीं थे तो सिसिली भिनर के बच्चों पर प्रिन्सेस खिलकौफ का क्या अधिकार था ?

नहीं, अगर वह उनके न्याययुक्त पिता थे तो उनके जीते-जागते उनके बच्चों पर प्रिन्सेस का किस न्याय से अधिकार होता ? ये प्रश्न ऐसे हैं जिनका अदालत में जार की ओर से कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता था, पर ये बातें औरों के लिए हैं, निरी तथा जार के लिए तो उनका हुक्म ही कानून था।

प्रिन्सेस खिलकौफ भी उक्त पुलिस अफसर के साथ आई थीं पर वह सामने नहीं आईं, बगीचे के एक ओर छिपी रहीं, जहाँ वे दोनों बच्चे खेल-कूद रहे थे। प्रिन्स खिलकौफ इस आज्ञा-पत्र को देखकर इसकी सूचना देने को अपनी पत्नी के पास गये और बच्चों को भी लेते गये। पुलिस का वह अफसर भी उनके साथ-साथ गया, प्रिन्सेस भी गईं। फिर इसके बाद उन बच्चों के विदा होने का समय आया। प्रिन्स खिलकौफ तथा उनकी पत्नी उस पुलिस अफसर के साथ तर्क करना चाहती थीं पर वह रह-रहकर यही उत्तर देता था "कि मैं यह सब कुछ नहीं जानता, मुझे जार की आज्ञा का पालन करना है।" बिचारे बच्चे उनकी बातों को समझने में असमर्थ थे पर माता-पिता के दुःख का अनुभव कर रहे थे और उनकी छाती से लिपटे हुए थे। पुलिस के अफसर ने उन्हें अलग करना चाहा पर वे अलग नहीं हुए। अन्त में जबर्दस्ती वे अपने माँ-बाप की गोद से रोते-रोते अलग किये गये। कुछ काल तक उनका उस पुलिस अफसर के साथ द्वन्द्व-सा होता रहा।

रात भर वे पुलिस स्टेशन (थाने) में रखे गये। दूसरे दिन वे प्रिन्सेस खिलकौफ के हवाले कर दिये गये और वह उन्हें साथ लेकर सेंट पिटर्सबर्ग को रवाना हुईं। प्रिन्स खिलकौफ अपनी पत्नी के साथ एक किराये की गाड़ी पर उनके पीछे-पीछे टिफ्लिस् नामक स्थान के लिए रवाना हुए इस उम्मीद में कि शायद उस प्रान्त का गवर्नर जो टिफ्लिस् में रहा करता था उनकी कुछ सहायता करे।

रास्ते का दृश्य बड़ा ही दुःखदायी था। सिसिली भिनर रह-रहकर अपने बच्चों को गोद में लेने की चेष्टा करती थीं पर उन्हें बार-बार प्रिन्सेस खिलकौफ की ताड़ना, उनके वाक्बाणों तथा भर्त्सनाओं का अनुभव करना पड़ता था। पर वह बेसुध होकर डाँट सहते हुए भी, बाष्पाकुला, उन्हें अपनी गोद में लाने की चेष्टा करती रहीं— यहाँ तक कि इस दृश्यको देखनेवाला उस कोच का ड्राइवर भी हृदय-पीड़ा का अनुभव करने लगा। पर प्रिन्सेस खिलकौफ के दिल पर इसका तनिक भी असर न हुआ। उसने इससे छुटकारा पाने का कोई दूसरा उपाय न देखकर घोड़ागाड़ी से

जाने का इरादा त्याग दिया और रोस्टक् नामक नगर में पहुँचकर एक रेल (ट्रेन) में बोरिस और ओलगा के साथ सवार हो गईं और कुछ ही मिनटों में वे बच्चे प्रिन्स खिलकौफ और सिसिली भिनर की आँखों से ओझल हो गये। उनकी हृदय-वेदना की सीमा न रही। अगर उस समय उनकी दशा देखने वाला कोई वाल्मीकि-जैसा व्यक्ति होता तो उसके हृदय से अवश्य ही छन्दोबद्ध अभिशाप निकल पड़ता।

आशा-मरीचिका ने फिर भी सिसिली भिनर का साथ न छोड़ा। वह यह सोचती हुई, कि शायद स्वयं सेंट पिटर्सबर्ग जाने तथा ज़ार के पास अर्ज़ी देने से उनके बच्चे उनके पास लौट आयें, सेंट पिटर्सबर्ग आ पहुँची और ज़ार के प्राइवेट सेक्रेटरी से मिलीं। उसने उनके साथ बहस-मुबाहसा करके उन्हें, सिसिली भिनर को ही कसूर-वार साबित करने की चेष्टा की, जले पर नमक छिड़का, और इनकी दरख्वास्त नामंज़ूर हो गई। सेंट पिटर्सबर्ग पहुँचकर वह एक बार अपने बच्चों के साथ मिलना, उन्हें छाती से लगाना, चाहती थीं पर उन्हें विश्वास था कि उनकी सास को यह कभी मंज़ूर न होगा। प्रिन्सेस खिलकौफ के मकान की चारों ओर प्रतिदिन घूमतीं कि कहीं बच्चे नज़र आयें पर उन्हें प्रतिदिन निराश ही होना पड़ता था। "वह चार-मंजिल का, बड़ा-सा मकान" उन्होंने एक जगह लिखा है, "मुझे जेलखाना ही प्रतीत होता था जिसकी दीवालों के अन्दर घुसने को मैं तरस रही थी। प्रतिदिन उस मकान की प्रदक्षिणा करके मैं अपने वासस्थान को शून्य तथा भग्न-हृदय के साथ लौटती थी।"

अन्त में एक दिन वह पुनः ज़ार के सेक्रेटरी से मिलीं और उनसे अनुरोध किया कि वह कम से कम एक बार उन्हें उनके बच्चों के साथ मिला दें। उन्होंने इसे स्वीकार करके एक ख़त प्रिन्सेस के नाम लिख दिया जिसे लेकर वह प्रिन्सेस खिलकौफ के पास पहुँचीं। प्रिन्सेस ने उस ख़त को पढ़कर उनसे पूछा कि आप बच्चों के साथ किस प्रयोजन से मिलना चाहती हैं?

इस प्रश्न को सुनकर उनके हृदय में बड़ी पीड़ा हुई और उन्होंने आवेश के साथ उत्तर दिया कि आपको यह प्रश्न ही न पूछना था।

प्रिन्सेस ने यह कहते हुए कि अच्छी बात है, पर आप आध घंटे से ज्यादा उनके साथ नहीं ठहर सकतीं, उनके दोनों प्यारे बच्चों को उनके पास बुलवा दिया, और स्वयं भी वहीं बैठी रहीं।

सिसिली भिनर को यह देखकर और भी दुःख हुआ कि उनके बच्चे उन्हें पह-चान न सके। ओलिया ने कहा—

"तुम किसी दूसरे की माँ हो; हम दोनों की माँ नहीं है।"

बोरिस ने कहा—"आया ने तो कहा था कि हम दोनों की माँ मर गई।"

सिसिली ने उन्हें समझाया कि उसने उन्हें गलत बात बतलाई थी, उनकी

माँ जीती है और उनके साथ बड़ा प्रेम करती है। उसे केवल इसी बात की चिन्ता बनी रहती है कि उसके बच्चे कहीं उसे भूल न जायँ।

आधा घंटा समाप्त हो जाने पर वह निराश, असहाय और भग्नहृदय अपने वासस्थान को लौटी। लौटकर उसने उनके सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये थे—

सर्वप्रथम वे मुझे उस छोटी चिड़िया के समान प्रतीत हुए जो पकड़कर सोने के अलंकृत पिंजड़े में बन्द कर दी गई हो। वे खूब ठाट-बाट के साथ रहते हैं, खाने को तरह-तरह की मिठाइयाँ दी जाती हैं, सभी उनके हित की कामना करते हैं, परन्तु वे सूर्य के प्रकाश से वंचित रखे गये हैं, उसकी उष्णता और उसकी स्वतन्त्रता उन्हें प्राप्त नहीं। उनके चेहरे पर मुर्झाहट थी जिसे देखकर मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो गया। मुझे आशा थी कि मैं उन्हें स्वस्थ देखूँगी पर इसके बदले मैंने उन्हें पीले पड़े, मुर्झाये आरणभूत शक्ति से विहीन पौधों की भाँति पाया। जब वे हमारे साथ थे तो शायद ग्रामीण की भाँति नजर आते थे पर उनमें बल था, हट्टे-कट्टे थे और उनके मुँह पर स्वास्थ्य के चिन्ह थे, पर अब वे रुग्ण-से दीख पड़ते हैं और उनके मुँह पर की लालिमा का ह्रास हो गया है।"

अन्ततः निराश होकर सिसिली मिनर अपने पति के पास लौट आई। देश-निर्वासन की अवधि समाप्त होने पर प्रिन्स खिलकौफ सपत्नीक कैनाडा चले गये और कुछ दिनों तक वहीं निवास किया। फिर व दोनों इंग्लैण्ड गये और वहीं रहने लगे। कालान्तर में उन्हें दो और सन्तान हुई—एक पुत्र और एक पुत्री, जिससे उनके दुखी हृदय को बहुत कुछ परितोष प्राप्त हुआ, पर उनके इंग्लैण्ड रहने के कारण ज़ार उनका अपहरण न कर सके। १९०५ के 'कॉन्स्टीट्यूशनल (व्यवस्थानुरूप) मैनी-फेस्टो (घोषणापत्र)' के प्रकाशन के बाद वे अपने पुराने स्थान को लौट आये और अपना समय खेती-बाड़ी में बिताने लगे। साथ-साथ दूसरों की जो कुछ सेवा वे कर सकते थे, करते थे।

१२

कीच से कमल

एक पुलिस अफसर की पुत्री का देशानुराग

ज़ार के शासन के समय में रूस का ऐसा कोई सरकारी पदाधिकारी न था जिसे वहां की जनता नीची निगाह से न देखती हो, उनमें भी पुलिस-विभाग के अफसर तो नीचता के ठेकेदार ही माने जाते थे, क्योंकि संसार का ऐसा कोई भी नीचातिनीच कर्म न था जिसे वे न करते हों, मनुष्य का कहाँ तक नैतिक पतन हो सकता है, इसका वे उज्ज्वल दृष्टांत थे। एक ऐसे ही गर्ह्यतम पुलिस पदाधिकारी के घर में सोफी बारडिना-जैसी नारी-रत्न का जन्म हुआ था—पङ्क ने पद्म को जन्मदान दिया था!

सोफी के पिता इलारिअन बार्डिन एक अत्याचारी पुलिस अफसर थे और उनका अत्याचार इतना बढ़ा-चढ़ा था कि स्वयं अपने घर में भी वह इससे बाज नहीं आते थे। सोफी का जन्म १८५३ में हुआ था और स्थानीय सरकारी कन्या-पाठशाला में उसने शिक्षा पाई थी। स्कूल की परीक्षाओं को वह नामवरी के साथ पास करती गई···और इसके लिए उसे प्रतिवर्ष पुरस्कार भी मिला। उच्च शिक्षा प्राप्त करने को वह १८७१ में मास्को आई और वहीं उसने सर्वप्रथम साम्यवादी एवं निहिलिस्ट विचार-धाराओं में गोते लगाये।

मास्को में आचार-विचार की पूरी स्वतन्त्रता तथा उच्च शिक्षा का पूरा सुभीता न होने के कारण वह दो और छात्राओं के साथ कुछ ही दिनों के बाद, स्विट्जरलैण्ड के जुरिच नामक स्थान के लिए रवाना हो गई। जुरिच में उन दिनों रूस के बहुत से युवक-युवतियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही थीं। उनके साथ उसका शीघ्र ही काफी परिचय हो गया। देश के अपढ़, अज्ञानान्धकार में पड़े हुए, लोगों के प्रति शिक्षित समाज का यह परम कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह उन्हें जाकर शिक्षा प्रदान करे, उनमें जागृति लाये तथा उनके जीवन को सुखमय बनाने की चेष्टा करे—ये विचार उसके मस्तिष्क में बहुत दिनों से चक्कर काट रहे थे। जुरिच पहुँचकर ये और भी दृढ़ हो गये और उसने अपने इन विचारों का जुरिच में खूब प्रचार किया। देश-सेवा की उस समय नवयुवकों के हृदय में कुछ ऐसी लगन लगी हुई थी और रूस

की दुरवस्था की उनके जी में इतनी सख्त कसक थी कि सोफी के इन विचारों को सबों ने खूब पसन्द किया और जुरिच से विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा प्राप्त करने की अभिलाषा का त्याग करके वे तत्काल रूस लौटकर किसानों और मजदूरों के बीच शिक्षा-प्रचार का प्रोग्राम बाँधने लगे। सोफिया ने उन्हें समझाया कि सहसा किसी काम में पड़ जाना बुद्धिमानी नहीं है, इस काम को अपने ऊपर उठाने के पहले उन्हें समाज-शास्त्र का पूरा अध्ययन कर लेना चाहिए और स्वतन्त्र पेशे के लिए अपने आपको तैयार कर लेना चाहिए। अपने लिए उसने लेडी डॉक्टर का पेशा अख्तियार करने का निश्चय किया तथा और विषयों की पढ़ाई छोड़कर डॉक्टरी का अध्ययन करने लगी।

उधर रूसी सरकार को जब जुरिच के रूसी छात्र-समाज की क्षिप्रकारिता का पता चला तो उसने १८७३ के जून महीने में एक आज्ञा-पत्र निकाला कि स्विट-जरलैण्ड में रहने वाली सभी छात्राएँ बिना विलम्ब उस देश से निकल जायँ और रूस को लौट आयें। फलतः इच्छा नहीं होते हुए भी उन्हें विवश होकर रूस लौटजाना पड़ा।

रूस लौटकर उन्होंने सेंट पिटर्सबर्ग में गुप्त क्रान्तिकारी सभा की स्थापना की और गुप्त रूप से ही क्रान्ति का प्रचार करने लगीं, किसानों और मजदूरों को जार-शाही के खिलाफ उभाड़ने लगीं। मुट्ठी भर अल्पवयस्क छात्र और छात्राओं का जार-शाही जैसी प्रबल शक्ति के विरुद्ध बगावत के झंडे उठाना, युद्ध का आरम्भ करना, उनके साहस और उत्कृष्ट स्वातन्त्र्य-प्रेम का परिचायक है। इस सम्बन्ध में हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि उस समय जिन किसानों और मजदूरों के उद्धार के लिए वे लड़ाई लड़ रही थीं उनकी उनके साथ कुछ भी सहानुभूति न थी।

किसानों के पास पहुँचना तो सहल था, डाक्टर, नर्स, शिक्षक-शिक्षिका बन-कर वे ग्रामों में निवास तथा क्रान्ति का प्रचार कर सकते थे, और करते थे पर कार-खानों की चहारदिवारियों के अन्दर बन्द मजदूरों में क्रान्ति का सन्देश पहुँचाना मुश्किल था, एक जटिल समस्या थी। इसके लिए एक ही उपाय था—स्वयं मजदूर बनकर उनके अन्दर जा पड़ना। मजदूरों का जीवन उन दिनों आज का-सा न था, उनकी दशा पशुओं से भी बदतर थी। उन्हें जो भोजन मिलता था वह इतना गन्दा और सड़ा हुआ होता था कि उसे मनुष्य खा सकता है इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। एक तो दुर्गन्धमय छोटी-छोटी कोठरियों में उन्हें सोना पड़ता था तिस पर भी उनमें इतने आदमी एक साथ ठूँसे रहते थे कि एक आदमी को सोने भर की जगह भी मुश्किल से मिलती थी। कमरों में उनकी गन्दगी के कारण कीड़ों की भर-मार थी। मनुष्य के चरित्र पर उसके रहन-सहन का बड़ा प्रभाव पड़ता है सो ये मजदूर भी शीघ्र ही चरित्रहीन हो जाते थे और वह भी अव्वल दर्जे के। जुआ खेलना,

शराब पीना, औरतों के साथ बलात्कार करना—यह उनकी दैनिक क्रियायें थीं।

पर, कारखानों के इस नीच जीवन से तनिक भी विचलित न होकर तथा मजदूरों के पास क्रान्ति का सन्देश पहुँचाने का कोई दूसरा उपाय न देखकर उन तरुण क्रान्तिकारियों ने, युवक तथा युवतियों ने, उनमें मजदूर बनकर ही प्रवेश करने का निश्चय किया और अपने नाम बदलकर उनमें जा घुसे। उन्हें दिन भर कड़ा परिश्रम करना पड़ता था। नरक-जीवन, जिसका ऊपर जिक्र किया जा चुका है, बिताना पड़ता था पर देश की स्वतन्त्रता के लिए वे सब कुछ सहते थे। पुरुषों की अपेक्षा उन तरुणी स्त्रियों का साहस अधिक प्रशंसनीय है जिन्हें इस कष्टमय जीवन के साथ-साथ दुश्चरित्र मजदूरों के आक्रमण का भी भय बना रहता था।

सोफी अन्ना के नाम से एक फैक्टरी में दाखिल हुई। वहाँ उसने सर्वप्रथम फैक्टरी की मजदूरिनों को जगाने का प्रयत्न किया पर वह निष्फल हुआ। दिन भर के कड़े परिश्रम के बाद किस में इतनी शक्ति रहती थी कि वह उसकी बातों पर ध्यान दे! पर इस असफलता से वह जरा भी निरुत्साहित नहीं हुई। उसने पुरुषों के, मजदूरों के, बीच क्रान्ति के सन्देश पहुँचाने का निश्चय किया; पर एक तरुणी स्त्री के लिए मजदूरों के समाज में उपस्थित होना बड़े खतरे का काम था। पर 'होनी होय सो होय' का ख्याल करके वह एक दिन मजदूरों के वासस्थान में जा घुसी। सुअवसर पाकर उसने एक रोचक उपन्यास पढ़कर उन्हें सुनाना शुरू किया। परिणाम यह हुआ कि वह शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई तथा मजदूर उसे सम्मान और आदर की दृष्टि से देखने तथा उससे नयी कहानियां सुनने को समुत्सुक रहने लगे। वह भी यथासाध्य उनकी इस इच्छा को पूरा करने लगी, साथ-साथ क्रान्तिकारी विचारों के प्रचार में भी संलग्न रही। फैक्टरी में उसे १५ घंटे नित्य काम करना पड़ता था पर चूँकि उसे इस बात का सन्तोष था कि वह मजदूरों में क्रान्ति के बीज बो रही है, सुकुमार शरीर होते हुए भी वह हँस-हँसकर इसे सह रही थी।

मजदूरों के बलात्कार से बचना असम्भव जानकर बहुत सी क्रान्तिकारी स्त्रियों को फैक्टरियों से निकल जाना पड़ा पर सौभाग्य से सोफी बार्डिना को ऐसा मौका न आया। मजदूर उसके साथ स्वयं ही बड़े सम्मान का व्यवहार करते थे। पर एक दिन उसके बाँटे हुए कुछ क्रान्तिकारी पर्चों को फैक्टरी के अंग्रेज मैनेजर ने देख लिया और उसे अपने आफिस में उठा ले गया। अब और वहां ठहरना उचित न जानकर सोफी बार्डिना ने एक दिन फैक्टरी से प्रस्थान कर दिया।

उन दिनों सेंट पिटर्सबर्ग में क्रान्तिकारियों ने ऐसे बहुत से मकान भाड़े पर ले रखे थे जिनमें क्रान्तिकारियों की मंत्रणाएँ हुआ करती थीं तथा भागे हुए क्रान्तिकारी प्रच्छिन्न रूप से रहा करते थे। ऐसे ही एक मकान में सोफी बार्डिना भी आकर ठहरी

पर साथ-साथ क्रान्तिकारी आन्दोलन में पूरा भाग भी लेती रही। पर एक दिन क्रान्तिकारी दल की ही एक स्त्री ने जो सोफिया को पकड़वाकर अपने एक प्रेमी की जान बचाना चाहती थी, उसके वासस्थान की सूचना पुलिस को दे दी और वह गिर-फ्तार कर ली गई। उसके और बहुत से साथी स्त्री-पुरुष, क्रमशः गिरफ्तार हो गये और उन सबों के मुकदमे की सुनवाई १८७६ में हुई जो '५० क्रान्तिकारियों की सुनवाई' के नाम से विख्यात है। प्रधान जज के यह पूछने पर कि तुम्हारे राजनैतिक विचार क्या हैं उसने इस सुन्दरता के साथ देश की दुरवस्था तथा अत्याचारी शासन-विधान की क्रूरता एवं न्याय और स्वतन्त्रता की आवश्यकता और अपने दल के उद्देश्य तथा कार्यक्रम को बतलाया कि उस २३ वर्ष की तरुणी के इस वाक्चातुर्य एवं प्रतिभा को देखकर जज भी आश्चर्य-चकित हो गये थे। उसने अपने ऊपर लाये गये अभियोगों का तर्क के साथ खंडन किया किन्तु क्रान्तिकारी दल के साथ अपने सम्बन्ध को स्वीकार करते हुए कहा—

"···पर मैं आपकी क्षमा की याचना नहीं करती। मेरा यह विश्वास है कि वह दिन अवश्य ही आयगा जब कि यह सोता हुआ, आलस-रत, राष्ट्र भी जग उठेगा और इतने दिनों तक अत्याचारी के पैरों से ठुकराये जाने के अपमान को अनुभव करने लगेगा। आप हम लोगों पर मुकदमा चला लें, हमें दोषी करार करके दण्ड दे दें। आपके पास शरीर-बल है, आप सब कुछ कर सकते हैं, पर हमारे पास भी धर्मबल है, विचारों की शक्ति है जो अन्त में अवश्य ही विजयी होगी, आपकी बन्दूकों पर विजय प्राप्त करेगी, जैसा कि इसने एक नहीं कई बार संसार में किया है।"

प्रत्युत्तर में उसे ९ वर्ष साइबेरिया की खानों में काम करने की सजा मिली पर चूँकि दो वर्ष तक हवालात की यातनायें सहने के कारण उसके स्वास्थ्य का संहार हो गया था, यह सजा बदल दी गई और उसे साइबेरिया के इशिम नामक एक जघन्य (निकृष्टतम) स्थान में आजन्म निवास का दण्ड मिला।

साइबेरिया का जीवन उसके लिए बड़ा ही दुःखदायक था—विशेषतः इसलिए कि उसकी स्नेह-प्रकृति थी और वह अपने मित्रों-सहचरियों से अलग नहीं रह सकती थी। चार वर्ष तक एकाकी जीवन बिता चुकने के बाद उसने एक दिन भाग निकलने का निश्चय किया और १५ दिसम्बर, १८८० को वहाँ से यूरोप के लिए रवाना हो गई। राह में अनेक यातनाओं—कठिनाइयों—को सहकर वह अन्तमें कजान पहुँची जहाँ उसके कुछ मित्र उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सोफी को देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ क्योंकि चार ही वर्षों में उसके शरीर की दशा कुछ और ही हो गई थी—उसकी सुन्दरता, चपलता और शक्ति का बिलकुल ही विनाश हो गया था। उसका वह शरीर पूर्व-शरीर की केवल छायामात्र थी; रक्तमाँस से विहीन केवल हड्डियां बच रही थीं।

कजान से प्रस्थान करके वह रूस आई और २८ साल तक इधर-उधर घूमती रहीं पर क्रान्तिकारी आन्दोलन में स्वास्थ्य खराब होने तथा पुलिस की सूक्ष्म दृष्टि से छिपते रहने के कारण, कोई भाग न ले सकी। अन्ततोगत्वा अपने कुछ शुभाकांक्षी मित्रों के परामर्श से वह रूस छोड़कर स्विट्ज़रलैण्ड चली गई और वहाँ के जिनेवा नामक सुन्दर स्थान में रहने लगी। उसके मित्र उसको हर तरह से सहायता पहुँचाते तथा उसकी सेवा करते थे पर जीवन में उसके लिए कोई आकर्षण न रह गया था। उसे इस बात की हार्दिक पीड़ा बनी रहती थी कि उससे देश की कुछ भी सेवा नहीं हो रही है वरन् अपने मित्रों पर वह भारस्वरूप बनी हुई है। उसके मित्र उसे हँसाने की चेष्टा करते और उनके साथ वह हँसती, मजाक करती, पर उसके हृदय की वह व्यथा कभी दूर नहीं होती थी। अन्ततः १३ अप्रैल, १८८३ को उसने आत्म-हत्या करने का निश्चय कर लिया और अपने ऊपर आप ही पिस्तौल चला ली। दो बार असफल हुई, निशाना ठीक न बैठा, पर तीसरे दफे गोली उसके हृदय पर आ लगी और वह गिर पड़ी। दो घंटे तक वह पीड़ा अनुभव करती रही पर किसी को पुकारा नहीं। ६ बजे उसके मकान की मालकिन ने आकर उसे देखा और उसे तत्काल अस्पताल ले गई। वहाँ वह १२ रोज तक जीती रही पर किसी ने उसके मुँह से आह निकलते नहीं देखी। १३वें दिन उसने अपनी मानव-लीला समाप्त कर दी।

१३

आँसुओं से रंगे चित्र

रूस के प्रसिद्ध उपन्यासकार डिस्ट्वायवेस्की ने, जो स्वयं साइबेरिया की यातनाओं को झेल चुके थे, अपनी एक पुस्तक में साइबेरिया के दुःखमय जीवन का वर्णन किया है जो अकृत्रिम एवं भावपूर्ण है पर उससे भी ज्यादा भावपूर्ण हैं वे चित्र जो अलेक्जेण्डर सोश्चाज्वेस्की (Sochaezewsky) नामक एक चित्रकार ने अंकित किया है। साइबेरिया की दारुण विपत्ति का वह स्वयं अनुभव कर चुका था, अतएव अपने चित्रों में काल्पनिक नहीं, सच्ची घटनाओं का उसने चित्रण किया है। अतएव उसके ये चित्र स्मारक-चिह्न के समान हैं। उन्हें अमरत्व प्राप्त हो चुका है।

अलेक्जेण्डर सोचाज्वेस्की का जन्म रशियन पोलैण्ड के एक उच्च वंश में १८४३ में हुआ था। छुटपन से ही उसकी प्रकृति चित्रकारी की ओर थी और १८५६ में वह वार्सा के 'आर्ट-एकेडमी' में प्रविष्ट हुआ था। उन दिनों पोलैण्ड में जारशाही के खिलाफ जोरशोर के साथ आन्दोलन चल रहा था जिसके फलस्वरूप १८६३ में वहां विद्रोहाग्नि धधक उठी। प्रक्षिप्त रूप से विद्रोह के लिए लोगों को उभाड़ने वाले युवकों के साथ अलेक्जेण्डर भी चित्रकारी छोड़कर जा मिला! पोलैण्ड के इस राजविद्रोह का रूसी सरकार ने शीघ्र ही बड़ी निर्दयता के साथ दमन किया तथा उसकी आज्ञा से कई हजार पोल कत्ल किये गये, उससे कई गुना अधिक आदमी साइबेरिया की खानों में देश-निर्वासित होकर भेजे गये। कत्ल होने वाले पोलों में बहुतेरे ऐसे थे जिन्होंने विद्रोह में कतई भाग नहीं लिया था पर रूसी सरकार के लिए दोषी-निर्दोषी का भेदभाव न था, वह सबको समान दृष्टि से देखती थी।

अलेक्जेण्डर तथा उसके तीन और साथियों को फांसी की सजा मिली पर दो के फांसी पर चढ़ जाने के बाद यह आज्ञा रद्द कर दी गई और सौभाग्य से उसके प्राण बच गये पर वह जन्म भर के लिए साइबेरिया भेज दिया गया। वहाँ उसे खानों में दिन-रात खटना पड़ता था। साइबेरिया के भयानक कष्टों का, जिसे सुनकर हमें रोमाञ्च हो जाता है, उसने स्वयं अनुभव किया था। अलक्जेण्डर सोच ज्वेस्की उन

कारण कष्टों के सहने में असमर्थ होकर म्रियमाण-सा हो रहा जब कि अलेक्जेण्डर द्वितीय की आज्ञानुसार साइबेरिया के सभी कैदियों की अवधि घटाकर आधी कर दी गई। सोचाज्वेस्की के सम्बन्ध में यह समस्या आ उपस्थित हुई कि उसे कितने दिनों तक साइबेरिया में रखा जाय, क्योंकि उसे 'आजन्म' निर्वासन की सजा मिली थी। अन्त में यह सोचकर, कि साइबेरिया के कष्टों को कोई भी २० वर्षों से अधिक नहीं सह सकता, उनके जीवन की अवधि २० वर्ष की समझी गई। तदनुसार उसे १० वर्ष तक वहाँ रखने का निश्चय हुआ। १० वर्ष बीत चुकने के बाद वह छोड़ दिया गया। साइबेरिया से लौटकर वह चित्रकारी में लगा और कई ऐसे अमूल्य चित्रों को जन्मदान दिया जिसके लिए संसार उसे सदैव स्मरण रखेगा।

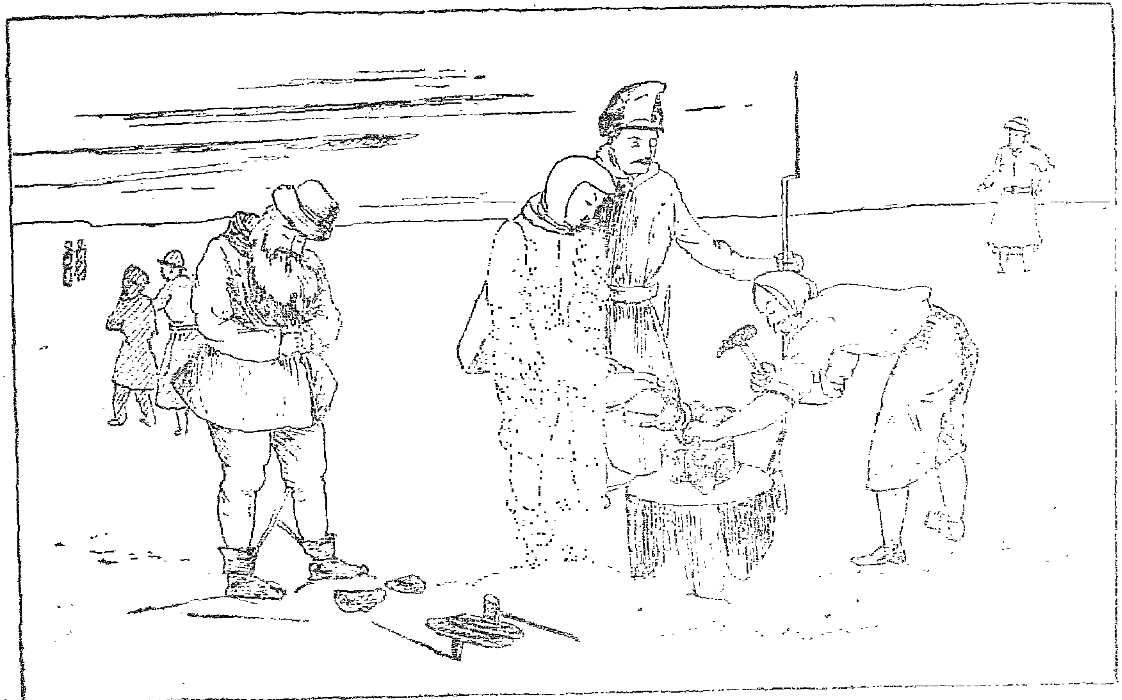
उसके चित्रों में तीन चित्र बड़े मशहूर हैं और उनसे साइबेरिया के जीवन-सम्बन्धी कई बातों का ज्ञानोद्दीपन भी होता है। इसका वर्णन संक्षेप में नीचे दिया जाता है—

१—वारसा की एक मैडम गुडजिन्स्का नामी रमणी के मकान के सामने एक पोलैण्ड की स्वतन्त्रता के विरोधी (ज़ारशाही के प्रतिपक्षी) व्यक्ति की किसी ने हत्या कर डाली। उस हत्यामें उसका कुछ भी हाथ न था तथापि उन्हें देश-निकालेकी सजा मिली और साइबेरिया जाना पड़ा। साइबेरिया की खानों में कैदियों को काम बाँटने वाले अफ-सर ने उसके अलौकिक सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उससे प्रस्ताव किया कि वह उसके घर में गृहदासी बनकर रहना स्वीकार कर ले। मैडम गुडजिन्स्का उसके मनोभाव को समझ गईं और उन्होंने उसके इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। फल यह हुआ कि उस अफसर ने क्रुद्ध होकर, उनकी सुकुमारता पर जरा भी ध्यान न देकर, उन्हें एक कठिन काम पर लगा दिया। एक मुसलमान कैदी जिसके हृदय में दया का लेशमात्र भी न था, ईसाई कैदियों का गार्ड मुकर्रर किया था। मैडम गुडजिन्स्का जब काम करते-करते थक जातीं और क्षण भर के लिए विश्राम लेने लगतीं तो वह निर्दयी गार्ड उन्हें डंडे दिखलाता था। 'मैडम गुडजिन्स्का' शीर्षक चित्र में यही दृश्य अंकित किया गया है। बर्फों के बीच में बैठी हुई परिश्रमक्लान्ता इस रमणी को यह दुष्ट डंडा दिखला रहा है। कहना न होगा कि मैडम गुडजिन्स्का कुछ दिनों के बाद इस संसार से चल बसीं। उनके साथ अलेक्जेण्डर सो० का पूरा परिचय था और उनकी कब्र पर उसने आँसू बहाये थे।

२—साइबेरिया में खानों को जाते हुए कैदी पैर की जंजीर के कारण बर्फ से भरी हुई जमीन पर आगे नहीं बढ़ सकते थे। अतएव कभी-कभी पैर की बेड़ियाँ सुबह में उनके पाँवों से निकाल ली जाती थीं और पुनः शाम को काम के बाद उनके पैरों में लगा दी जाती थीं। इन बेड़ियों को एक लुहार हथौड़ी से मार-मारकर लगाता



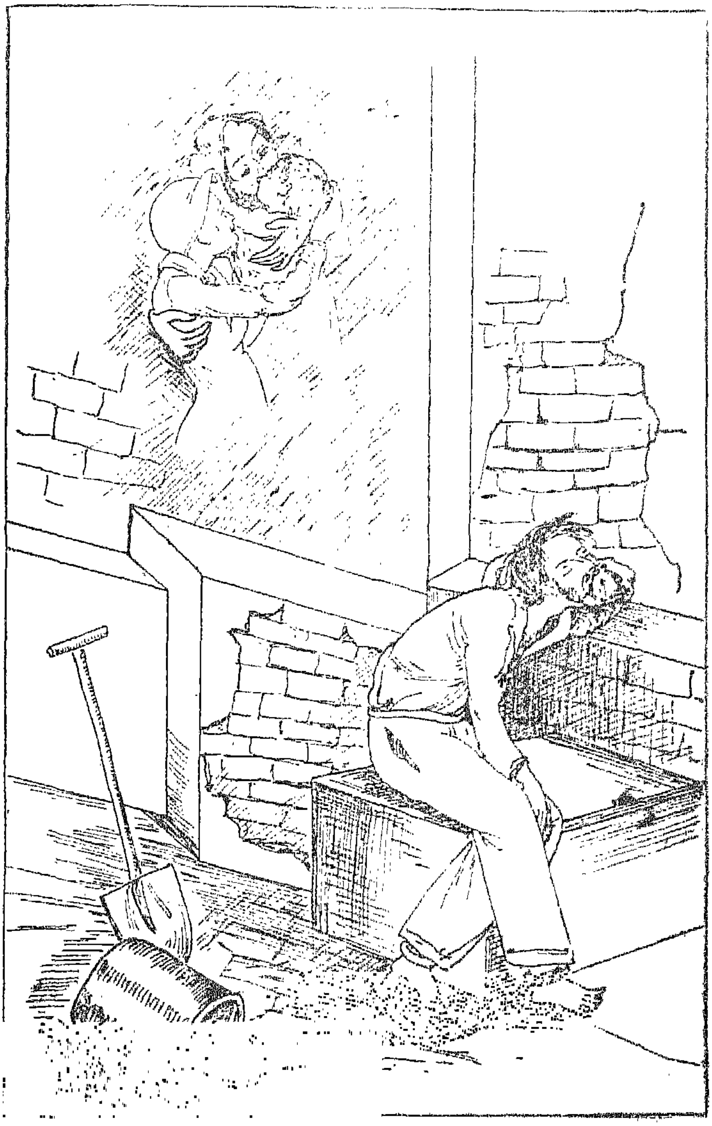
बर्फों के बीच बैठी हुई परिश्रमक्लान्ता मैडम गुडजिन्स्का को कैदियों का गार्ड डंडा दिखा रहा है।—प्रसिद्ध क्रान्तिकारी चित्रकार सोचाज्वेस्की का एक मशहूर चित्र।



प्रसिद्ध क्रान्तिकारी चित्रकार सोचाज्वेस्की का प्रसिद्ध चित्र 'सुबह-शाम !'—साइबेरिया में रहने वाले एक कैदी के पांव में लुहार हथौड़ी से जंजीरें पहना रहा है। इस चित्र में स्वयं चित्रकार ने अपने आपको ही अंकित किया है।

था और वह भी इस ढंग से कि बिना हथौड़ी की मार के वे खुल नहीं सकती थीं। यह रोज का किस्सा था। अपने 'सुबह शाम' नामक चित्र में अलेक्जेण्डर ने इसी दृश्य का चित्रांकरण किया है। लुहार अपनी हथौड़ी से एक कैदी के पाँवों में जंजीर डाल रहा है और यह कैदी दूसरा कोई नहीं, स्वयं चित्रकार ही है। उसके पीछे एक वृद्ध पुरुष खड़े हैं जो पहले पोलैण्ड के एक मशहूर और धनी व्यापारी थे पर अब साइबेरिया में कैदी बने हुए हैं और दिन भर खानों में खटते हैं। उनके भी पाँवों में जंजीरें लगी हुई हैं। उनके परिवार के सब लोगों को रूसी सिपाहियों ने मार डाला था, केवल एक पुत्र जख्मी होकर बच रहा था जो उनके साथ ही साइबेरिया की जेल-यातनाएँ सह रहा था।

३—साइबेरिया की सरहद पर एक स्तम्भ बना हुआ था जिसकी एक ओर पर्म नामक यूरोपियन प्रान्त था और दूसरी ओर टोबल्स्क नामक एशियन प्रान्त। साइबेरिया जाने वाले कैदी इस स्तम्भ के पास कुछ काल तक विश्राम करते थे। पहले बहुधा इस स्तम्भ के पास पहुँच चुकने पर कैदियों की सजा या तो घटा दी जाती थी या बिलकुल ही माफ कर दी जाती थी। अतएव कैदियों के परिवार के पुरुष—माँ, बाप, स्त्री, पुत्र इत्यादि यहाँ तक आशासूत्र में बँधे हुए आते थे और आशा पूरी न होनेपर शोक-सन्तप्त होकर रोते-रोते उन्हें विदा देते थे। विदाईका दृश्य बड़ा ही हृदय-विदारक होता था। एक दूसरे को हृदय से लगाते थे, चुम्बन करते थे और रोते थे फिर बर्फ से ढकी हुई राह से जिसकी ओर-छोर का कोई पता न जान पड़ता था वे साइबेरिया के लिए रवाना होते और कुछ ही देर में अपने प्रियजनों की आँखों से ओझल हो जाते थे। कहते हैं एक बार जार निकोलस प्रथम ने सड़क पर कैदियों के साथ जाते हुए उनके परिवार के स्त्री-पुरुषों के झुंड को देखकर पूछा था कि ये इनके साथ कहाँ जा रहे हैं? कमांडिंग अफसर के यह कहने पर, कि ये सरहद के स्तम्भ तक इस आशा में जा रहे हैं कि शायद वहाँ इन कैदियों को माफी मिल जाय और ये यहां से लौट आयें, जार ने आज्ञा दी कि भविष्य में इस तरह की माफी किसी को न दी जाय। तब से कैदियों के साथ उनके परिवार के लोगों का इस सरहद-स्तम्भ तक आना रुक गया। पर स्तम्भ के पास कैदियों के कुछ देर तक ठहरने की प्रथा पूर्ववत् जारी रही और साइबेरिया की ओर जाने वाले कैदियों का करुणापूर्ण रुदन ज्यों का त्यों बना रहा। फर्क इतना था कि अपने बन्धु-बान्धवों के चुम्बन और आलिंगन के स्थान पर वे अब अपने घर की ओर मुँह करके घुटनों के बल ईश-विनय करते थे और पाये की इस ओर की जमीन से मिट्टी उठाकर अपने पास रख लेते और रोते हुए साइबेरिया की ओर अपना कदम उठाते थे। चूँकि सौ में दो-चार ही ऐसे व्यक्ति होते थे जिन्हें पुनः अपनी मातृभूमि का मुंह देखने का सौभाग्य होता था; सीमा



साइबेरिया का एक दृश्य।

साइबेरिया की खान में जंजीरों से बँधे हुए देश-निर्वासित प्रिन्स भौलखोन्सकी अपनी प्यारी पत्नी तथा बच्चे का स्वप्न देख रहे हैं।

पार करते समय उनके हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे।[1]

अलेक्जेण्डर सोबाजेस्की ने इसी दृश्य को अपने 'साइबेरिया सीमा-स्तम्भ के पास की बिदाई' नामक चित्र में बड़ी कुशलतापूर्वक अंकित किया है। इस चित्र की लम्बाई ३० फुट तथा चौड़ाई १४ फुट है और इसमें प्रायः ३० ऐसे व्यक्तियों के स्वरूप अंकित किये गये हैं जो काल्पनिक नहीं, वास्तविक हैं। संसार में शायद ही ऐसा कोई सीमा-स्तम्भ होगा जिससे होकर इतने भग्न-हृदय बटोही गुजरे होंगे।

१—साइबेरिया में कैदियों के साथ जो घोर अमानुषिक व्यवहार होता था और उन्हें जो दारुण यातनाएँ सहनी पड़ती थीं, वे वर्णनातीत हैं। उनकी चर्चा मात्र से ही कड़े से कड़े हृदय वाले मनुष्यों को भी रोमाञ्च हो आता है। उदाहरण के लिए, कैदियों को पीड़ा पहुँचाने की एक अति कुत्सित रीति का यहाँ उल्लेख किया जाता है।

एक छोटी-सी गुहा (कन्दरा) में जिसमें आदमी मुश्किल से खड़ा हो सकता था, तरह-तरह के कीड़े-मकोड़े पाले जाते थे और उसी में अपराधी को बन्द कर देते थे। मनुष्य की गन्ध पाते ही वे कीड़े उस पर आक्रमण करते और उसका खून चूसने लगते थे। प्रकाश न होने के कारण वह मनुष्य उन्हें पूर्णतः देख न सकता था। केवल उनके काटनेका दारुण दुःख अनुभव मात्र ही कर सकता था। कई दिनोंतक यहीहालत रहती थी। कभी-कभी एक छोटे से छिद्र की राह से दो-चार चपातियाँ अन्दर फेंक दी जाती थीं ताकि वह कुछ दिनों तक जीता रहे और उन यातनाओं को सहता रहे। अपनी शक्ति भर वह उन विषैले कीड़ों से लड़ाई लड़ता था पर अन्त में क्लांत और निस्सहाय होकर प्राण परित्याग कर देता।

१४

करुण गीत

रूस के श्लुस्सेलबर्ग (Schlusselburg) नामक दुर्ग का नाम बहुत लोगों ने सुना होगा। यह एक भीषण कारागार था जिसमें एक बार जाकर बिरले ही मनुष्य जीते-जागते लौटते थे। इस जेल के अधिकांश कैदी या तो पागल होकर अथवा आत्महत्या करके या संघातिक रोगों के शिकार बनकर शीघ्र ही सुर-धाम सिधार जाते थे। श्लुस्सेलबर्ग के कैदियों को किसी से अपने निकट सम्बन्धियों, माता-पिता पुत्र-पौत्रआदि तक से—मिलने की आज्ञा न थी। एक बार जो वहां भेज दिया जाता था फिर उसकी कोई खबर संसार को नहीं मिलती थी। अतः जब १९०४ के अक्टूबर महीने में यह समाचार लोगों को मिला कि भिरा फिगनर श्लुस्सेलबर्ग के कारागार से मुक्त हुई है तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

१० साल तक श्लुस्सेलबर्ग में कैद रहने वाली भिरा का जन्म एक कुलीन तथा धनी परिवार में हुआ था। उसके पूर्वज फौज के मशहूर अफसर रह चुके थे। धनी समाज की लड़कियों की जिस प्रकार की शिक्षा-दीक्षा होती है, भिरा की भी वैसी ही हुई थी। वह शुरू से ही खुशमिजाज और चंचल थी, अतएव घर वाले उसे बहुत चाहते थे। यह कौन जानता था कि उसके प्रफुल्ल-परिहासशील-प्रकृति के अन्दर गम्भीरता को भी उतना ही स्थान है और उसका भावी जीवन किसी धनाढ्य के महल में नहीं बल्कि श्लुस्सेलबर्ग-जैसे कुत्सित कारागार में व्यतीत होगा। ज़ार अलेकजेण्डर द्वितीय का अनाचार अपनी पराकाष्ठा को पहुँच चुका था और रूस के शिक्षित-समाज में उसके फलस्वरूप क्रान्ति की आग सुलग रही थी। भिरा फिगनर की उम्र उस समय बहुत कम थी, क्रान्ति आन्दोलन में भाग लेने के योग्य न थी पर अपनी बहन के साथ जुरिच में शिक्षा-लाभ करती हुई वह क्रान्तिकारियों के वाद-विवाद को ध्यान-पूर्वक सुनती थी तथा अपनी मातृभूमि की दुरवस्था पर गम्भीरतापूर्वक विचार करती थी।

इतने में ही, १८७३ में, रूस के बहुत से तरुण सुधारवादी गिरफ्तार करके जेल में डाल दिये गये जिनमें भिरा की बड़ी बहन लीडिया तथा सोफी बार्डिना, जिसके

सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है, भी सम्मिलित थीं। भिरा ने इस संवाद को सुन-कर अपनी पढ़ाई स्थगित कर दी और अपने भाई-बहनों को सहायता पहुँचाने के उद्देश्य से रूस लौट आई। सौन्दर्य, शिष्ट स्वभाव एवं मीठी बातों से उसने जेलर के ऊपर प्रभाव जमा लिया और उसकी जानकारी में ही वह जेल के उक्त राजनैतिक कैदियों को हर तरह की सहायता पहुँचाने लगी। कई वर्षों तक उसका यही कार्यक्रम रहा पर अन्त में देश की दशा से दुखित तथा ज़ारशाही के दुराचार को दिन-प्रतिदिन बढ़ते देखकर वह क्रान्तिकारी दल के साथ जा मिली और बड़े उत्साह के साथ क्रान्ति-आन्दोलन में भाग लेने लगी। भिरा पर जब आगे चलकर मुकदमा चला था तो उसमें गवर्नमेंट की ओर से यह कहा गया था कि ज़ार की हत्या करने की जितनी चेष्टाएँ हुईं उन सब में उसने प्रमुख भाग लिया था। समय की भयंकरता साफ-साफ परि-लक्षित थी। ज़ार ने क्रान्तिकारी आन्दोलन के मूलोच्छेद का दृढ़ संकल्प कर लिया था और एक-एक कर प्रमुख क्रान्तिकारी फाँसी पर लटकाये जा रहे थे। पर भिरा फिग-नर इससे तनिक भी विचलित नहीं हुई बल्कि दूने उत्साह के साथ क्रान्ति के संगठन में लगी हुई फौज के सिपाहियों को उभाड़ने की चेष्टा करती रही। उसकी संगठन-शक्ति अलौकिक थी तथा उसके सुन्दर स्वभाव, मीठी बातों तथा विनोद-वाक्यों के कारण उसे अपने दल में तो खूब लोकप्रियता प्राप्त थी ही, शत्रु भी उसे खूब प्रेम की दृष्टि से देखते थे। कहते हैं कि क्रान्तिकारी दल की गुप्त सभाओं में जब गूढ़ तथा जटिल समस्याओं पर विचार होता रहता था उस समय भी वह हँसी-मजाक से बाज नहीं आती थी—साथ-साथ उन प्रश्नों पर खूब गम्भीरतापूर्वक विचार भी करती थी। उसके मत सदैव बुद्धिमानी से भरे हुए एवं व्यवहारोचित हुआ करते थे।

ज़ार अलेक्जेण्डर द्वितीय का राज्याभिषेक होने जा रहा था। उसके मन में यह शंका हुई कि सम्भव है, राज्याभिषेक के दिन क्रान्तिकारियों की ओर से विघ्न-बाधा उपस्थित करने के प्रयत्न हों, अतएव उसने उनसे सुलह करने की सोची हालांकि उन दिनों क्रान्तिकारियों का एक प्रकार से दम निकल चुका था। मुख्य जितने क्रान्ति-कारी थे वे या तो फाँसी पा गये थे या जेल में सड़ रहे थे, केवल भिरा फिगनर बच रही थी। वह भी जान बचाने की फिक्र में खारकोफ में छिपी हुई थी क्योंकि पुलिस उसकी तलाश में दिन-रात चक्कर लगा रही थी। पर गवर्नमेंट को इस दल की निर्बलता तथा शक्ति-हीनता का पता न था। मिखेलवस्की नाम के एक व्यक्ति ने खार-कोफ जाकर गवर्नमेंट की ओर से भिरा के साथ सन्धि-चर्चा छेड़ी। भिरा ने क्रान्ति-कारियों की ओर से कुछ शर्तें पेश कीं जो ज़ार ने मंजूर कर लीं पर राज्याभिषेक के सकुशल सम्पन्न होते ही उन्हें भूल गये।

१८८४ में भिरा फिगनर की भी गिरफ्तार हुई। जजों के सामने जो उसने

अपना बयान दिया था वह देश-प्रेम तथा अक्खड़पन से भरा हुआ था। उसके गौरवपूर्ण व्यवहार तथा उसकी वाणी पर उसके विपक्षी वकील तथा जेल के अधिकारी भी कुछ काल के लिए मुग्ध हो गये थे और उसके सदाचार के सामने अपनी छुटाई का अनुभव करने लगे थे। जजों ने उसे मृत्यु-दण्ड का फैसला सुनाया पर पीछे यह सजा बदलकर उसे बीस साल तक श्लुस्सेलबर्ग के कारागार में बन्द रहने की सजा मिली। श्लुस्सेलबर्ग के कारागार में रहते हुए उसे कई बुरी बीमारियों ने जकड़ लिया और उसके स्वास्थ्य का संहार हो गया। तो भी बीस वर्ष की अवधि पूरी होने पर गवर्नमेंट ने उसे रूस में रहने की आज्ञा नहीं दी, वह आर्कटिक प्रदेश के एक गाँव को भेज दी गई पर १९०५ के अक्टूबर महीने में जब जार के कांस्टीट्यूशनल घोषणा-पत्र के प्रकाशन के समय बहुत से राजनैतिक कैदी जेल-मुक्त कर दिये गये तो उसे भी रूस आने की स्वतन्त्रता मिली।

श्लुस्सेलबर्ग में रहते हुए उसने कुछ कविताएँ लिखी थीं जो बड़ी ही सुन्दर और हृदय-स्पर्शिनी हैं। इनके सम्बन्ध में उसने स्वयं लिखा है कि "जब मैं अपनी माँ तथा बहन का, अथवा मृत संगी-साथियों का ध्यान करके दुःख से अधीर हो जाती थी तो इन कविताओं की रचना करती थी —

"आती थी जब सुधि निज गृह की,
उठती उर में व्यथा महान्।
होता था तब पिंजड़े में ही
मेरा करुणा-पूरित गान॥"

अदालत में जब उसके मुकदमे की सुनवाई हो रही थी तो उसकी बहन ने उसे गुलाब के फूल लाकर दिये थे। जेल में इन्हीं फूलों को सम्बोधन करके उसने एक सुन्दर कविता लिखी थी जिसका गद्यानुवाद नीचे दिया जाता है—

"श्लुस्सेलबर्ग के दुर्ग में जेल के कठिन नियमों तथा नित्यकर्मों के बीच में प्रेम के साथ उन गुलाब के फूलों का स्मरण करती हूँ जिन्हें अदालत में मेरी प्यारी बहन मेरे लिए लेती आई थी। आह! वे फूल कितने सुन्दर और अविकीर्ण थे, क्योंकि एक पवित्र हृदय के वे उपहार थे, ऐसा प्रतीत होता था मानों वे मेरे कानों में कोमल शब्दों में सूर्य के प्रकाश तथा स्वातन्त्र्य के सन्देश पहुँचा रहे हों। फिर उनका ध्यान करके मेरा यह हृदय इतना दुखित क्यों हो उठता है? क्या मैं तुम्हारी स्नेहपूर्ण आँखों में भरे हुए प्रेम को देखकर आनन्दित और उत्साहित न हो उठती थी? हाय! मुझे अब चुम्बन नसीब नहीं होते? जब जेलर की आँखों से बचकर मैं सिसकती हूँ, रोती हूँ, उन सुन्दर गुलाब के फूलों से गिरने वाले ओस के समान जब मेरी आँखों से आंसू गिरने

लगते हैं, तो मेरा हृदय दारुण नैराश्य से पीड़ित हो उठता है। ……… मेरे लिए ये जीवन के अन्तिम गुलाब हैं।"

मिरा की अन्य कविताएँ भी ऐसी ही सुन्दर और भावपूर्ण हैं, दुःख के भावों से ओत-प्रोत हैं।

१५

बलिवेदी पर

१

मातृभूमि की बलिवेदी पर प्राण गँवाने वाले वीर हिपोलाइट मुड्रिकन का जन्म एक दास-परिवार में हुआ था और उसके पिता जबर्दस्ती फौज में भरती किये गये थे। रूस के फौजी सिपाहियों की दशा उन दिनों और देशों की अपेक्षा कहीं गई-गुजरी थी। मानव तथा पौराधिकार से वे सर्वथा वंचित थे, उनके बाल-बच्चे तक ज़ार की ही सम्पत्ति समझे जाते थे और सात वर्ष की उमर से वे गवर्नमेंट के अधिकार में आ जाते तथा 'राज्य बालक' (Crown Children) के नाम से पुकारे जाते थे। उन्हें उसी उमर से सैनिक शिक्षा दी जाती थी जिसमें इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता था कि कौन कितना परिश्रम सहन कर सकता है। उन्हें सैनिक बनाने वाली मशीन में डालते समय उनके शारीरिक गठन तथा स्वास्थ्य का कुछ भी ख्याल नहीं किया जाता था। उनके साथ हर तरह की सख्तियाँ की जाती थीं तथा शिक्षकों का उनके साथ बड़ा ही क्रूरतापूर्ण व्यवहार होता था। परिणाम यह होता था कि मक्खियों की तरह ये बच्चे अल्पकाल में मृत्यु की गोद में जा पड़ते थे। इनमें जिनका शरीर खूब हट्टाकट्टा होता वे ही बच पाते थे और सैनिक शिक्षा समाप्त करके फौज में भर्ती होते थे।

मुड्रिकन की शिक्षा-दीक्षा भी ऐसी ही एक फौजी पाठशाला में हुई। वहाँ उसने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि तथा श्रमशीलता का परिचय दिया जिससे वह वहाँ की शिक्षा समाप्त करके मास्को के एक स्कूल में भेजा गया। तदुपरान्त फौज के एक जनरल ने उसे अपना अर्दली बनाकर अपने साथ रख लिया। अर्दली के काम के साथ-साथ उसे सेक्रेटरी के काम भी करने होते थे। उसके सेक्रेटरी की हैसियत से उसे एक बार ज़ार के साथ मिलने तथा वार्तालाप करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और उसने यह अनुभव किया था कि ज़ार अलेक्जेण्डर द्वितीय में सिवा तड़क-भड़क के और कुछ नहीं है, भीतर शून्य है। साधारण मनुष्यों से वह बुद्धि और योग्यता में एक रत्ती भी अधिक नहीं है। उसके ऊपर से ज़ार का रोब सदा के लिए जाता रहा।

पर ज़ार अलेक्जेण्डर द्वितीय ने उससे प्रसन्न होकर उसे राज्य-स्टेनोग्राफर बना दिया।

२

राज्य-स्टेनोग्राफर के पद पर काम करते हुए उसने जब कुछ पैसे कमा लिये तो एक स्वतन्त्र व्यवसाय करने की सोची और मास्को में एक छापाखाना खोल डाला, साथ ही अपने पूर्व-पद पर भी स्थित रहा।

१८७३ में मास्को में एक निर्वासित परिवार की चार लड़कियां वयोवृद्ध स्त्री के साथ आ उपस्थित हुईं। वे किसी छापेखाने में अथवा पुस्तक-विक्रेता के यहां नौकरी की तलाश करने लगीं। एक दिन अकस्मात् वे मुइश्किन के छापेखाने के पास आ पहुँचीं और मुइश्किन से जाकर अपनी इच्छा प्रकट की। मुइश्किन ने उन्हें तत्काल अपने छापेखाने में रख लिया। उनके विचारों के साथ उसके विचारों का कुछ ऐसा सादृश्य था कि उन लोगों के बीच शीघ्र ही काफी घनिष्ठता हो गई और उनका एक आध्यात्मिक परिवार-सा बन गया।

क्रान्तिकारी विचार वाली उन युवतियों ने उससे प्रस्ताव किया कि वह सरकार से जब्त पुस्तक-पुस्तिकाओं का प्रकाशन करे। मुइश्किन को यह प्रस्ताव पसन्द आया और उसने उन युवतियों के लिए एक कमरा खाली कर दिया और उसमें जब्त पुस्तक-पुस्तिकाओं के छापने के सारे प्रबन्ध कर दिये। कुछ ही दिनों में उसके छापेखाने से क्रान्तिकारी साहित्य का प्रकाशन खूब ज़ोर-शोर के साथ पर प्रच्छिप्त रूप से होने लगा। सराटफ नामक एक शहर में उक्त क्रान्तिकारी स्त्रियों के एक क्रान्तिकारी मित्र (ओइनारलसकी) ने एक बूट जूतों का कारखाना खोला जो वास्तव में मुइश्किन के द्वारा प्रकाशित क्रान्तिकारी साहित्य का मुख्य डिपो था। क्रान्तिकारी पुस्तक-पुस्तिकाएँ तथा पर्चे मुइश्किन के प्रेस से छपकर सराटफ के बूट फैक्टरी को भेजे जाते थे। जिन बक्सों में ये बन्द होकर वहाँ जाते थे उन पर बूट जूते, चमड़े इत्यादि शब्द लिखे होते थे ताकि उन पर किसी का, विशेषकर पुलिस का, सन्देह न हो और वहाँ से भोलगा नदी के गर्भस्थित प्रान्तों में उनका प्रचार किया जाता था। क्रान्तिकारी आन्दोलन के विस्तार में इनसे बड़ी सहायता मिली।

कुछ दिनों तक यह क्रम जारी रहा, पर एक दिन पुलिस को सराटफ के बूट फैक्टरी की असलियत मालूम हो गई और इसका मास्को में छापेखाने के साथ जो सम्बन्ध था, उसका भी पता चल गया। मुइश्किन की अनुपस्थिति में पुलिस के कुछ अफसर उसके छापेखाने में आ धमके। चूँकि मुइश्किन अब भी स्टेट स्टेनोग्राफर बना हुआ था, उन लोगों ने उसकी अनुपस्थिति में प्रेस की खानातलाशी लेनी नहीं चाही, उसकी प्रतीक्षा में बैठे रहे। प्रेस के कर्मचारियों ने उनकी आँखें बचाकर बाहर

खतरे का चिह्न लगा डाला। कुछ समय के बाद मुइश्किन लौटा पर उस चिह्न को देखते ही सचेत होकर वापस हो गया। इधर पुलिस के कर्मचारियों ने जब देखा कि वह नहीं आ रहा है तो अन्ततोगत्वा, मजबूर होकर प्रेस की खानातलाशी ली। ढेर के ढेर क्रान्तिकारी जब्त पर्चों के बंडल देखकर वे दंग रह गये। घर के अन्दर जितने आदमी उपस्थित थे, उनमें वे औरतें भी थीं जिनकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है, वे सब गिरफ्तार कर लिये गये।

मुइश्किन की सारी सम्पत्ति जाती रही। उसके मित्र भी गिरफ्तार होकर जेल में जा पड़े। पर इससे वह जरा भी विचलित न हुआ बल्कि बचे-खुचे क्रान्तिकारियों के संगठन के उपाय सोचने लगा तथा प्रजा-पीड़क शासन के विरोध में दूने उत्साह के साथ जा भिड़ा। क्रान्तिकारियों का किस प्रकार जबर्दस्त संगठन हो और किस प्रकार उनमें एकता के भाव जागृत किये जायें इस प्रश्न पर विचार करते हुए वह इस निर्णय पर पहुँचा कि ये उद्देश्य तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक कि क्रान्तिकारी आन्दोलन का नेतृत्व कोई ऐसा व्यक्ति न ग्रहण करे जिस पर सबका समान विश्वास हो और जिसका नाममात्र ही क्रान्तिकारियों के हृदय में उत्साह का संचार कर दे। इस पद के लिए प्रसिद्ध उपन्यासकार तथा अर्थशास्त्रज्ञ निकलस (Tchernishevsky) से बढ़कर उपयुक्त कोई दूसरा नज़र न आया, क्योंकि उनका मशहूर उपन्यास 'Chto Dielat ?' ('किंकरणीयम् ?') उन दिनों क्रान्तिवादियों का बाइबिल हो रहा था। विशेषकर युवकों के हृदय पर तो उन्होंने अपनी इस कृति के कारण पूरा अधिकार कर लिया था और उनके एक आराध्यदेव हो रहे थे। पर वह उन दिनों उत्तर-पूर्वीय साइबेरिया में निर्वासित थे और वह भी जीवन भर के लिए। उनके खिलाफ राजद्रोह का कोई प्रमाण न था, तो भी केवल एक नामहीन (Anonymous letter) पत्र पर उन्हें यह सजा दी गई थी।

भिलुइस्क नामक एक छोटे से नगर के कारागार में वह कैद थे। वहाँ से किसी तरह निकल भागना उनके लिए साध्य न था, अतएव मुइश्किन ने, जिसके हृदय में यह लगन लग रही थी कि येन केन प्रकारेण हम उन्हें कैद से निकालकर ही चैन लें, उनके जेल-मुक्त करने का एक दूसरा ही उपाय सोचा। गवर्नमेंट के किसी पदाधिकारी का छद्म-वेष बनाकर और निकलस के उस जेल से किसी दूसरे जेल को भेजे जाने का एक जाली सरकारी आज्ञापत्र लेकर उसने उस जेल के गवर्नर के पास जाने का निश्चय किया। पर उसकी राह में कठिनाइयाँ बहुत थीं। एक तो दूर की[1] सफ़र,

१. इसका अनुमान इसी से किया जा सकता है कि जिस प्रान्त में भिलुइस्क नामक नगर स्थित था सिर्फ उसका क्षेत्रफल समूचे इंग्लैण्ड से १३ गुना अधिक है।

दूसरे पैसों की कमी, फिर चारों ओर शत्रुओं की भरमार एक साधारण मनुष्य के लिए, जिसका कोई मददगार न था, इन कठिनाइयों का सामना करना बड़े साहस का काम था, अतएव इन विघ्न-बाधाओं की उपेक्षा करके साइबेरिया के लिए प्रस्थान करने वाले मुइश्किन की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

कुछ दिनों की सफर के बाद वह इरकुरस्क नामक नगर में पहुँचा और स्थानीय सरकारी अफसरों से जाकर मुलाकात की तथा उनसे किसी पद की याचना की। उसकी मीठी बातों तथा सभ्य व्यवहारों से खुश होकर उन्होंने उसे नौकर रख लिया। सरकारी पदाधिकारियों के रवानगी खत किस प्रकार लिखे जाते हैं, इनका वह अध्ययन करने लगा और कुछ ही दिनों में इसकी पूरी जानकारी हासिल कर ली। तदुपरांत उसने एक बनावटी आज्ञापत्र भिलुइस्क जेल के गवर्नर के नाम लिखा जिसमें यह कहा गया था कि निकलस नामक कैदी को वह फौरन पत्रवाहक के, जो सेंट पिटर्सबर्ग से खास इसी काम के लिए भेजा जा रहा है, हवाले कर दे ताकि वह वहाँ से हटाकर अमुर नदी के किनारे Blago vesatchensk नामक जेल में पहुँचाया जाय। जाली पत्र के तैयार हो जाने पर उसने अपने पद से इस्तीफा दे दिया, और उस आज्ञापत्र के साथ भिलुइस्क के लिए रवाना हुआ। काम बड़े खतरे का है, इसे वह खूब समझता था पर इससे वह जरा भी विचलित न हुआ क्योंकि अपने प्राणों को अपनी हथेली पर रखकर ही उसने इस काम को उठाया था।

सभ्य संसार से कोसों दूर भिलुइस्क नगर में पहुँचकर उसने जेल के सर्वश्रेष्ठ पदाधिकारी (गवर्नर) के पास जाकर वह आज्ञापत्र दिखलाया। कैप्टेन फिरकक, जेल के गवर्नर, ने उसकी खूब आवभगत की तथा फौरन जेल में जाकर निकलस को अन्यत्र जाने के लिए प्रस्तुत होने को कहा। पर इसके बाद ही उसके हृदय में सन्देह का उत्पादन हुआ और उसने कैदी को सहसा आगंतुक के जिम्मे कर देना उचित न समझकर मुइश्किन से आकर कहा कि कैदी के तैयार होने में अभी एक दिन का विलम्ब है। मुइश्किन के ऊपर उसके सन्देह होने के कई कारण बतलाये जाते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि उसकी पोशाक में कई भूलें थीं जिससे गवर्नर के हृदय में शंका उत्पन्न हो गई, और कुछ लोग उसके दिल में सन्देह उत्पन्न होने का कारण उसके साथ शरीर-रक्षक सैनिकों का न होना बतलाते हैं। कारण चाहे जो कुछ भी रहा हो, गवर्नर को उसकी असलियत पर पूरा सन्देह हो गया। उसने मुइश्किन से कहा कि हम इस सम्बन्ध में याकुस्क में रहने वाले अपने श्रेष्ठ अफसर, गवर्नर-जनरल, से आज्ञा ले लेना चाहते हैं और तदर्थ अपने एक दूत को वहाँ भेज रहे हैं। मुइश्किन को उसकी इस बात को सुनकर पक्का विश्वास हो गया कि उसकी पोल खुल गई। अब वह अपने प्राणों की फिक्र में लगा। गवर्नर से जाकर कहा कि इस सम्बन्ध में मैं स्वयं

भी गवर्नर-जनरल से मिलूँगा। कैप्टेन फिरकफ ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए उसकी रक्षा के लिए दो सशस्त्र कज्जाक सिपाहियों को उसके संग कर दिया। कज्जाकों को यह गुप्त आज्ञा दी गई कि वे मुइश्किन पर पूरी निगरानी रखें और उसे किसी तरह भी अपने पंजे से निकलने न दें। बिलुइस्क से जो राह याकुत्स्क जाती थी उसकी दोनों ओर बीहड़ वन तथा बड़े-बड़े पहाड़ थे जिनमें हिंसक पशुओं का केवल निवास ही नहीं, भरमार थी। पर मुइश्किन के लिए उन कज्जाकों के शिकंजे से किसी तरह निकलकर उस वन में भाग जाने के सिवा प्राण बचाने का कोई दूसरा उपाय न था क्योंकि यह निश्चय था कि अगर वह गवर्नर-जनरल के पास पहुँच जाता तो उसकी कलई अवश्य ही खुल जाती और वह मृत्युदण्ड का भागी होता। पर उन सिपाहियों से बच निकलना भी कोई आसान काम न था, टेढ़ी खीर थी। अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित वे चौबीसों घंटे उसकी निगरानी में तैनात रहते, पल भर के लिए भी उसे अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देते थे। पर एक दिन ऐसा भी मौका आया जब कि मुइश्किन अपने प्रयत्न में सफल हुआ और उनके पंजे से निकल भागा पर दुर्भाग्य ने उसका संग न छोड़ा, और गवर्नमेंट की ओर से उसकी खोज में सैकड़ों आदमी उस जंगल में भेजे गये जिन्होंने उस वन का मंथन कर डाला। वह पूरे एक सप्ताह तक उस बीहड़ वन में भागता रहा, पर अन्त में क्षुधा तथा श्रम से क्लान्त होकर मृतप्राय पड़ा हुआ एक दिन पकड़ लिया गया। कुछ दिनों तक इरकूत्स्क की जेल में रखे जाने के बाद वह यूरोपीय रूस को भेज दिया गया।

३

मुइश्किन जिस जेल में रखा गया था वह बड़ा ही भयानक था और उसमें अमानुषिक पीड़ा पहुँचाने के सभी साधन मौजूद थे। मुइश्किन को भी कहते हैं कभी-कभी इतनी पीड़ा पहुँचाई जाती थी कि उसकी चिल्लाहट से सारा कारागार कम्पायमान हो उठता था। तीन साल तक वह इसी जेल में पड़ा हुआ अपने मुकदमे की सुनवाई का इन्तजार करता रहा। अन्त में १८ अक्तूबर, १८७७ को १९२ और राजनैतिक अपराधियों के साथ वह भी अदालत में लाया गया और उनका विचार शुरू हुआ। उस पर राजद्रोही संस्था के सदस्य होने का दोषारोपण हुआ। इस जुर्म में गिरफ्तार किये गये व्यक्तियों की संख्या कुल २६४ थी पर मुकदमे के प्रारम्भ होने तक इनमें ७५ हतभाग्य कैदी जेल-यातनाओं के सहने में असमर्थ होकर काल-कवलित हो चुके थे।

ज्यादा कैदियों ने कोई भी भाग लेने से साफ इन्कार किया। इसका कारण सर्जियस सिमनव के जीवन-वृतांत में लिखा जा चुका है। मुइश्किन ने यह पूछे जाने पर कि तुम्हें अपने सम्बन्ध में कुछ कहना है, एक ओजस्वी भाषण देना शुरू किया

पर प्रधान जज ने उसे ऐसा करने से रोका जिससे क्रोधित होकर उसने उच्च स्वर में कहना शुरू किया—

"यदि मैं, विचाराधीन राजनैतिक अपराधी, सरकार के कामों की आलोचना करने से वर्जित किया जाता हूँ तो मैं यह कह देना चाहता हूँ कि आप एक न्यायालय के प्रतिनिधि नहीं हैं बल्कि एक लज्जास्पद प्रहसन के अभिनेता हैं।" मुइश्किन की इस बात पर न्यायाधीश ने यह आज्ञा दी कि वह कठघरे से बाहर निकाल दिया जाय। पर न्यायालय के एक कर्मचारी के उसके पास पहुँचते ही दो और कैदी उठकर उसके पास पहुँच गये और उसके साथ हाथापाई करने लगे। इधर मुइश्किन ने गगनभेदी शब्दोंमें कहा—"हाँ, यह न्यायालय वेश्याओं के घर से भी बदतर है। वहाँ मंदभागिनी स्त्रियाँ पेट के लिए अपनी इज्जत बेचती हैं पर यहाँ आप, बड़े हज़रत लोग, मोटी तनख्वाह तथा खिताबों के लिए अपनी इज्जत, सत्य, न्याय, कानून तथा अपनी और दूसरों की आत्मा को बेच डालते हैं!"

इसके बाद जेल तथा कोर्ट के कर्मचारियों ने डंडों से कैदियों को पीटना शुरू किया और सारी अदालत में कोहराम मच गया। जज उठ-उठकर चल दिये, औरतें इस दृश्य को देखकर बेहोश हो गईं और 'खूनी! जंगली! वे कैदियों की जान ले रहे हैं!—आदि शब्दों से सारा मकान गूँज उठा।

मुइश्किन को दस वर्ष की सख्त कैद की सजा मिली। खारकौफ की जेल में वह रखा गया। उस जेल के सम्बन्ध में गवर्नमेंट के सैनिटरी इन्सपेक्टर तक ने यह स्वीकार किया था कि यह मनुष्य के रहने योग्य नहीं है। यहाँ के राजनैतिक कैदी या तो विक्षिप्त हो जाया करते थे या शीघ्र ही संक्रामक रोगों के शिकार बनकर सुर-लोक सिधार जाते थे। मुइश्किन ने एक बार यहाँ से निकल भागने की चेष्टा की पर सफल नहीं हुआ। अन्त में यह सोचकर कि कुछ दिन और यहाँ ठहरने से मैं पागल हो जाऊँगा, उसने आत्महत्या कर लेने का निश्चय किया पर आत्महत्या के लिए भी साधनों की जरूरत होती है जो वहाँ प्राप्य न थे। अतः उसने कोई ऐसा कसूर करने का विचारा जिसके लिए प्राणदण्ड दिया जाता हो। जेल के गवर्नर का अपमान करना ऐसे ही कसूरों में था। सो एक दिन सुअवसर पाकर उसने जेल के गवर्नर के मुँह पर दो तमाचे लगा दिये पर ऐसा करने पर भी उसे प्राणदण्ड न मिला, बल्कि पागल समझकर छोड़ दिया गया।

उपर्युक्त घटना के कुछ दिनों के बाद वह अन्य राजनैतिक कैदियों के साथ पूर्वीय साइबेरिया के कारा प्रान्त की खानों में भेजा गया। राह में उसने अपने साथ के एक सह-कैदी की, जो यात्रा के कष्टों तथा सर्दी के कारण मर गया था अन्त्येष्टि-क्रिया के समय उसके कफन को छूकर एक ओजस्वी भाषण देना शुरू किया और

रूस की दुरवस्था का चित्र खींचते हुए जारशाही की स्वेच्छाचारिता की कड़ी आलोचना की। उसकी वाणी में कुछ ऐसा जादू था कि जब तक वह बोलता रहा उसके सुनने वाले, जेलर आदि तक, मंत्र-मुग्ध-से होकर सुनते रहे। भाषण का अन्त करते हुए उसने कहा, "···पर मित्रो ! इससे तनिक भी विचलित अथवा निराश न होना। इस वीर महापुरुष के भस्मावशेष के अन्दर से रूस की स्वतन्त्रता का वृक्ष ऊपर निकलेगा।" जब उसके भाषण का अन्त हो गया तो पादरी को होश आया और वह उसे नाना प्रकार से शाप देने लगा।

इस क्रान्तिकारी भाषण के लिए उसे दस वर्ष की सख्त कैद की सजा दी गई।

कारा राजनैतिक जेल के सम्बन्ध में बहुत कुछ पहले लिखा जा चुका है।[1] मुइश्किन भी इसी जेल में लाकर रखा गया पर यहाँ आकर भी वह हताश न हुआ, बल्कि पुनः जेल से किसी प्रकार निकल भागने का उपाय सोचने लगा। पर कारा के इस दारुण कारागार से निकल भागना कोई सहल काम न था। कैदियों पर कड़ी निगरानी रखी जाती थी, दीवारों पर तीक्ष्ण काँटे जमाये गये थे, और जेल के बाहर संतरी चौबीसों घंटे घूमा करते तथा चौकन्ने रहा करते थे। तो भी मुइश्किन ही नहीं बल्कि सात और राजनैतिक कैदी एक राय होकर इस भीषण जेल से भी निकल भागे।

पहली रात को मुइश्किन तथा एक और राजनैतिक कैदी ने दीवार फाँदकर परित्राण पाया। पर दूसरे दिन जब छः अन्य कैदी दीवार फाँद रहे थे, इनमें से एक एक पानी के गड्ढे में जा गिरा जिसकी आवाज सुनकर सन्तरी ने चौकन्ना होकर उसकी ओर गोली चलाई। निशाना ठीक न लगा, वह बच गया, उसकी गोली की आवाज सुनकर जेल के अन्यान्य कर्मचारी जग गये और शीघ्र ही जेल भर में खतरे की घंटी बजने लगी तथा कैदियों की हाजरी ली जाने लगी। मुइश्किन आदि आठ कैदियों के गायब होने का तुरन्त ही पता चल गया। फिर क्या था, सारे पूर्वीय साइबेरिया में धड़ाधड़ तार भेजे जाने लगे, भागे हुए कैदियों की तस्वीरें पुलिस अफसरों के पास भेजी गईं। जंगल, पहाड़, गाँव, शहर आदि सभी स्थानों में इनकी खोज होने लगी मानों इनके न पकड़े जाने से रूस का सारा साम्राज्य ही उलट-पुलट हो जाता।

मुइश्किन तथा उसके सात साथी समुद्र-तट पर पहुँचकर अमरीका के लिए रवाना होने ही वाले थे कि गिरफ्तार कर लिये गये। उनका पुनः गिरफ्तार हो जाना आश्चर्य की बात नहीं। आश्चर्य तो यह है कि इतने थोड़े दिनों में, और इतना कड़ा अनुसन्धान होते हुए भी कड़ी सर्दी तथा रास्ते के अन्यान्य असह्य कष्टों को सहकर

---

१. लियो ड्यूश्क के जीवन-चरित्र वाले लेख को देखिए।

वे कारा-जेल से कई सौ मील दूर चले गये थे। मुइश्किन तो कारा-कारागार से दो हजार से भी अधिक की दूरी पर गिरफ्तार हुआ। वह समुद्र-तट पर पहुँचकर जहाज पर चढ़ने ही वाला था जब कि पुनः गिरफ्तार कर लिया गया। इसी को कहते हैं, भाग्य का खेल !

मुइश्किन तथा उसके साथी 'अत्यन्त भयंकर' कैदियों की श्रेणी में रखकर श्लुस्सेलबर्ग की जेल में पहुँचाये गये और उनके साथ अत्यन्त कठोर व्यवहार होने लगा यहाँ तक कि वे नित्य-प्रति यही कहते—

"मृत्यु ! मृत्यु ! आ जा, हैं स्वागत करते हम सब तेरा।"

मृत्यु ने सर्वप्रथम मुइश्किन की ही पुकार सुनी। उसने एक दिन पुनः जेल के गवर्नर को थप्पड़ लगाये जिसके लिए वह कोर्ट मार्शल के सुपुर्द हुआ और शीघ्र ही श्लुस्सेलबर्ग की भीषण चहारदीवारियों के अन्दर गोली का शिकार हुआ।

१६

आत्मोत्सर्ग

१

सोफी पेरोभस्काया का जन्म एक उच्च, जमींदार-वंश में हुआ था। पेरोभस्काया-परिवार के लोग पूर्वकाल से ही सरकार के ऊँचे ओहदों पर मुकर्रर होते आये थे और उनका गवर्नमेंट में काफी सम्मान था, क्योंकि उनके पूर्वज ने पीटर दी ग्रेट की एक पुत्री का पाणिग्रहण किया था। सोफी के पितामह ने गवर्नमेंट के शिक्षा-विभाग के मन्त्री का पद सुशोभित किया था और उसके पिता सेंट पिटर्सबर्ग के गवर्नर-जनरल थे।

सोफी का जन्म १ सितम्बर, १८५३ को हुआ था। उसकी शिक्षा-दीक्षा का सारा श्रेय उसकी माँ को है और अपनी माँ के लिए उसके हृदय में अगाध प्रेम था। उसकी माँ पढ़ी-लिखी तथा दयालु स्वभाव की रमणी थीं तथा उनकी यह हार्दिक अभिलाषा थी कि उनकी सन्तान खूब शिक्षित हो। पर उसके पिता का स्वभाव ठीक इसके विपरीत था। वह बड़े ही क्रूर तथा निरंकुश स्वभाव के थे, अतएव उनमें तथा उनकी स्त्री, सोफी की माँ, में सदा मनोमालिन्य बना रहता था। अपनी स्त्री तथा बच्चों के साथ उनका व्यवहार बड़ा ही निष्ठुर था।

सेंट पिटर्सबर्ग में सोफी के पिता की बड़ी धाक थी और शहर के महाजनों से जितना चाहते कर्ज ले लेते थे। १८८३ में ज़ार अलेक्जेण्डर द्वितीय पर कराकज़ुक नामक एक क्रान्तिकारी के पिस्तौल चलाने के बाद वह बर्खास्त कर दिये गये, क्योंकि ज़ार की शरीर-रक्षा का काम वह ठीक से अंजाम न कर सके थे। नौकरी से हटते ही उनके सर पर कर्ज देने वालों तथा उनके हाथ उधार माल बेचने वालों का तकाजा आ पहुँचा। ऋण-पूर्ति के लिए उन्हें अपनी सेंट पिटर्सबर्ग की सारी सम्पत्ति बेच देनी पड़ी तथा अपनी स्टेट को लौट आना पड़ा। सपरिवार अब वह वहीं रहने लगे। सोफी का मनोरथ पूरा हुआ क्योंकि यहाँ आकर वह अपना ज्यादा समय लिखने-पढ़ने में बिताने लगी। घर में एक पुस्तकालय था जिसमें कई पुश्त के संगृहीत ग्रंथ थे, उनका वह समुचित उपयोग करने लगी। ग्रीष्मकाल में जब उसके भाई छुट्टियों में घर आये तो अपने साथ बहुत से क्रान्तिकारी ग्रन्थों को, जिन्हें उन दिनों देश का नवयुवक-समुदाय

बड़े चाव से पढ़ा करता था, लेते आये। इन ग्रन्थों का अध्ययन तथा अपने भाइयों से क्रान्ति की बातें सुनकर सोकी के हृदय में क्रान्ति के भाव जाग्रत हो उठे। इसके बाद ही उसकी माँ अपनी दोनों बेटियों, सोकी तथा उसकी बहन मेरी, के साथ सेंट पिटर्सबर्ग आकर रहने लगीं। स्वातन्त्र्य-प्रिय सोकी को अपने पिता से दूर रहकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

स्थानीय एक स्कूल में सोकी तथा मेरी शिक्षा प्राप्त करने लगीं। यहाँ उसकी जान-पहचान बहुत सी ऐसी छात्राओं के साथ हुई जिनके क्रान्तिकारी विचार थे। आगे चलकर उन सबों ने रूसी आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया। सोकी की उनके साथ कुछ ही दिनों में काफी घनिष्ठता हो गई और वे उसके घर पर नित्य-प्रति आने-जाने लगीं। सोकी के पिता को जब इसकी खबर लगी तो उन्होंने उसके पास इन लड़कियों का जिन्हें वह 'निहिलिस्ट' के नाम से पुकारते थे, आना बन्द कर दिया और उसके ऊपर तरह-तरह की सख्तियाँ करने लगे। अन्त में, पिता के अत्याचारों से बचने का कोई दूसरा उपाय न देखकर, वह एक दिन, अपनी माँ की राय से, घर छोड़-कर चली गई। उसके पिता ने तत्काल इसकी सूचना पुलिस को दे दी और इसमें शक नहीं कि पकड़ी जाने पर वह उसे कोई कड़ा दण्ड देते, पर अपने पुत्र के बहुत कहने-सुनने पर वह इस बात के लिए राजी हो गये कि सोकी उनसे अलग रहे पर इसके पहले उन्होंने यह वादा करा लिया कि 'भविष्य में वह कभी उन्हें अपना मुँह न दिखायगी।' इसके बाद जब कभी अपनी माँ अथवा भाई-बहनों से मिलना होता, छिपकर अपने पिता की अनुपस्थिति में आकर उनसे मिलती थी।

धीरे-धीरे सोकी का क्रान्तिकारी दल के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया और कुछ ही दिनों में वह इस आन्दोलन की प्रमुख कार्यकर्त्री बन गई। उन्हीं दिनों सोनिया तथा सिनगव से भी उसका परिचय हुआ।

रूस में उस समय गिरफ्तारियों की धूम थी। आखिर सोकी कब तक बच सकती थी। १८७५ के ग्रीष्मकाल में वह भी गिरफ्तार कर ली गई पर अपनी माँ के उद्योग से शीघ्र ही छोड़ दी गई। तदुपरांत उसकी माँ उसे साथ लेकर क्रीमिया, जहाँ उनकी थोड़ी-सी जमींदारी उसकी माँ के ही उद्योग से बच रही थी, चली गई और वहीं रहने लगी। सोकी ने डाक्टरी का अध्ययन शुरू किया ताकि वह डाक्टर बन कर किसानों की कुछ सेवा कर सके, और थोड़े ही दिनों में उसने इसमें काफी योग्यता हासिल कर ली। किन्तु राजनैतिक बातों से अधिक सम्बन्ध न रखने पर भी १८७७ के शीतकाल में वह पुनः पकड़ ली गई तथा '१९३ कैदियों के विचार' में उसे भी शामिल किया गया पर सजा न हुई, छोड़ दी गई। तत्पश्चात् वह अन्य राजनैतिक कैदियों को, जिनके साथ जेल में मैत्री हो गई थी, जेल से निकालने के प्रयत्न करने

लगी पर सफल नहीं हुई। इसका उसके हृदय में बड़ा खेद रहा।

इधर ज़ारशाही सरकार ने और भी भीषण रूप धारण किया। '१९३ कैदियों के विचार' वाले अन्य क्रान्तिकारियों को सख्त सज़ा मिली। पर उनके बाद के राज-नैतिक अपराधियों को साम्यवाद का प्रचार करने के अपराध में मृत्यु-दण्ड दिया जाने लगा। फल यह हुआ कि बहुत से शान्तिपूर्ण कार्यकर्त्ताओं ने आतंकवाद की शरण ली और एक आतंकवादी संस्था की नींव डाली। सोफी पेरोभस्काया ने बहुत सोच-विचार के बाद उसका सदस्य होना स्वीकार कर लिया। उसके एक प्रवासी मित्र ने विदेश से उसके पास एक खत भेजकर उसे वहाँ जाने को आमन्त्रित किया। उत्तर में सोफी ने लिखा कि 'विदेश में कर्तव्यहीन जीवन बिताने की अपेक्षा मैं रूस में फाँसी पर लटकना कहीं ज्यादा पसन्द करूँगी।' आगे चलकर उसका यह मनोरथ भी पूर्ण हुआ।

२

उपर्युक्त क्रान्तिकारी संस्था की सदस्या बनकर सोफी पेरोभस्काया जी-जान से क्रान्तिकारी आन्दोलन में लग गई तथा अपने अद्भुत साहस एवं संगठन-शक्ति का परिचय दिया। यहाँ तक कि उसकी इन शक्तियों को देखकर बड़े-बड़े क्रान्तिकारी भी आश्चर्यचकित हो गये। १८७९ में मास्को में जो ट्रेन उलटने की चेष्टा की गई थी उसमें सोफी पेरोभस्काया का सबसे ज्यादा हाथ था। इस प्रयत्न के विफल होने के बाद आतंकवादियों ने ज़ार अलेक्जेण्डर द्वितीय की हत्या करने का निश्चय किया और इसके प्रबन्ध का सम्पूर्ण भार सोफी के कन्धों पर डाला गया। सेंट पिटर्सबर्ग की एक सड़क से ज़ार अलेक्जेण्डर बहुधा फौजी स्कूल को जाया करते थे। आतंकवादियों ने उनकी इसी सड़क पर हत्या करने का निश्चय किया और इसके लिए दो उपायों का अवलम्बन किया। प्रथम तो उन्होंने सड़क के नीचे सुरंग खोदकर बारूद भर दिया ताकि जब ज़ार उसके ऊपर से जाने लगे तो बारूद में आग लगाकर सड़क का वह हिस्सा उड़ा डाला जाय। द्वितीय, उनमें से कुछ व्यक्ति ज़ार के राजप्रासाद के पास बम लेकर खड़े हो गये कि अगर सड़क का उड़ना सफल न हो सका तो वे ज़ार की गाड़ी पर बम फेंककर उनकी हत्या कर डालें। संयोगवश फौजी स्कूल से लौटते समय ज़ार उस ओर से नहीं लौटे जिस ओर वे बम लेकर, उनकी प्रतीक्षा में खड़े थे। सोफी ने, जो इन कार्यों की एकमात्र प्रबन्धकर्त्री थीं, रूमाल हिलाकर उन्हें आदेश दिया कि वे फौरन उस सड़क पर चले जायँ जिससे वह, ज़ार अलेक्जेण्डर द्वितीय, वापिस हो रहे थे। उन्होंने ऐसा ही किया तथा जब ज़ार उनके सामने से गुजरने लगे तो उन पर बम फेंका जिससे उनकी गाड़ी चूर-चूर हो गई तथा १४ शरीर-रक्षक कज्जाक सिपाही घायल तथा मृत हुए। वह स्वयं बच रहे, पर इसके बाद ही जब वह मृत व्यक्तियों की ओर बढ़े तो एक दूसरे षड्यंत्रकारी ने उन पर पुनः बम फेंका

जिससे वह जख्मी हुए तथा बम फेंकने वाला स्वयं भी मृत्यु की गोद में जा पड़ा। एक घण्टे के भीतर ही ज़ार अलेक्जेण्डर भी इस संसार से चल बसे।

ज़ार की हत्या ने सारे नगर में आतंक फैला डाला तथा गवर्नमेंट क्रोध से पागल हो उठी। देश भर में गिरफ्तारियों की धूम मच गई। केवल सेंट पिटर्सबर्ग में दो दिनों के अन्दर करीब आठ सौ आदमी गिरफ्तार हो गये। दिन भर पुलिस तथा कज्जाक सड़कों पर घूमा करते तथा जिस पर जरा भी सन्देह होता उसे गिरफ्तार कर लेते थे। जार की हत्या से सम्बन्ध रखने वाले प्रायः सभी क्रान्तिकारी गिरफ्तार हो गये, केवल सोफी बच रही थी पर उसके भी ज्यादा दिन बचने की आशा न थी, क्योंकि पुलिस दिन-रात उसकी तलाश में चक्कर काट रही थी। उसके मित्रों ने उसे बहुत समझाया कि वह सेंट पिटर्सबर्ग छोड़कर किसी दूसरे स्थान को चली जाय पर उसने उनकी बात न मानी बल्कि खुले-आम सड़कों पर घूमती रही। आश्चर्य है कि पुलिस को उसके ढूंढ़ने में इतने दिन लगे। अन्ततः एक दिन जब वह भाड़े की एक गाड़ी पर चढ़ी हुई सेंट पिटर्सबर्ग के बाजार से गुजर रही थी तो दूध बेचने वाली एक औरत ने, जिससे वह कुछ दिन पहले दूध खरीदा करती थी, उसे पुलिस के हाथों गिरफ्तार करवा दिया।

कहना न होगा कि ज़ार की हत्या के सम्बन्ध में गिरफ्तार किये गये सभी क्रान्तिकारियों को फांसी की सजा मिली तथा १५ अप्रैल, १८८१ को वे फांसी पर चढ़ा दिये गये। कहते हैं, जिस दिन उन्हें फाँसी मिलने वाली थी उससे छः-सात दिन पूर्व से उन्हें तरह-तरह की पीड़ाएँ दी जाती थीं ताकि वे अन्य षड्यन्त्रकारियों के नाम बतला दें पर उनमें से एक ने भी किसी दूसरे का नाम नहीं बतलाया। उनके सम्बन्धियों ने बहुत चेष्टा की कि प्रचलित प्रथानुसार उन्हें उनसे मरने के पहले एक बार मिलने की इजाजत मिले पर अधिकारियों ने इस बार ऐसा करने से साफ इन्कार किया। सोफी की माँ ने क्रीमिया में उसकी गिरफ्तारी का संवाद पाया। दौड़ी हुई सेंट पिटर्सबर्ग आई और सोफी से मिलने की इजाजत चाही पर उसके लाख कोशिश करने पर भी उसे सोफी से मुलाकात करने का हुक्म न मिला। हां, जब वह गाड़ी पर चढ़कर वधस्थान (Scaffold) को जा रही थी तो उसकी माँ को दूर से ही उसे दिखला दिया गया था। सोफी के नैतिक बल तथा कार्य-संचालन-शक्ति की उसके विपक्षी वकील ने भी अदालत में भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। केवल २७ वर्ष की ही उम्र में वह हँसते-हँसते फांसी पर चढ़ी थी। मृत्यु के पहले उसने एक पत्र अपनी माँ को लिखा था जिससे उसकी स्नेहपूर्ण प्रकृति तथा उत्कट देश-प्रेम का परिचय मिलता है। उस पत्र में उसने अपनी माँ को नाना प्रकार से सांत्वना देने की चेष्टा की है और समझाया है कि वह उसके लिए ज़रा भी दुखित न हों, क्योंकि 'दरअसल

इसमें दुखित होने की कोई बात नहीं है। मुझे इस बात का सन्तोष है कि मैं आजन्म अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रही, अतएव मैं आने वाली दुर्घटना की शान्तिपूर्वक प्रतीक्षा कर रही हूँ।' फिर उसने लिखा है—'मुझे केवल इस बात का दुःख है, और इसका ध्यान करके मेरा हृदय टुकड़े-टुकड़े हुआ जा रहा है कि मेरी मृत्यु से, प्यारी माँ तुझे अपार दुःख होगा।'

सोफी से जिसकी थोड़ी भी पहचान थी उसने उसके गुणों की दिल खोलकर तारीफ की है। प्रिन्स क्रोपाटकिन ने अपने स्मृति-ग्रन्थ में बड़ी प्रशंसा की है।

१७

फाँसी के तख्ते पर

१३ अगस्त, १९०६ को पिटरहफ़ रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर जनरल मिन नामक एक फौज के बड़े अफ़सर पर एक युवती ने गोली चलाई जिससे उसकी वहीं मृत्यु हो गई। गोली चलाने वाली युवती स्त्री, जिसका नाम जिनैडा भैसिलिएभ कोनोपलिएनिकोभा था, वहीं गिरफ्तार कर ली गई तथा पिटर और पाल के दुर्ग में एक कोर्ट मार्शल के सामने उसका विचार हुआ। अदालत के सामने उसने निम्न-लिखित बयान दिया था—

साम्यवादी क्रान्तिकारी दल की मैं एक सदस्या हूँ और मैंने ही जनरल मिन की हत्या की है। मेरे ऐसा करने के कारण स्पष्ट हैं। मुझे उम्मीद है कि आप सब लोगों को दिसम्बर के वे दिन स्मरण होंगे जब कि मास्को में मिन तथा रीमन के व्यवहार ऐसे हुए थे मानो वे किसी शत्रु-देश में युद्ध कर रहे हों। एक-दो नहीं बल्कि सैकड़ों व्यक्ति उनके हाथों से मारे गये थे। मैं पूछती हूँ मास्को के इन नगर-निवासियों की हत्या क्यों की गई ? उत्तर मिलेगा, चूँकि अज्ञानान्धकार तथा दरिद्रता में पड़े हुए तथा निकोल्स द्वितीय के घोषणापत्र एवं गवर्नमेंट की धूर्त नीति से धोखा खाये हुए श्रमजीवियों ने अपने जीवन भर के अत्याचारियों के विरुद्ध बगावत के झण्डे उठाए थे। मैंने मिन की हत्या इसलिए की कि उसने स्वतन्त्रता के मार्गदर्शकों एवं पुजारियों की हत्या की थी, मैंने उसे इसलिए मारा कि उसने मास्को की सड़कों पर निर्दोष व्यक्तियों के खून की नदी बहाई थी।

मैं जब गिरफ्तार हुई थी तो मुझसे पूछा गया था तुझे हत्या करने का अधिकार किसने दिया ? क्रान्तिकारी साम्यवादी दल की सदस्या की हैसियत से मैं इसका उत्तर इस प्रकार दूँगी। हमारे दल ने यह निश्चय किया था कि गवर्नमेंट के सफेद किन्तु खूनी आतंक का उत्तर हम लोग लाल आतंक से दें। यह हम लोगों की अपनी इच्छा नहीं है। गवर्नमेंट ने ही हम लोगों को मजबूर किया है कि हम लोग इस तरह की लड़ाई लड़ें। देश की जनता की ओर से मैं आपसे पूछती हूँ कि सदियों तक, अज्ञानान्धकार तथा दरिद्रता में रखने, जेल में ठूँसने, देश-निर्वासित करने, खानों में

काम कराने, सैकड़ों की संख्या में गोली के शिकार बनाने तथा इन्हें फाँसी पर लट-काने का अधिकार आपको किसने दिया ? ये अधिकार आपको कहाँ प्राप्त हुए ? आपने बलपूर्वक इन अधिकारों का अपहरण किया है, खुद ही कानून बनाकर इसे कानूनी ठहराया है और आपके दास, उन धर्म-गुरुओं ने इसे शुद्धि प्रदान किया है। पर अब एक दूसरे ही अधिकार का उद्भव हुआ है, वह है देश की जनता का अधि-कार जो आपके इस अमानुषिक अधिकार से कहीं श्रेष्ठ है। आपने इसी अधिकार के विरुद्ध जीवन-मरण के युद्ध की घोषणा की है।

मैं अपने जीवन के सम्बन्ध में थोड़ा-सा ही कहूँगी। कालेज की शिक्षा समाप्त करके मैं सरकार की ओर से लिफलैण्ड प्रान्त के एक सुदूर ग्राम-पाठशाला की अध्या-पिका बनाकर भेजी गई थी। गवर्नमेंट की नीति थी, जैसा कि अब भी है, उन बाल्टिक प्रान्तों में रूस की तूती बोला देना तथा रशियन भाषा तथा रशियन रहन-सहन, आचार-विचार का प्रचार करके उनके हृदय से राष्ट्रीयता के भाव मिटा देना। इसी उद्देश्य-पूर्ति के लिए वहाँ ये स्कूल खोले गये थे और रूस से ही अध्यापक तथा अध्यापिकाएँ भेजी जाती थीं ताकि वे रूसी भाषा में उन्हें शिक्षा प्रदान करें। मैं जिस स्थान पर रहती थी उसकी तीन ओर जंगल था और एक ओर पाइपस नामक झील। वहाँ लोगों की दरिद्रता भयंकर थी। जमीन पर उनका कोई अधिकार न था। जमीन या तो बड़े-बड़े जमींदारों के हाथ में थी या गवर्नमेंट के। पाइपस झील से जो कुछ मछली निकलती उसे मारकर, वे अपना जीवन-निर्वाह करते थे।

"एक साल तक इस स्कूल में काम कर चुकने के बाद मैं सेंट पिटर्सबर्ग प्रान्तमें पिटरहफ़ जिले के एक रूसी ग्राम को चली गई और वहाँ की ग्राम-पाठशाला में अध्या-पिका नियुक्त हुई। स्कूल के सामने एक पुलिस अफसर रहा करता था, उसके पीछे एक ग्राम-सिपाही (Village Constable) और समीप के एक छोटे-से पहाड़ पर पादरी महोदय का निवास था। वे सभी मेरे सम्बन्ध में तरह-तरह की सूचनाएँ अधिकारियों के पास भेजा करते थे। जब कभी मैं ग्राम-निवासियों के साथ किसी विषय पर वार्तालाप करती अथवा उनकी ज्ञानवृद्धि के लिए कोई भाषण देती जिससे राजनीति का कोई सम्बन्ध नहीं होता, वे फौरन स्कूल-इंस्पेक्टर के पास सूचना भेजते कि मैं टालस्टाय के सिद्धान्तों का प्रचार कर रही हूँ। एक बार मैंने एक नाटक के अभिनय का आयोजन किया। बस, पुलिस के अफसर महोदय ने तत्काल इसकी सूचना अपने बड़े अफसर के पास भेज दी। यह आज से प्रायः ५ वर्ष पूर्व की बात है। पूर्वोक्त सूचनाओं को पाकर कभी तो स्कूल के निरीक्षक मुझे बुला भेजते, कभी स्कूल-कौंसिल और कभी उस प्रान्त के गवर्नर। ढाई वर्ष तक मैं उस स्कूल की अध्यापिका बनी रही, अन्त में मुझे बर्खास्त होना पड़ा। पर मुझे इस नौकरी के जाने का कुछ

भी दुःख न हुआ क्योंकि अनुभव ने मुझे यह बतला दिया था कि मेरे लिए ग्राम्य-जनता को शिक्षित करना, कठिन ही नहीं असम्भव था। अतएव मैं क्रान्तिकारियों के साथ जा मिली। इसके बाद ही मुझे गिरफ्तार होना पड़ा। प्रायः एक वर्ष तक जेल में सड़ती रही, तत्पश्चात् मुझे छोड़ दिया गया, पर दो सप्ताह के अन्दर ही मैं पुनः गिरफ्तार कर ली गई। इस बार मैं केवल आठ महीने जेल में रखकर छोड़ दी गई। जेल से छूटते ही मैं विदेश चली गई। पर कुछ ही दिनों के बाद स्वदेश लौट आई। जेलों तथा अत्याचारों ने मेरे क्रान्तिकारी विचारों को दृढ़ कर दिया था। मैं यह महसूस करने लगी थी कि अगर जार स्वयं अत्याचारी न भी हो तथापि वह रूस की जनता को दासता की जंजीर में जकड़े जाने के एक जबर्दस्त साधन हैं। रूस में शासन करने का मतलब है प्रजा को खूब लूटना, जलाना और उनकी हत्या करना। जीवन के अनुभवों से मेरी यह दृढ़ धारणा हो गई कि इस देश में जब तक पुरानी सभी चीजों का विध्वंश न हो जायगा तब तक कोई भी अच्छा काम न हो सकेगा। अगर आदमी केवल बन्दूकों से विचारों के विरुद्ध लड़ाई नहीं लड़ सकता तो दूसरी तरफ केवल विचारों से ही बन्दूकों से अपनी रक्षा भी नहीं कर सकता है। मैं आतंक-वादिनी हो गई।

बस, थोड़े में मेरे जीवन की यही कहानी है। आप मुझे मृत्यु-दण्ड दे सकते हैं। मेरी मृत्यु चाहे जहाँ कहीं हो—फाँसी के स्तम्भ पर, साइबेरिया की खानों में अथवा कारागार की पीड़ा पहुँचाने वाली काल-कोठरियों में—मरते समय मेरे ध्यान में बस यही विचार उठता रहेगा—'मेरे देशवासियो! मुझे क्षमा करना, तुम्हारे लिए मैं कुछ भी न कर सकी क्योंकि मेरे पास केवल एक ही प्राण है।' और मैं इस विश्वास के साथ मरूँगी कि कभी न कभी वह दिन अवश्य ही आवेगा जब कि इस देश के राजासन का पतन होगा और रूस पर स्वातन्त्र्य-सूर्य जाज्वल्यमान होकर चमकेगा।

जिनैड़ा को फसी की सजा मिली तथा ११ सितम्बर, १९०६ को वह शूली पर लटका दी गई। मरते दम तक वह शान्त तथा दृढ़ बनी रही। यही नहीं बल्कि फांसी के स्तम्भ पर स्वयं ही जाकर उसने अपने हाथों अपने गले में फासी की डोरी लटका ली थी तथा वहां किस तरह खड़ा होना चाहिए यह फासी देने वाले से पूछ-कर स्वयं उसी तरह खड़ी हो गई थी। दूसरों के इस सम्बन्ध में कुछ करने का मौका ही न आया। इन कामों को उसने इस तत्परता के साथ पूरा किया कि उसके मृत्यु-दण्ड को पढ़ने वाला सेक्रेटरी उसे समाप्त भी न कर सका। जिनैड़ा के इस व्यवहार का उसके ऊपर कुछ ऐसा असर हुआ कि वह दुःख के मारे काँपने लगा, उसकी

जबान बन्द होने लगी और वह आगे न पढ़ सका। एक दूसरे आदमी ने उसके हाथ से आज्ञा लेकर उसे समाप्त किया।

फौज का एक नया सिपाही, जिसने इससे पहले किसी औरत को फाँसी पर चढ़ते न देखा था, इस दृश्य को देखकर मूर्च्छित हो गया।

पीटर और पाल के दुर्ग से जो लोग उसे फाँसी देने को श्लूसेलबर्ग ले गये थे वे भी इतने शोकित थे कि एक दूसरे की ओर अपनी निगाह न डालते थे और राह भर किसी ने एक शब्द भी मुँह से न निकाला।

जिनैड़ा के फाँसी पर चढ़ जाने के बाद रूस की क्रान्तिकारी समिति ने एक घोषणापत्र निकालकर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा फाँसी पर चढ़ने के समय की उसकी स्थिरता और दृढ़ता को आदर्श स्वरूप बतलाया था।

१८

प्रो० गरशुनी

ग्रेगरी ऐन्ड्रीभिच गरशुनी की गणना ज़ारशाही के प्रबल शत्रुओं में की जाती थी तथा आतंकवादियों के वह नेता समझे जाते थे पर अपने राजनैतिक जीवन के आरम्भ-काल में वह ऐसे न थे। शुरू में वह केवल शांतिपूर्ण सुधारवादी थे तथा अधिकारियों की अनुमति लेकर जनता में प्रारम्भिक शिक्षा का विस्तार किया करते थे। इस बात का वह खास ध्यान रखते थे कि उनका कोई भी काम कानून के खिलाफ न हो। पर कुछ ही दिनों में उन्हें यह अनुभव हो गया कि रूस में शांतिपूर्ण सुधार-वादियों तक के लिए भी कोई स्थान न था क्योंकि देश की आर्थिक दुरवस्था जैसे निर्दोष विषय पर भी उन्हें जुबान हिलाने की इजाजत न थी। अन्त में उन्होंने अधिकारियों से अनुमति लेनी छोड़ दी और अपनी इच्छानुसार देश के आवश्यक प्रश्नों पर अपने विचार प्रकट करने लगे। अधिकारियों को भला यह कब सह्य हो सकता था। उन्होंने उनके साथ छेड़खानियाँ शुरू कर दीं। फल यह हुआ कि ग्रेगरी गरशुनी क्रान्तिवादियों के गर्मदल के साथ जा मिले और अन्त में आतंकवादी हो गये। १९०४ के फरवरी महीने में जिन तीन व्यक्तियों को सेंट पिटर्सबर्ग 'कोर्ट मार्शल' द्वारा सरकार के दो उच्च अधिकारियों की हत्या के अपराध में फाँसी की सजा मिली थी उनमें एक ग्रेगरी गरशुनी भी थे। 'कोर्ट मार्शल' के समक्ष उन्होंने अपने जिस हृदय-औदार्य, नैतिक बल, तर्क-शक्ति तथा सज्जनता का परिचय दिया था—देश की वास्तविक दशा का उन्होंने जिस योग्यता के साथ शब्द-चित्र खींचा था—उसे देखकर न्यायाध्यक्षों को भी उनका लोहा मानना पड़ा था तथा उनकी प्रशंसा करनी पड़ी थी। मृत्यु-दण्ड की घोषणा उन्होंने बड़ी निर्भीकता तथा स्थिरता के साथ सुनी थी तथा उसे सुनकर अपने मित्रों तथा सहकारियों के नाम एक पत्र लिखा था जिससे उनकी दृढ़ता, गम्भीरता, देश-प्रेम तथा मानसिक और नैतिक बल का खासा परिचय मिलता है। अन्य क्रान्तिकारियों को प्रोत्साहित करते हुए उन्होंने अपनी गिरफ्तारी के सम्बन्ध में लिखा है कि मुझे गिरफ्तारी के बाद ही वास्तविक आनन्द का अनुभव हुआ और सेंट पिटर्सबर्ग को मैं इस खुशी के साथ गया मानों किसी जलसे को जाता हूँ। पत्र के

अन्त में उन्होंने लिखा है—"सम्भव है, मेरे विचार गलत हों पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि रूस में स्वतन्त्रता की शीघ्र ही विजय प्राप्त होगी और ऐसी दशा में, जब कि भविष्य इतना उज्ज्वल है, यह कौन कह सकता है कि एक मनुष्य के प्राण का बलिदान अधिक है ?" पर गरशुनी को फाँसी नहीं हुई। चूँकि मुकदमें में यह प्रमाणित न हो सका था कि उक्त अधिकारियों की हत्या में गरशुनी स्वयं शामिल थे अतः उनकी फाँसी की सजा बदलकर आजन्म कड़ी कैद की सजा दी गई तथा कुछ दिनों तक श्लुस्सेलबर्ग के जेलखाने में रखकर वह पूर्वीय साइबेरिया के अकटुइ नामक जेल को भेज दिये गये।

अकटुइ आकर वह जेल से निकल भागने की चेष्टा में लगे। पर अकटुइ जैसे भीषण जेल से निकल भागना सहल न था। कई बार कैदियों के जेल से भागने के प्रयत्न करने के कारण उन दिनों जेलों में पहरे की पूर्व की अपेक्षा कहीं ज्यादा कड़ाई कर दी गई थी। अतएव जेल से निकल भागना कठिन ही नहीं, असम्भव-सा दीख रहा था, तो भी, दुस्तर कठिनाइयों के होते हुए भी, जेल के अन्य राजनैतिक कैदियों ने यह संकल्प किया कि येन केन प्रकारेण गरशुनी को कैद से अवश्य ही निकाला जाय। इसके लिए उन्होंने जिस उपाय का अवलम्बन लिया उसे सुनकर सहसा सुनने वाले को विश्वास नहीं होता कि यह सच्ची घटना है। पर घटना सच्ची है और उन्हीं उपायों से गरशुनी जेल-मुक्त होकर जापान पहुँचे थे।

साइबेरिया की जेलों के कायदे-कानून श्लुस्सेलबर्ग आदि जेल जैसे न थे। रूस की जेलों में कैदियों को अलग-अलग रहना पड़ता था, पर साइबेरिया की जेलों में वे एक साथ रहते थे तथा उनके भोजन इत्यादि का प्रबन्ध भी उन्हीं के हाथ में था—यानी कैदियों की एक समिति थी जो इनका प्रबन्ध करती थी। जेल के पुस्तकालय आदि का संचालन भी वे ही करते थे। सैकड़ों आदमियों के भोजन का प्रबन्ध करना कुछ सहल काम न था। उन्हें इस कार्य-सम्पादन में काफी परिश्रम करना पड़ता था, खासकर शीतकाल के पहले जब कि उन्हें महीनों के लिए भोज्य-पदार्थों का संग्रह कर लेना होता था, क्योंकि बर्फ गिरने के कारण साइबेरिया के मार्ग कुछ महीनों के लिए बंद-सा हो जाया करते थे और भोजन के सामान जिन बाजारों से आया करते थे वे अधिकतर जेलों से सैकड़ों मील दूर थे अतएव उन्हें शीतकाल आरम्भ होने के पहले खरीदकर मँगवा लेना आवश्यक होता था।

रूस-निवासियों का सबसे प्यारा भोजन उबाली हुई गोभी है। जार से लेकर जेल के कैदियों तक इसका व्यवहार करते थे। प्रिय पदार्थ होने के कारण शीतकाल के आरम्भ में ही ढेर के ढेर गोभी खरीदकर बक्सों में बन्द कर के भाण्डार-गृह में बन्द कर दिये जाते थे। अकटुइ जेल के खाद्य-पदार्थ गवर्नर के मकान के एक हिस्से

की दो छोटी-छोटी कोठरियों में रखे जाते थे। यह मकान जेल के बाहर था पर तो भी जेल के कैदी सन्तरियों के साथ वहाँ भोजन की सामग्री रखने अथवा ले जाने आया-जाया करते थे। जेल के फाटक पर इन सामग्रियों की खूब जाँच-पड़ताल कर ली जाती थी तथा बाहर जाने वाले कैदियों पर खूब कड़ा पहरा रखा जाता था।

जेल का यह नियम गरशुनी के उद्धार का कारण हुआ। गोभी के रूप में उन्हें बक्स में बंद करके बाहर निकालने का निश्चय किया गया पर इसमें कठिनाइयाँ बहुत थीं और यही कारण था कि अब तक इस उपाय का किसी ने अवलम्बन नहीं किया था। पहले तो गरशुनी तथा उसके साथ-साथ कुछ गोभी तथा तरल पदार्थ के रखने के योग्य एक बड़े बक्स की जरूरत थी। फिर उसके सांस लेने के लिए रबर के दो ट्यूबों का होना भी अत्यन्त आवश्यक था। भाण्डार वाली कोठरी में सुरंग का खोदना तथा बाहर से किसी आदमी का समय पर सूचना देना कि सब ठीक है—फिर जेल के अन्दर ऐसा प्रबन्ध करना कि एक-दो दिनों तक गरशुनी के गुम होने का पता न चले—इन सब बातों के लिए उत्तम प्रबन्ध करना वह भी जेल-वार्डरों की सूक्ष्म-दृष्टि के नीचे, साधारणतः असम्भव-सा ही प्रतीत होता है पर धन्य थे वे जेल के कैदी जिन्होंने जेल के अन्दर बन्द रहते हुए भी इन्हें कर दिखाया।

सर्वप्रथम गरशुनी के लिए एक बड़े से बक्स तथा दो रबर के ट्यूबों (नालियों) का प्रबन्ध किया गया। तत्पश्चात् उन व्यक्तियों से, जिन्हें समय पुरने पर जेल-मुक्त करके अकटुइ से दो-चार मील की दूरी तक जाने की अनुमति दी जा चुकी थी, इस सम्बन्ध में परामर्श करके सुरंग खोदने तथा उपयुक्त समय पर गरशुनी के उस सुरंग की राह से बाहर निकलने की सूचना देने के काम उनके ऊपर सौंपे गये। फिर यह तय पाया कि गरशुनी को बक्स में बन्द करके प्रातःकाल ही जेल से बाहर निकाला जाय, क्योंकि सुरंग के मुँह का दिन भर खुला रहना खतरनाक था, षड्यन्त्र के खुल जाने का भय था।

निश्चित तिथि तथा समय पर बाहर से सूचना मिली कि सब ठीक है, चले आओ—शुभस्य शीघ्रम्। फिर क्या था, गरशुनी के साथियों में बिजली-सी दौड़ गई, धड़ाधड़ प्रबन्ध होने लगा। इसके बाद की कथा गरशुनी ने स्वयं ही लिखी है—

"चोर की तरह मैं उस कमरे में पहुँचा जहाँ मेरे मित्र मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे तथा कुछ ही मिनटों में मैं बक्स के भीतर चला गया। मेरे सर के ऊपर वे चमड़े बाँधने लगे तथा मेरे लिए संसार अंधकारमय हो गया पर इतने में ही कोई पुकार उठा 'प्लेट, प्लेट! अरे मूर्खो—तुम प्लेट रखना भूल गये हो।' बात यह थी कि जेल के फाटक से बाहर जाती हुई चीजों का निरीक्षण करने वाला अफसर कहीं अपनी तलवार को गोभियों के अन्दर चुभा न दे इस भय से, सिर की रक्षा के लिए, यह

इन्तजाम किया गया था कि सिर के आगे लोहे का प्लेट लगा दिया जाय और इसी प्लेट का बाँधना वे भूल गये थे। शीघ्र ही प्लेट लाकर लगा दिया गया और मेरे कुछ मित्र मेरे हाथ और सर को चूमने लगे तथा मुझे भीतर से ये शब्द सुन पड़े—'विदा, प्यारे ! मित्र, विदा ! सब कुछ ठीक है, शांत रहना।' इसके बाद चमड़े के जिस कोष (बेग) में मैं बन्द था उसको चारों ओर कील ठोक दी गई। धड़ाधड़ गोभियों के गिरने की आवाज होने लगी, क्योंकि बक्स में मुझे गोभियों से छिपा डाला गया था, तथा कुछ ही देर में मैं शराब से, जो उन गोभियों के साथ डाला जा रहा था सराबोर हो गया। पर मेरा ध्यान केवल उन ट्यूबों पर था जिनके सहारे मैं साँस ले रहा था और मैं इस चेष्टा में लगा था कि वे टूटने न पायें। कुछ काल तक गोभियों के गिरने की आवाज होती रही। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानों मैं जीवित अवस्था में ही गाड़ा जा रहा हूँ।

"इसके बाद इस अभिनय के दूसरे अंक का आरम्भ हुआ। उन्होंने मुझे उठा कर एक ठेला-गाड़ी पर रख दिया और मैं उस गाड़ी पर पड़ा-पड़ा भाण्डार-गृह की ओर रवाना हुआ। कुछ देर के बाद मुझे 'फाटक खोलो' की आवाज सुन पड़ी तथा गाड़ी रुक गई। कुछ समय तक दो-चार आदमियों के बोलने की भनभनाहट मालूम हुई, तदुपरांत किसी ने जोर से कहा कि 'जल्दी करो,' और फिर गाड़ी चलने लगी।"

गवर्नर के मकान के जिस कमरे में कैदियों के भोजन की सामग्री रखी जाती थी उसके बगल में एक दूसरा कमरा था जो छोटा तथा गन्दा था। चूँकि भाण्डार वाले कमरे में अफसरों की स्त्रियाँ बराबर आती-जाती रहती थीं, यह उचित नहीं समझा गया कि गरशुनी को उसमें रखा जाय, क्योंकि अगर गरशुनी के चमड़े के बेग से निकलते समय वे, संयोगवश, वहाँ आ पहुँचतीं तो फिर सारा बना-बनाया खेल बिगड़ जाता। अतएव बगल वाले कमरे से ही सुरंग निकाला गया था तथा गोभी वाले बक्स को यह कहकर कि पहला कमरा गोभियों के लिए काफी गर्म नहीं है, इसी छोटी कोठरी में रखा गया। बक्स को उसके वजन के कारण, गाड़ी से उतारना सहल काम न था। कई बार उसे ऊपर-नीचे करना पड़ा तथा दो सैनिकों की मदद से लुढ़काकर वह कमरे के अन्दर पहुँचाया गया। निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचाने के पहले गरशुनी को फुटबाल की तरह कई बार ऊपर-नीचे आना पड़ा पर वह ट्यूबों को खूब अच्छी तरह पकड़े रहे क्योंकि अगर वे संयोगवशात् टूट जाते तो कुछ ही देर में उनका साँस रुक जाने के कारण, प्राणान्त हो जाता।

दो-चार मिनटों के अन्दर ही किसी ने बक्स पर तीन बार ठोकरें दीं तथा जोर के साथ द्वार बंद होने की आवाज सुन पड़ी। गरशुनी के बाहर निकलने का यह संकेत-चिह्न था।

पहले से यह निश्चित था कि बाहर से एक सहायक आकर सुरंग के मुहाने पर छिपकर बैठा रहेगा तथा द्वार बंद होते ही कमरे के अन्दर घुस आयगा और गरशुनी को बेग के अन्दर से निकलने में सहायता पहुँचायगा। कुछ काल तक गरशुनी उसकी प्रतीक्षा करते रहे, पर वह नहीं आया। उनके पास एक छुरी थी पर उसका इस्तेमाल करना उनके लिए कठिन हो रहा था, क्योंकि अपने दोनों हाथों को वह इस काम में नहीं लगा सकते थे। एक हाथ से साँस लेने वाले ट्यूब को पकड़े रहना आवश्यक था। उसके सहारे वह केवल एक छिद्र मात्र कर सके पर उस छिद्र के होते ही उससे होकर बहुत सी शराब उनके बेग के अन्दर आ घुसी जिससे वह और भी ओत-प्रोत हो गये तथा साँस लेने वाला ट्यूब फट गया। बड़े संकट में पड़ गये। अगर थोड़ी देर भी वह उस बेग के अन्दर पड़े रहते तो प्राण से हाथ धो बैठते। अन्त में भगवान् का नाम लेकर उन्होंने एक बार खूब जोर के साथ शरीर को ताना जिससे उसके कोर उखड़ गये और वे बाहर निकल आये। इस घटना के सम्बन्ध में गरशुनी ने लिखा है—"मैं जब प्रथम बार संसार में आया था तो मुझे क्या परिश्रम करना पड़ा था यह मुझे स्मरण नहीं। पर इस द्वितीय जन्मकाल के समय तो मुझे बहुत ही परिश्रम करना पड़ा तथा अन्य नवजात शिशुओं की तरह संसार में आते ही शब्द करने के बदले अपने आपको खूब शान्त रखना पड़ा था।"

अभी वह सशंकित आँखों से चारों ओर देख ही रहे थे कि वह सहायक, जिसका जिक्र ऊपर किया जा चुका है, आ धमका। उसके आने की आवाज सुनकर वे और भी भयभीत हो उठे और छिपने की कोशिश करने लगे पर उसे देखकर निर्भय हो गये, जान में जान आई। एक हाथ में छुरी तथा दूसरे में शराब की बोतल लेकर इस नवजात शिशु ने अपने प्रस्ताव में सहायता पहुँचाने वाले डाक्टर का स्वागत एवं अभिवादन किया!

फिर वे दोनों सुरंग के अन्दर घुसे तथा छाती के बल शनैः शनैः आगे की ओर बढ़ने लगे। सुरंग के मुहाने से दो-चार कदम पीछे आकर वे रुक गये, क्योंकि बाहर से संकेत-चिन्ह मिला—'खबरदार! रास्ता खाली नहीं है।' कुछ समय बाद पुनः यही संकेत मिला—'रास्ता साफ नहीं है। वे वहीं पड़े रहे। सामने दो-चार आदमियों के आने-जाने की आवाज मालूम पड़ी। वे सशंकित हो उठे। पर कोई खतरा नहीं आया। पुनः शान्ति हुई। पुनः बूट जूतों की मचमचाहट सुन पड़ी, सामने से दो सैनिक बातें करते निकल गये। रास्ते से जाते हुए एक वार्डर के जूते को पहचानकर वे पुनः भयभीत हो उठे। पर उसने भी सुरंग के मुँह की ओर ध्यान नहीं दिया। चुपचाप पड़े हुए वे संकेत-ध्वनि का इन्तजार करने लगे। सामने के मकानों में जेल के अधिकारियों की स्त्रियाँ किलकारियाँ मार रही थीं।

अकस्मात् दो-चार लड़कों के दौड़ने का शब्द सुन पड़ा। वे एक कुत्ते के साथ दौड़ रहे थे। पल भर में वह कुत्ता सुरंग के दरवाजे पर आकर खड़ा हो गया और भीतर की ओर ताकने लगा। भय से गरशुनी तथा उसके मित्र का शरीर सन्न हो गया। कहीं वह कुत्ता भूँकने लगे तो··· ··· ···? या कुत्ते के पीछे वे लड़के ही वहां आ उपस्थित हों तो···········? भय के मारे वे व्याकुल हो उठे, चेहरा स्याह हो गया पर इतने में ही वह कुत्ता कुछ समय तक उनकी ओर देखकर वापस हो गया। पुनः उनकी जान में जान आई। लड़के चले गये। कुछ समय तक शांति बनी रही। तथापि संकेत-कर्त्ता की ओर से रह-रहकर यही संकेत आता रहा—'खबरदार ! आगे न बढ़ना।'

पर कुछ ही पलों में संकेत-चिह्न बदला—'सब ठीक है, चले आओ।' "क्या यह सच है, या हम स्वप्न देख रहे हैं"—एक ने दूसरे से पूछा। वे बाहर निकल आये तथा कुछ दूर पर खड़े हुए उस संकेतकर्त्ता से जाकर मिले। उसने गरशुनी की पाकिट में कुछ रुपये-पैसे तथा एक पिस्तौल और पासपोर्ट रख दिये। दो मील पैदल चलकर गरशुनी उस स्थान पर पहुँचे जहां एक बर्फ पर चलने वाली गाड़ी उनकी सुबह से ही प्रतीक्षा कर रही थी। अपने उस मित्र से, जो उसके संग सुरंग से निकला था और उसे पहुँचाने को यहां तक आया था, विदा लेकर वे रवाना हुए तथा पहाड़-पहाड़ियों और घाटियों को पार करके एक छोटे से नगर में जा पहुंचे जहां उनके कुछ मित्र उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे तथा उनके छिपने के लिए एक सुरक्षित स्थान का प्रबन्ध कर रखा था। पर वह वहां ज्यादा समय तक न ठहरे। भिक्षुक का रूप बनाकर वहाँ से रेल द्वारा नागासाकी बन्दरगाह के लिए रवाना हुए। राह में कई स्थानों पर उन्हें फटकार सहनी पड़ी। एक किसी स्टेशन पर पुलिस के एक बड़े अफसर ने उन्हें—'रास्ते से हट जा गन्दा आदमी !'—कहकर खूब जोर से डांटा था जिससे उनका हृदय आनन्दित हो उठा। पांच दिन तक रेल की सफर करके वह नागासाकी पहुँचे। अन्तिम तथा सबसे अधिक खतरे का मुहाना यही था। यह वही स्थान था जहां मुइश्किन तथा उसके साथी दो हजार मिल की सफर निर्विघ्न समाप्त करके गिरफ्तार कर लिये गये थे, पर गरशुनी के ऊपर परमात्मा की कुछ ऐसी दया थी, कि वे यहां भी बाल-बाल बचे और जहाज पर सवार होकर जापान जा पहुँचे।

इधर अकटुइ के जेलखाने में उनके मित्रों ने यह प्रयत्न किया कि कम से कम दो दिन तक भी उनके लापता होने की खबर अधिकारियों को न लगे। जिस दिन वह जेलखाने से निकले थे उस दिन प्रातःकाल उन्होंने जाकर मुख्य वार्डर तथा ओवर-सीयर से मुलाकात की थी ताकि वे दिन भर उनकी खोज न करें। उनके चले जाने के बाद उनके मित्रों ने इस बात की चेष्टा की कि शाम की हाजिरी के समय किसी

तरह हाजिरी लेने वाले अफसर को धोखे में डालकर उनकी हाजिरी लिखवा दी जाय। इसके लिए उन्होंने निम्न साधन का उपयोग किया—

"गरशुनी जिस कमरे में रहते थे उसमें तीन-चार और भी कैदी रहा करते थे। उनमें से एक ने एक मोम का बस्ट (ऊर्ध्वकाय प्रतिमा) बनाकर उसे गरशुनी के बिछावन पर लिटा दिया तथा ऊपर से चादर डाल दी। शाम के वक्त वे उसकी ओर बैठकर खूब जोर-शोर के साथ वाद-विवाद करने लगे। हाजिरी लेने वाले अफसर के किवाड़ खोलने के पहले ही उनमें से एक व्यक्ति उठकर गरशुनी के बिस्तरे के पास खड़ा हो गया तथा खूब ऊँचे स्वर में उसे संबोधन करके कहने लगा—'ग्रेगरी ! क्या तुम नहीं जानते कि सूर्य-ग्रहण का उसके तुबल पटल पर ·········· "—और उसके दो-चार संगी उसकी दोनों ओर खड़े होकर ध्यानपूर्वक उसकी स्पीच को सुनने लगे। हाजिरी लेने वाले अफसर को इन वाद-विवादों में अभिरुचि न थी, अतएव वह दरवाजे से ही यह देखकर कि कमरे के रहनेवाले सभी कैदी हाजिर हैं, सन्तुष्ट हो गया और वहीं से उनके नाम पुकारने लगा। गरशुनी की तरफसे एक कैदी ने आवाज बदलकर 'हाजिर' कह दिया और वहाँ उनकी हाजिरी दर्ज हो गई। पर इसके एक घंटे बाद ही एक दूसरी आफत आई जिससे छुटकारा न मिल सका। जेल का एक अफसर, जो कभी-कभी अवकाश के समय गरशुनी से आकर बातचीत किया करता था, उससे मिलने आया। बिस्तरे के पास आकर जो उसने गरशुनी को उठाना चाहा तो उसकी जगह उसे मोम का एक बस्ट मात्र दीख पड़ा। इसे देखते ही वह समझ गया कि बात क्या है और जेलर के पास जाकर उसने तत्काल इसकी सूचना दी। गवर्नर ने जो यह समाचार सुना तो दंग रह गया, और उसे इस बात की बड़ी ग्लानि हुई कि गरशुनी जैसा जारशाही का प्रबल शत्रु तथा भयावह आतंकवादी उसके पिंजड़े से निकल भागा। तुरन्त ही यह समाचार, जंगल की आग की तरह, सारे जेल में फैल गया तथा रात भर जेल के कोने-कोने की छानबीन होती रही पर वह किस तरह जेल से निकल भागा इसका पता न चला। जेल के बाहर के मकानों की भी खानातलाशी ली गई पर इससे भी कुछ लाभ न हुआ। गवर्नर से लेकर संतरी तक सभी आश्चर्य-चकित हो रहे थे, किसी की समझ में यह न आ रहा था कि गरशुनी किस राह से और कब जेल से बाहर निकला। गवर्नर ने अन्त में इसकी सूचना प्रान्तीय गवर्नर के पास भेजी। अकटुइ में तारघर न होने के कारण सूचना जाने में विलम्ब हुआ। गरशुनी के लिए यह अच्छा ही हुआ क्योंकि जब तक उसके भागने की खबर प्रान्तीय गवर्नर के पास पहुँची तब तक वह कोसों दूर निकल गये।

जब यह संवाद सेंट पिटर्सबर्ग गवर्नमेंट के पास पहुँचा तो वह बेचैन हो गई,

क्योंकि गरशुनी को वह बड़ा बलवान दुश्मन समझती थी, और उसने देश भर में उनकी खोज करनी शुरू कर दी पर इसका कोई परिणाम न निकला बहुत दिनों तक गरशुनी के पकड़ने की चेष्टा होती रही पर गरशुनी तब तक जापान पहुँच चुके थे और डाक्टर रशेल के साथ बैठे हुए अपने अनुभव सुना रहे थे। रूस में कुछ दिनों तक खूब तहलका मचा रहा।

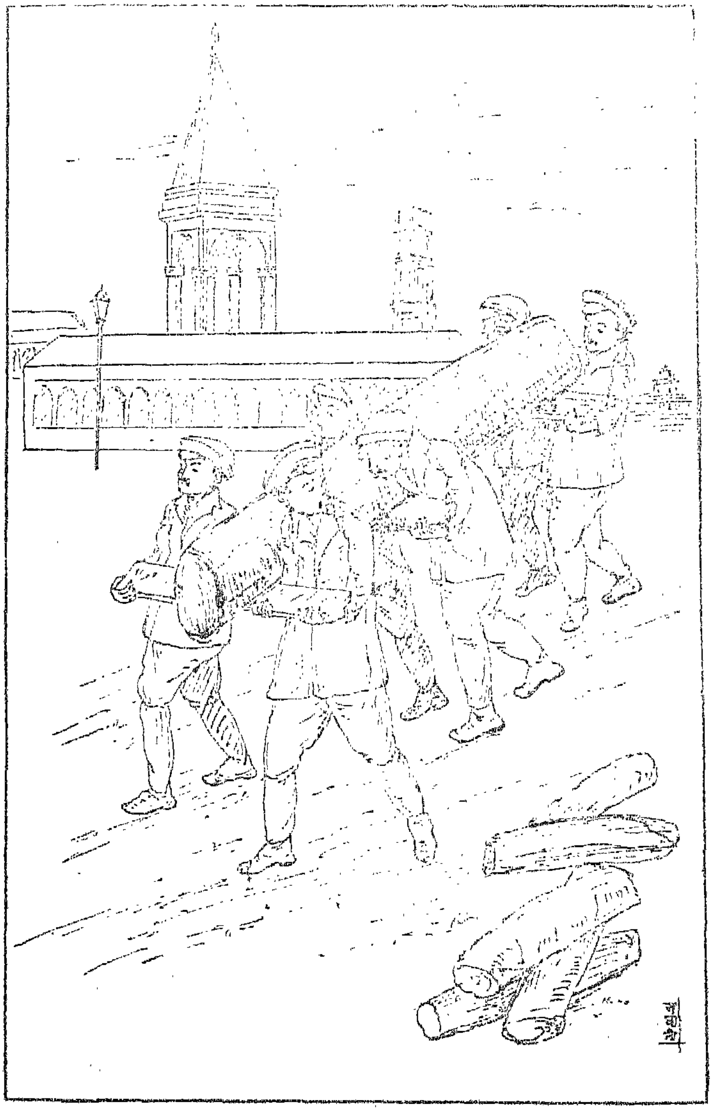
गरशुनी को भगाने के लिए जो षड्यंत्र रचा जा रहा था उसकी खबर अकटुइ जेल के साधारण कैदियों तक को थी पर यह मार्के की बात है कि इसका भंडाफोड़ किसी ने भी नहीं किया हालाँकि ऐसा करने से उसे गवर्नमेंट की ओर से बहुत बड़ा पुरस्कार मिलता।

दूसरी मार्के की बात इस सम्बन्ध में यह हुई कि अकटुइ जेल से मुक्त किये हुए कैदियों ने अपनी जान की कुछ भी परवाह न करके इस षड्यंत्र में भाग लिया जिसके लिए उनकी जितनी तारीफ की जाय, थोड़ी है। सुरंग खोदने तथा सुरंग की राह गरशुनी की सहायता पहुँचाने वाले व्यक्ति के कार्य सचमुच ही खतरे के थे और इससे परोपकार-प्रकृति का पूरा परिचय मिलता है।

उपसंहार

प्रकृति का यह नियम है कि किसी भी तूफान के, चाहे वह स्थूल-जड़-जगत् में हो अथवा राजनैतिक, सामाजिक या धार्मिक जगत् में आने के पूर्व उसके कारण तैयार होते हैं। इस कारण-समूह के फलस्वरूप ही वह तूफान प्रकटित होता है। पिछली कई शताब्दियों में संसार के कई हिस्सों में जो बड़ी-बड़ी राजनैतिक क्रान्तियाँ उत्पन्न हुईं वे अकस्मात् नहीं वरन् परिस्थितियों तथा क्रान्तिवादियों के वर्षों के अथक् परिश्रम एवं विचार-प्रसार के परिणाम रूप में ही उनका उद्भव हुआ। फ्रांस के 'एनसाइक्लोपिडिस्ट' (Encyclopaedists) जनों के चिन्तन का ही परिणाम फ्रांस की राज्य-क्रान्ति थी। भारत में भी महात्मा गांधी के राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश के पूर्व अनेकों ने बालगंगाधर तिलक, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि चिन्तक—नेताओं तथा बंकिमचन्द्र जैसे लेखकों ने इसके लिए क्षत्र तैयार किया था तथा रौलेट एक्ट, जलियाँवाला बाग् की हत्याकाण्ड आदि घटनाओं ने कारण-सृजन। इसी प्रकार रूस की महान् क्रान्ति जो कि लेनिन के नेतृत्व में सफल हुई, एक लम्बे अर्से की घटनाओं तथा दिग्गज रूसी चिन्तकों के विचार-विस्तार का ही परिणाम थी। तैयार की हुई जोती-जाती जमीन में हम जिस तरह बीज वपन करते हैं और उससे बढ़िया फसल पैदा करने में समर्थ होते हैं, उसी तरह लेनिन ने इन क्रान्तिवादी चिन्तकों तथा क्रान्तिकारियों के प्रस्तुत किये हुए वातावरण में अपने बीज बोये और सफलता की पैदावार हासिल की। मैंने इन्हीं महान् आत्माओं में से कुछ के जीवन-चरित्र इस छोटी-सी पुस्तक में देने का उद्योग किया है। हर्जेन, बाकुनिन, क्रोपाटकिन आदि महापुरुष उन लोगों में से थे जिनके विचारों का प्रभाव केवल रूस के ही नहीं। बल्कि संसार भर के प्रगतिशील मस्तिष्क पर प्रचुर परिमाण में पड़ा था और इस कारण से उन्हें हम एकदेशीय नहीं सर्वदेशीय मानें तो कोई दोष नहीं। वह रूस के ही नहीं सारे संसार की विभूति हैं।

लेनिन के नेतृत्व में सन् १९१७ ई० में जिस क्रान्ति ने रूस में सफलता प्राप्त की उसने इसमें सन्देह नहीं, कि संसार के राजनैतिक वातावरण पर एक जबर्दस्त असर डाला और एक बिलकुल ही नयी दुनिया का सृजन किया। यूरोप और एशिया



सन् १९२० का लेनिन का एक चित्र।
मजदूरों के साथ माल ढोने में वह स्वयं कन्धा लगा रहा है।

के वे मुल्क जो कम्युनिस्ट नहीं भी हैं, बल्कि रूस के साथ जिनकी अभिन्नता का ही सम्बन्ध है, वे भी कम्युनिस्ट आदर्शों के ही पथ पर गतिशील हो रहे हैं। उदाहरण के लिए हम अपने देश को ही ले लें। हमने देशी रजवाड़े खत्म किये, जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया और अब भूमि-विभाजन की ओर कदम उठा रहे हैं, तो क्या इन पर साम्यवादी विचारों की छाप नहीं है ? यही परिस्थिति अधिकांश देशों की है। जिसके खिलाफ पूँजीवाद का अन्तिम गढ़ अमरीका गतिरोध की चेष्टाएँ कर रहा है।

गरज यह कि रूस के महान् स्त्री-पुरुषों के चिन्तन तथा कार्यों का संसार के वर्तमान वातावरण की पैदाइश में काफी हिस्सा है—फ्रांस के एनसाइक्लोपिडिस्टों से कहीं अधिक और इसलिए यह आवश्यक है कि हम उनके सम्बन्ध में कुछ जानें। मैंने 'रूसी क्रान्ति के अग्रदूत' के पृष्ठों में, संक्षेप में, इनके सम्बन्ध में कुछ लिखने का यत्न किया है। आशा है, हिन्दी के पाठक इस पुस्तक के द्वारा इनके जीवन-वृतान्तों, विचारों एवं कार्यों के सम्बन्ध में कुछ जानकारी हासिल कर सकेंगे, तथा उनकी जीवन-कथा से आदर्श-लाभ करेंगे। जिनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य पर-पीड़न का विनाश मात्र ही था—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम्,
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्ति नाशनम्।